उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

खण्ड – एक : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का अध्ययन और सिद्धान्त व्यवहार 3–40

इकाई 1 : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र

इकाई 2 : अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : अध्ययन के उपागम

इकाई 3 : राज्यव्यवस्था, राष्ट्रीय शक्ति, राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय सुरक्षा

खण्ड – दो : अन्तः युद्धकाल 41–64

इकाई 4 : प्रथम विश्व युद्ध कारण घटनायें एवं प्रभाव

इकाई 5 : वैश्वीकरण

खण्ड – तीन : शीत युद्ध और विश्व राजनीति 65–98

इकाई 6 : द्वितीय विश्वयुद्ध कारण और परिणाम (महाशक्तियों का उदय)

इकाई 7 : शीत युद्ध का उद्‌भव और विकास

इकाई 8 : बोल्शेविक क्रान्ति

इकाई 9 : शस्त्रीकरण एवं निशस्त्रीकरण

खण्ड – चार : तीसरी 'दुनिया का उद्‌भव' 99–122

इकाई 10 : गुटनिरपेक्षता : उत्पत्ति, भूमिका और प्रासंगिकता

इकाई 11 : उपनिवेशवाद एवं नव–उपनिवेशवाद

इकाई 12 : तीसरी दुनिया के देशों की सुरक्षा एवं समस्याएं

खण्ड – पाँच : शीतयुद्ध का अन्त और उसके भावी दृष्टिकोण 123–148

इकाई 13 : बदलती विश्व व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण

इकाई 14 : उत्तर दक्षिण दृष्टिकोण संवाद

इकाई 15 : विश्व व्यवस्था का बहुध्रुवीयकरण

खण्ड – छः : अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ एवं क्षेत्रीय संगठन 149–182

इकाई 16 : सयुंक्त राष्ट्र संघ : भूमिका एवं सुधार की मांग

इकाई 17 : आई0बी0आर0डी0 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यापार संगठन

इकाई 18 : क्षेत्रीय संगठन : यूरोपीय समुदाय, आसियान, एपेक, सार्क (दक्षेस), ओ0आई0सी0 तथा ओ0ए0यू0

खण्ड – सात : विकास सम्बन्धी मुददे 183–232

इकाई 19 : पर्यावरण और सतत् मानव विकास

इकाई 20 : नारी अधिकार एवं आन्दोलन

इकाई 21 : मानवाधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

इकाई 22 : अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद

इकाई 23 : संचार प्रौद्योगिकी में क्रान्ति

MAPS-119
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड – 1

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का अध्ययन और सिद्धान्त व्यवहार

इकाई – 1 **7**

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र

इकाई – 2 **17**

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : अध्ययन के उपागम

इकाई – 3 **27**

राज्यव्यवस्था, राष्ट्रीय शक्ति, राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय सुरक्षा

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. एम. पी. सिंह – सदस्य**

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, 34 उत्तरांचल अपार्टमेंट, 5, आईपी एक्सटेंशन पटपड़गंज, नई दिल्ली

(2) **प्रो. एस.पी. एम त्रिपाठी – सदस्य**

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

(3) **प्रो.एल.आर.गुर्जर – सदस्य**

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान

(4) **डॉ.दीपशिखा श्रीवास्तव – सचिव**

शैक्षणिक परामर्शदाता ,राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज

लेखक

1. **प्रो0 संजय श्रीवास्तव** — **प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान,** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय **(इकाई–04, 05, 15)**
2. **डॉ0 विश्वनाथ मिश्रा** — **असि0 प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान** आर0 महिला पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई– 06, 07, 08, 09, 10, 11, 12)**
3. **डॉ0 स्वाती सुचरिता नन्दा** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई–01, 02, 03, 21, 22, 23)**
4. **डॉ0 अर्चना सुदेश मैथ्यू** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** पी0जी0 कालेज छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश **(इकाई–13, 14, 16, 17, 18)**
5. **डॉ दीपशिखा श्रीवास्तव** — **शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान** यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज **(इकाई– 19, 20)**

संपादक / परिमापक

डॉ. नागेश्वर प्रसाद शुक्ला — प्राचार्य गन्ना उत्पादक पी0जी0 कालेज, बहेड़ी, बरेली

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव, — शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

(मुद्रित)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN- 978-93-83328-37-6

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

प्रकाशक – कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–2024

मुद्रक – चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा. लि.42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज.

खण्ड परिचय

प्रस्तुत खण्ड-01 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का अध्ययन और सिद्धान्त व्यवहार' में

इकाई-01 विश्व के देशों के परस्पर सम्बन्धों का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की प्रकृति और क्षेत्र का विस्तार से वर्णन किया गया है। इकाई-02 के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के विभिन्न उपागम की चर्चा की गयी है। इकाई-03 का अध्ययन करने के पश्चात राज्य व्यवस्था, शक्ति, राष्ट्रहित और राष्ट्रीय सुरक्षा जैसे मुद्दों के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकेगी। जिससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विषय में समकालीन घटनाओं तथा राज्यों के बीच होने वाली अन्तः क्रियाओं तथा राष्ट्रीय हितों को समझा जा सकता है।

खण्ड-02 'अन्तः युद्धकाल' के अन्तर्गत

इकाई-04 में 'प्रथम विश्वयुद्ध के कारण, घटनाएँ एवं प्रभावों' का अध्ययन किया गया है। जिसका अध्ययन कर हम युद्ध के दौरान होने वाले दुष्परिणामों को जान सकेंगें और विश्व भर में शांति व्यवस्था कायम करने का प्रयत्न करेंगें। इकाई-05 'वैश्वीकरण' का अध्ययन करने के पश्चात् हम जान सकेंगें कि किस प्रकार से वैश्वीकरण द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को प्रभावित किया जा सकता है।

खण्ड-03 'शीत युद्ध और विश्व राजनीति के अन्तर्गत'

इकाई-06 में द्वितीय विश्व युद्ध के कारणों और परिणामों को जान सकेगें। इकाई-07 के अन्तर्गत विश्व युद्ध के पश्चात शीतयुद्ध का उद्भव और विकास का अध्ययन कर उसके विषय में जानकारी प्राप्त कर सकेंगें। इकाई-08 'बोल्शेविक क्रान्ति' के अन्तर्गत आप अध्ययन कर सकेंगें कि किस प्रकार से क्रान्ति ने पूरे विश्व में अपना अमिट प्रभाव डाला। इकाई-09 के अन्तर्गत 'शस्त्रीकरण एवं निःशस्त्रीकरण' की आवश्यकता और उसके दुष्परिणामों तथा निःशस्त्रीकरण के प्रमुख प्रयासों का वर्णन किया गया है।

खण्ड-04 तीसरी 'दुनिया का उद्भव' में

इकाई-10 गुटनिरपेक्षता उत्पत्ति 'भूमिका और प्रासंगिकता' की चर्चा की गई है। इकाई-11 'उपनिवेशवाद एवं नवउपनिवेशवाद' के अन्तर्गत उपनिवेशवाद के स्वरूपों उसके दुष्परिणामों को जाना जा सकेगा। इकाई-12 'तीसरी दुनिया के देशों की सुरक्षा समस्याओं' से अवगत कराया गया है।

खण्ड-05 'शीतयुद्ध का अन्त और उसके भावी दुष्परिणाम'

इकाई-13 बदलती विश्व व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण में विश्व को एक ग्राम बनाने की प्रक्रिया तथा उदारीकरण, निजीकरण को बढ़ावा देना है। इकाई-14 के अन्तर्गत 'उत्तर दक्षिण दृष्टिकोण संवाद' के अन्तर्गत दुनिया के धनी पूँजीवादी और गरीब विकासशील देशों के बीच परस्पर भेदों का वर्णन किया गया है। इकाई-15 'विश्व व्यवस्था का बहुध्रुवीय करण' महाशक्तियों की शक्ति का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में वर्णन किया गया है।

खण्ड-06 'अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ एवं क्षेत्रीय संगठन' में

इकाई-16 'संयुक्त राष्ट्र व्यवस्था की भूमिका एवं सुधार की मांग' संयुक्त राष्ट्र जैसे शक्तिशाली संगठन और इसके सफल-असफल कारणों के विषय में जानकारी प्राप्त की जा सकेगी। इकाई-

17 'आई.बी.आर.डी., अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यापार संगठन' इकाई के अन्तर्गत आर्थिक संगठनों के भाव पर प्रकाश डाला गया है। इकाई-18 क्षेत्रीय संगठन यूरोपीय समुदाय, एशियन, एपेक, सार्क, ओ.आई.सी.तथा ओ.ए.यू. जैसे संगठनों की प्रासंगिकता और उनके भविष्य की संभावनाओं के विषय में जानकारी दी गई है।

खण्ड-07 'विकास सम्बन्धी मुद्दे'

इकाई-19 पर्यावरण और सतत् मानव विकास में पर्यावरण और मानव विकास के बीच बेहतर जीवन जीने के लिए इनके बीच सम्बन्धों का अध्ययन किया गया है। इकाई-20 'नारी अधिकार और आन्दोलन' के अन्तर्गत नारी आन्दोलन की नवीन प्रवृत्तियों और नारियों के प्रति सोच में परिवर्तन जैसे क्रान्तिकारी परिवर्तनों का वर्णन किया गया है। इकाई-21 'मानवाधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति' के अन्तर्गत मानव अधिकारों के विकास के विभिन्न पर्यायों तथा मानव अधिकार के समक्ष चुनौतियों पर चर्चा की गई है। इकाई-22 'अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद' के अन्तर्गत आतंकवाद का अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर क्या प्रभाव पड़ता है तथा उन्मूलन के उपायों का वर्णन किया गया है। इकाई-23 'संचार प्रौद्योगिकी में क्रांति' के अन्तर्गत संचार प्रौद्योगिकी का समूचे विश्व पर प्रभाव एवं राष्ट्रों के बीच परस्पर सम्बन्धों पर प्रभावों का वर्णन किया गया है।

इकाई-1

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : अर्थ, प्रकृति और क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 प्रथम विश्व युद्ध के कारण
1.3 युद्ध का परिणाम
1.4 निष्कर्ष
    1.4.1 परम्परागत परिभाषाएं
    1.4.2 समसामयिक परिभाषाऐं
1.5 प्रकृति
1.6 विषय क्षेत्र
1.7 उपसंहार
1.8 शब्दावली
1.9 सम्बन्धित प्रश्न
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.11 नोट

1.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का लक्ष्य अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अर्थ, प्रकृति तथा विषयक्षेत्र में विद्यार्थियों को अवगत कराना है, इस इकाई के अंतर्गत अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विकास के विभिन्न पर्यायों, विभिन्न परिभाषाओं, प्रकृति तथा विषय की समसामयिक सीमाओं का विवेचना किया गया है। इस इकाई को अध्ययन करने का उद्देश्य है :

- अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के अर्थ की स्पष्ट समझ प्राप्त करना।
- अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के विकास के विभिन्न पर्यायों को समझना।
- अन्तर्राष्ट्रीय संबंध की प्रकृति तथा विषय क्षेत्र के बारे में जानकारी प्राप्त करना।

1.1 भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का प्रारंभ सम्भवतः मनुष्य की चेतना के उस पर्याय से हुआ होगा जब वह ये समझा होगा के कोई राष्ट्र द्वीप के समान नहीं हैं और शायद यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी की अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की शुरूवात राष्ट्रों के उस कदम से हुई होगी जब किसी राष्ट्र ने क्षेत्र विस्तार के मनोभाव से पडोसी राष्ट्र की शक्ति का आकलन करने की

कोशिश की होगी या अपने राष्ट्र या उसमें रहने वाले नागरिकों की किसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए पड़ोसी राष्ट्र के साथ कोई संधि की होगी।

वर्तमान युग वास्तविक रूप में अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है। आज के समय में कोई भी राष्ट्र अपने आपको दूसरे राष्ट्रों से और राष्ट्र समूहों से अलग करके नहीं देख सकता। पाकिस्तान के पेशावर शहर के एक विद्यालय में हुए धमाके की गूंज पड़ोसी भारत में ही नहीं वरन सुदूर अमेरिका तक पहुँचने में देर नहीं लगती समकालीन समय में प्रत्येक राष्ट्र अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरे राष्ट्रों की सहायता लेता है। कोई भी राष्ट्र अपनी नीति-निर्माण की प्रक्रिया के दौरान राष्ट्रक्षेत्र से बाह्य दुनिया को अलग कर के नहीं देख सकता।

1.2 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विकास के विभिन्न पर्याय

एक विषय के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का इतिहास 200 वर्ष से अधिक नहीं है। सामान्य रूप से इसका प्रारंभ वर्ष 1919 माना जाता है। इस वर्ष वेल्स विश्वविद्यालय में इस विषय की नीव रखी गयी थी। प्रारंभिक वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को एक स्वतंत्र विषय के रूप में विश्वविद्यालय स्तर पर नहीं देखा जाता था। उस समय इसकी शैक्षणिक मान्यता न के बराबर थी।

केनेथ थॉमसन ने 1952 में प्रकाशित अपनी कृति द स्टडी ऑफ इंटरनेशनल पॉलिटिक्सः ए सर्वे ऑफ ट्रेंड्स एंड डेवलपमेंट्स में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन के इतिहास को चार भागों में बाटा है।

(1) **कूटनीतिक इतिहास का अध्ययन**- थामसन के अनुसार 1919 से पहले भी राष्ट्रों के सम्बन्धों के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है। इसक प्रमाण विभिन्न इतिहासकारों के अध्ययन से मिलता है जो राष्ट्रों के इतिहास का विश्लेषण करते समय पड़ोसी राष्ट्र के साथ उनके सम्बन्धों की भी चर्चा करते थे। अनेक इतिहासकारों ने कूटनीतिक इतिहास का भी अध्ययन किया जो आज के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्वानों का एक बेहद ही पसंदीदा क्षेत्र है।

(2) **समकालीन घटनाओं का अध्ययन**- वर्ष 1919 अपने आप ही में बेहद महत्वपूर्ण है। इस समय तक पूरा विश्व एक ऐसे युद्ध से साक्षात्कार कर चुका था जिसकी क्षेत्रीय व्यापकता और ध्वंस का परिणाम किसी एक या दो राष्ट्रों तक ही सीमित नहीं बल्कि वैश्विक था। पाश्चात्य देशों में विद्वानों ने भविष्य में इस तरह के युद्ध का पुनरावृत्ति न होने के तरीकों पर अमल करना शुरू किया जिसके फलस्वरूप राष्ट्र सघ (League of Nations) का गठन हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एक विषय के रूप में इतिहास की छत्रछाया से निकल कर अपनी अस्तित्व बनाने की और यात्रा करने लगा।

(3) **सुधारवादी दृष्टिकोण**- थॉमसन के अनुसार इस पर्याय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्वानों ने अन्तर्राष्ट्रीय समाज के लक्ष्यों को समझने की कोशिश की। इस तरह से यह पर्याय विद्वानों में एक नवीन आशावाद का प्रारंभ है जिसके अंतर्गत अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के विभिन्न तरीकों पर विमर्ष का प्रारंभ होता हुआ दिखता है। यह वह समय भी रहा जब कुछ विद्वानों ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सभी संस्थाओं को सकारात्मक और राष्ट्रीय स्तर की संस्थाओं और क्रियाओं को नकारात्मक दृष्टि से देखा।

(4) **सांगठनिक पर्याय**- द्वितीय विश्व युद्ध, व्यापकता और परिणाम के दृष्टि से प्रथम विश्व युद्ध कि तुलना में ज्यादा भयानक रहा, इसके उपरान्त भी विभिन्न विद्वानों और राष्ट्र प्रमुख ऐसे संगठन और कानून बनाने की चेष्टा में लग गए जो राष्ट्रों के परिणामस्वरूप 24 अक्टूबर, 1945 को संयुक्त राष्ट्र (United Nations) का जन्म हुआ। संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र के अनुसार -

(क) सभी राष्ट्रों का साझा हित शान्ति स्थापित करने में है।

(ख) कानून व व्यवस्था के माध्यम से राष्ट्रों के बीच विवादों को सुलझाया जा सकता है।

(ग) सख्त अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों के द्वारा अनुचित शक्ति और आतंक के प्रयोग से रोका जा सकता है।

(घ) राज्यों के बीच के विभिन्न विवादों का हल शांतिपूर्ण तरीके और वार्ता के माध्यम से किया जा सकता है।

1945 के उपरांत अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में कई मूल भूत परिवर्तन हुए है। इसके कारण न केवल इसकी विषयवस्तु व्यापक हुई है बल्कि इसमें बहुत जटिलताएँ भी पैदा हो गई है। परिणामस्वरूप नवीन आयामों, दृष्टिकोणों व प्रवृत्तियों का विकास हुआ है। इस तरह से अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन केवल राष्ट्रों और संस्थाओं तक ही सीमित नहीं रह गया है। इस चरण में दो महाशक्तियों के बीच शीतयुद्ध की शुरूआत तथा नये राज्यों के उदय ने सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश को ही परिवर्तित कर दिया। पूर्व पर्यायों के अनुरूप संस्थागत, नैतिक एवं सुधारवादी धाराओं से हट कर अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्वान नये सिद्धान्तों और उपागमों के विकास की ओर अग्रसर हुए। ई.एच. कार, क्विंसी राईट तथा हान्स मोर्गेथाऊ जैसे विद्वानों ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के सामान्य सिद्धान्त खोजने की कोशिश की जिसके परिणामस्वरूप यथार्थवादी उपागम भी शुरूआत हुई। इस उपागम के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का अटल सत्य यह है कि राज्य हमेशा अपने हितों की पूर्ति हेतु संघर्षरत रहते है। अतः अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्वानों को इस शक्ति संघर्ष के विभिन्न आयामों पर ध्यान देना चाहिए। यथार्थवादी उपागम आवश्यक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का ध्यान आदर्शवादी विचारों से हटाना चाहता था जिनका मानना यह था कि अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा कानूनों के माध्यम से राष्ट्रों को सम्पूर्ण रूप से प्रभावित किया जा सकता हैं, शीतयुद्ध काल में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का अध्ययन इन दो प्रवृत्तियों को आधार मानता रहा 1990 के दशक में शीत युद्ध की समाप्ति के उपरांत विद्वानों का ध्यान नवीन मुद्दों पर जाने लगा, इन मुद्दों में वैश्विक आर्थिक व्यवस्था, परमाणु प्रसार, आंतकवाद, पर्यावरण तथा मानवाधिकारों का हनन प्रमुख रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन में इन समस्याओं की अन्तर्राष्ट्रीय व्यापकता और अन्तर्राष्ट्रीय समाधान पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इस तरह से समकालीन युग में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध ने स्वयं को राष्ट्रों के बीच के सम्बन्ध के अध्ययन तक सीमित करके नहीं रखा है।

1.3 भारत में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का विकास

भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्ययन की शुरूआत 1955 में इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज (Indian School of International Studies) की स्थापना से हुई। इस संस्था के स्थापना का श्रेय भारत के प्रथम प्रधानमंत्री विदेश मंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू को जाता है। इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज के प्रथम निर्देशक (1955-1964) प्रोफेसर

अर्जुन आप्पादोरै रहें। 1964 षे 1970 तथा प्रोफेसर एम.एस. राजन इसके निर्देशक रहें। इन पंद्रह वर्शों में इस संस्था ने विभिन्न शैक्षिणक कार्यक्रमों के अन्तर्गत 66 डॉक्टरेट की उपाधि दी। क्विंसी राइट (Quincy Wright), डब्ल्यू.एच. मोरिस-जोंस (W.H. Morris-Jones) जैसे प्रख्यात विद्वान यहाँ के संकाय से जुड़े रहें, वर्ष 1970 में इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज को जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे.ने.यू.) में समाहित कर दिया गया और वर्तमान में यह स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज के रूप में जे.ने.यू. में स्थित है जिसे भारत में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का एक मुख्य केन्द्र माना जाता है। यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के सैद्धांतिक पक्ष के अंतर्गत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं अर्थनीति में परास्नातक के अलग-अलग पाठ्यक्रम चलाए जाते हैं। क्षेत्रीय अध्ययन के अन्तर्गत दक्षिण-एशियाई, मध्य एशिया, दक्षिण-पूर्व एशिया, अमेरिका, अफ्रीका इत्यादि क्षेत्रों की राजनीति, अर्थनीति, संस्कृति तथा समाज की बारीकियों पर अनुसन्धान किया जाता है। वर्तमान समय में भारतवर्ष के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों चाहे वे केन्द्रीय विश्वविद्यालय हों, राज्य विश्वविद्यालय हों अथवा गैर-सरकारी विश्वविद्यालय हों- में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों के अध्ययन की व्यवस्था है। राजनीतिक विज्ञान के विद्यार्थियों को संबंधों का अध्ययन आवश्यक हो गया है।

1.4 परिभाषाएँ

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एक ऐसा विषय है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली विभिन्न क्रियाओं की व्याख्या तथा विश्लेषण करता है। इस तरह से यह निरंतर परिवर्तित होता रहा है। इस को परिभाषित करना कोई सरल कार्य नहीं है। फिर भी इस सम्बन्ध में उपलब्ध परिभाषाओं को सुविधा की दृष्टि से दो श्रेणियों में वर्गीकृत कर सकते हैं - परंपरागत और समसामयिक परिभाषाएँ।

1.4.1 परंपरागत परिभाषाएँ

परंपरागत परिभाषाएँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की सीमा राज्य और उनके बीच के संबंधों तक ही सीमित रखती है।

हेंस जे. मारगेन्थाऊ (Hans. J. Morgenthau) हेराल्ड, स्प्राऊट (Harold Sprout), केनेथ थॉम्पसन (Kenneth Thompson) जैसे प्रमुख विद्वानों की परिभाषाओं को पंरपरागत परिभाषा में शामिल किया जा सकता है।

हेंस जे. मारगेन्थाऊ (Hans. J. Morgenthau) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का अर्थ राज्यों के मध्य शक्ति के लिए संघर्ष तथा उसका प्रयोग से है।

क्विंसी राइट (Quincy Wright) के विचार में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध ''एक ऐसी कला है जिसके माध्यम से कोई वर्ग-गुट अन्य गुटों को प्रभावित अथवा नियंत्रित करता है।

बर्टन (Burton) के विचार में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में सामान्य वार्ता के अतिरिक्त वे सभी घटनाएँ और परिस्थितियां शमिल है। जिनका प्रभाव एक से अधिक राज्यों पर पड़ता है। यह शंतिपूर्ण संचारों की व्यवस्था है जहाँ राज्य सोच समझ कर तथा स्वहित में विवादों को टालना चाहते हैं क्योंकि विवाद उन्हें मंहगे पड़ते हैं।

हेराल्ड स्प्राऊट (Harold Sprout) मत में स्वतंत्र राज्यों के अपने-अपने उद्देश्यों एवं हितों के आपसी विरोध-प्रतिरोध या संघर्ष से उत्पन्न उनकी प्रतिक्रिया एवं संबंधों का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहलाता है।

वि.वि. डॉयक (V.V. Dyke) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्यों की सरकारों के मध्य शक्ति संघर्ष है।

केनेथ थॉम्पसन (Kenneth Thompson) के मतानुसार राष्ट्रों के मध्य प्रारम्भिक प्रतिस्पर्धा के साथ-साथ उनके आपसी संबंधों को सुधारने या खराब करने वाली परिस्थितियों एवं समस्याओं का अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति कहलाता है।

इन परिभाषाओं के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय संबंध का अर्थ है ''राज्यों के मध्य हो रही राजनीति की व्याख्या और उसका विश्लेषण करना। इस मत में विश्वास रखने वाले विद्वान तीन प्रमुख तत्वों की ओर ध्यान आकर्षण करते हैं।

(क) राष्ट्रों की अस्तित्व की ओर;

(ख) राष्ट्रों के बीच असहयोग, विरोध एवं संघर्ष की ओर;

(ग) राष्ट्र हितों की पूर्ति की ओर जो राष्ट्र का मुख्य लक्ष्य माना जाता है।

अतः अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध राष्ट्रों की उन क्रियाओं का अध्ययन करता है जिसके अंतर्गत राष्ट्र अपने हितों की पूर्ति के लिए शक्ति के आधार पर संघर्षरत रहते है। इस तरह राष्ट्रीय हित अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन का केन्द्र बिन्दु हैं। राष्ट्र हित की सिद्धि के लिए उपजे संघर्ष इसकी दिशा तय करते है तथा शक्ति इस उद्देश्य प्राप्ति का प्रमुख साधन माना जाता है।

1.4.2 समसामयिक परिभाषाएँ

समकालीन परिभाषाएँ में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध को और व्यापक रूप में प्रस्तुत किया जाता है यहाँ राष्ट्र को मुख्य कारक मानते हुए अन्य और कारकों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया जाता है। नवीन कारकों में अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें, गैर-सरकारी संगठन, बहु राष्ट्रीय कंपनियाँ/निगम आदि को जोड़ा जाता है। समसामयिक परिभाषाओं की परिधि में पामर-परकिंस, होफमैन, क्विंसी राइट आदि विद्वानों के मतों के लिया जा सकता है।

नार्मन डी. पामर व होवार्ड सी परकिंस (Norman D. Palmer & Howard C. Perkins) के मतानुसार अन्तर्राष्ट्रीय संबंध केवल राष्ट्र राज्यों, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों तथा समूहों के परस्पर संबंधों के दायरे तक बंधा हुआ नहीं है, यह विभिन्न स्तर पर पाये जाने वाले उन संबंधों को भी समाहित करता है जो राष्ट्र राज्य से या तो ऊपर या नीचे स्थित हैं। इसके बावजूद यह राष्ट्र राज्य को ही अन्तर्राष्ट्रीय का केन्द्र मानता है।

स्टेनले होफमैन (Stanley Hoffman) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय संबंध उन तत्वों एवं गतिविधियों से सम्बन्धित है जो राष्ट्रों की बाह्य नीतियों एवं 'शक्ति को प्रभावित करता है।

क्विंसी राइट (Quincy Wright) के विचार में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध केवल राज्यों के संबंधों तक सीमित नहीं है, इसमें विभिन्न प्रकार के समूहों - जैसे लोग, गठबंधन, क्षेत्र, परिसंघ, अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, औद्योगिक संगठन, धार्मिक संगठन आदि के अध्ययनों को भी शामिल करना होगा।

इस तरह से समकालीन परिभाषाएँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के दायरे को व्यापक रूप से देखती है। इन परिभाषाओं से यह प्रतीत होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध निरंतर परिवर्तनशील है। अतः इसके विषय क्षेत्र को केवल राष्ट्र क्षेत्र और राष्ट्रों के बीच के संबंध तक ही सीमित रखना एक संकुचित मनोभाव को दर्शाएगा। ये परिभाषाएँ यह भी दर्शाती है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन के लिए बहुआयामी प्रयासों की आवश्यकता है। समसामियक परिभाषाएँ राष्ट्र के महत्व को किसी भी तरह से कम नहीं आंकते हुए अन्य कारकों को भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की सीमा में सम्मिलित करने का आग्रह करते हैं। इस दृष्टिकोण से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का अध्ययन एक चुनौतीपूर्ण विशय है जिस हेतु एक व्यापक, स्पष्ट तथा तर्कसंगत नजरिये की आवश्यकता है।

1.5 प्रकृति (Nature)

अति व्यापक रूप से किसी विशय को हम या तो कला मानते हैं अथवा विज्ञान। हम किसी विषय को विज्ञान की श्रेणी में तब रख सकते हैं जब वह वैज्ञानिक तौर-तरीकों के अनुरूप अपनी विषयवस्तु की व्याख्या करता हो, वैज्ञानिक तरीके से विषय को देखने का मतलब क्रमबद्ध रूप से विषय को समझने की कोशिश करना और ऐसी पद्धतियों के अनुसार व्यवहार करना है जो सार्वभौमिक हो। विज्ञान में प्रयोगात्मक पद्धतियों के माध्यम से सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना करने की कोशिश की जाती है। इस तरह से विज्ञान वस्तुपरकता में विश्वास रखता है। कला के अंतर्गत आने वाले विशय व्यक्तिपरक होते हैं। कला का लक्ष्य सार्वभौमिक सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना करना नहीं होता और कला विज्ञान की तरह निश्चित और अटल नियमों को ढूँढने में यकीन नहीं करती जो सभी स्थान और काल में लागू हो। कला, विज्ञान की तरह भविष्यवाणी करने की चेष्टा भी नहीं करती। विज्ञान का प्रत्येक निष्कर्ष कार्य-कारण को स्पष्ट रूप से व्याख्यायित करता है। विज्ञान और कला की इस व्याख्या के बाद हमें समझना होगा की क्या हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को विज्ञान की श्रेणी में रख सकते हैं या नहीं।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, विज्ञान की भाँति ऐतिहासिक, तुलनात्मक और कानूनी दृष्टिकोण के माध्यम से एक निष्पक्ष, वस्तुपरक और विवेकशील विषय की स्थापना करने की चेष्टा करता है। इस में विभिन्न ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमबद्ध रूप से अध्ययन किया जाता है। इतिहास को सिर्फ संकलित ही नहीं किया जाता वरन उसे तरह से रखने की कोशिश की जाती है जिससे हम आगे सिद्धांतों का निर्माण कर सकें। मोर्गेथाऊ का यथार्थवादी सिद्धांत, इतिहास को आधार मान कर ही निर्मित हुआ है। समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में क्षेत्रीय समूहों का तुलनात्मक अध्ययन साधारण माना जाता है। यूरोपीय यूनियन की भाँति दूसरे भौगोलिक क्षेत्रों के राष्ट्र क्षेत्रीय समूह बनाने की कोशिश करते हैं। उसी तरह अन्तर्राष्ट्रीय कानून बनाने की चेष्टा की जाती है। विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से इन कानूनों को लागू करने कोशिश की जाती है। इस तरह से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अपने विषय की न सिर्फ निष्पक्ष व्याख्या करता है बल्कि इसके लिए व्यावहारिक कदम भी उठाने का प्रयास करता है।

पर क्या यह तर्क अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को विज्ञान बनाने के लिए काफी है? यह एक ऐसा विशय है जिसमें घटनाएँ परिवर्तित होती रहती है और भविष्य में घटने वाली किसी भी परिस्थिति और परिणाम का अनुमान लगाना कठिन है। किसी भी देश की विदेशनीति को उस देश के राष्ट्रनेता की व्यक्तिगत आकांक्षाओं और शक्तियों से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। इस के चलते किसी भी परिस्थिति के प्रति राष्ट्र की प्रतिक्रिया क्या होगी इसकी भविष्यवाणी

नहीं की जा सकती। इस वजह से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में निश्चितता नहीं होती है। इस तर्क से हम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को विज्ञान के श्रेणी में नहीं डाल सकते हैं।

क्विंसी राइट का यह मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एक सीमित विज्ञान है। इसमें विाान की विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जाता है पर इसकी विषयवस्तु पर ध्यान रखते हुए निश्चित रूप से कोई भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

समकालीन युग में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का क्षेत्र अनेक नवीन विषयों तथा मूल्यों से जुड़ गया है। नारीवाद, पर्यावरण जैसे समस्याओं के सहित न्याय के विभिन्न पहलू भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन का अंग बन गये हैं। इन विषयों का समावेश अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र को तो विस्तृत किया है परन्तु उसके साथ इसकी प्रकृति को भी परिवर्तित किया है। आज इस विषय की प्रकति कला या विज्ञान के विवाद तक सीमित होकर नहीं रह गया है, नवीन पाठ्यक्रमों के आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए आज अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एक सम्मिलित विषय (Integrative Subject) के रूप में उभर रहा है।

1.6 विषय क्षेत्र (Scope)

किसी विषय का क्षेत्र उस विषय की सीमाओं को दर्शाता है। सामाजिक विज्ञान के तहत अध्ययन किया जाने वाला प्रत्येक विषय सामाजिक जीवन के एक पहलू का अध्ययन करता है जैसे कि समाज शास्त्र सामाजिक पक्ष का, राजनीतिशास्त्र राजनीतिक पक्ष का और मनोविज्ञान मनुष्य की मनोवैज्ञानिक पक्ष का प्रत्येक विषय की अपनी सीमाएं हैं जो दूसरे विषयों से उसकी पृथक विशेषता को स्पष्ट करती है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र को समझने के लिए उसकी विषय-वस्तु को स्पष्ट रूप से समझने की आवश्यकता है। अति मौलिक स्तर पर देखा जाए तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध राज्यों का अध्ययन करता है। इसके अन्तर्गत राज्यों का एक दूसरे से सम्बन्ध एवं उनकी अंतक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यूँ कहना गलत नहीं होगा कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में राज्य एक नायक बन जाता है जो अपने हितों को संरक्षित करने में निरंतर लगा रहता है और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए वह दूसरे राज्यों से मित्रवत् सम्बन्ध बनाने की कोशिश करता है। चूँकि राज्य के लिए अपना अस्तित्व और अपने हितों का संरक्षण सर्वोपरि होता है, हेंस जे. मोर्गेनाथऊ के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध मुख्य रूप से विभिन्न राज्यों के बीच शक्ति संघर्ष का अध्ययन है। हर राज्य अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए शक्ति उपार्जन करने की चेष्टा करते रहते हैं इस प्रक्रिया में संघर्ष भी हो सकता है और सहयोग भी अन्तर्राष्ट्रीय परिवेष में सहयोग के विभिन्न पहलू नजर आते हैं, जैसे सैनिक गुटों के द्वारा क्षेत्रीय शक्ति संतुलन, और आर्थिक उपकरण के माध्यम से सहयोगी सम्बन्ध को सुदृढ़ करने की चेष्टा इत्यादि।

1947 में विदेशी मामलों की परिषद् की रिपोर्ट के अनुसार पाँच तत्वों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के लिए महत्वपूर्ण माना गया है।

(क) राज्य प्रणाली का स्वरूप एवं कार्य प्रणाली

(ख) राज्य की शक्ति को प्रभावित करने वाले तत्व,

(ग) महत्वपूर्ण राष्ट्रों की स्थिति और उनकी विदेश नीति

(घ) समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

(ङ) स्थिर विश्व व्यवस्था के लिए आवश्यक तत्व

अति व्यापक रूप में देखा जाए तो समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध चार पहलुओं को छूता है।

(क) राज्यों का अध्ययन- मूलतः अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध राज्यों के मध्य अन्तःक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है। जैसा कि हम जानते हैं कि प्रत्येक राष्ट्र को अपने राष्ट्र हितों की पूर्ति हेतु अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की सीमओं में रह कर ही कार्य करना पड़ता है। प्रत्येक राज्य अपने संसाधनों के माध्यम से अपनी शक्ति वृद्धि करने की प्रयास करता है। विदेश नीति राष्ट्र की हित की अभिवृद्धि करने का सबसे उत्तम माध्यम है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का विषय क्षेत्र राष्ट्र, उनके द्वारा निर्मित विदेश नीति, राष्ट्र की हित अभिवृद्धि करने का सबसे उत्तम माध्यम है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का विषय क्षेत्र राष्ट्र, उनके द्वारा निर्मित विदेश नीति, राष्ट्रीय शक्ति, शत्रु राष्ट्र के शक्ति को प्रबंध करने के विभिन्न तरीकें तथा राष्ट्रों के स्वल्पकालीन एवं दीर्घ-कालीन हितों का अध्ययन करता है। इसके साथ विभिन्न राज्यों की संघर्षात्मक व सहयोगात्मक प्रतिक्रियाओं को भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध अपने अध्ययन की प्रमुख सामग्री के रूप में देखता है।

(ख) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं और कानून का अध्ययन- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध आवश्यक रूप से शक्ति का सम्बन्ध है। अराजक अन्तर्राष्ट्रीय परिवेष में शक्तियों का नियंत्रण कर शांति की स्थापना करना एक चुनौती है। संयुक्त राष्ट्र जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन तथा यूरोपीय यूनियन (European Union), आसियान (ASEAN) व सार्क (SAARC) आदि जैसे क्षेत्रीय संगठनों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय सतर में राष्ट्रों के हितों का संरक्षण करने के साथ-साथ स्थिरता स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध इन संगठनों को विस्तृत रूप से अध्ययन करता है। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनी अध्ययन समकालीन युग में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का एक विशेष अंग माना गया है। इसके अंतर्गत राष्ट्रों के बीच में संबंधों को कानूनी रूप से देखने की कोशिश की जाती है तथा नवीन कानूनों का अन्वेषण किया जाता है।

(ग) राज्यतर संगठनों का अध्ययन- समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा गैर सरकारी संगठनों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो गयी है। पर्यावरणीय मुद्दों को समझने के लिए ग्रीन पीस (Green Peace) को जानना उतना ही आवश्यक है जितना मानव अधिकारों की समझ हेतु एम्नेस्टी इंटरनेशनल (Amnesty International) एवं ह्यूमन राइट्स वाच (Human Rights Watch) को। आज के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का होता वैश्वीकरण तथा उसके विभिन्न पहलुओं को दरकिनार कर अध्ययन नहीं किया जा सकता है। बहुराष्ट्रीय कंपनियों (Multinational Companies) समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय हैं। इस प्रकार से समकालीन युग में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध केवल राष्ट्र और उसके बीच घटित क्रियाओं तक सीमित हो कर नहीं रह गया है वरन इसके भीतर कई अन्य घटक समाहित हो गए है।

(घ) मूल्यात्मक सिद्धान्तों का अन्वेषण- आज अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अनेक विद्वान, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक प्रक्रियाओं पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं इनका मुख्य लक्ष्य उभय स्तर पर आर्थिक आबंटन के सिद्धान्तों तथा प्रक्रियाओं का पुनः अध्ययन करना है। इस प्रकार, यह विद्वान विभिन्न मूल्यात्मक सिद्धान्तों का अन्वेशण करते है जो व्यक्ति, समूह तथा राष्ट्रों के मध्य आर्थिक विषमताओं को कम करेगा।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, राष्ट्रों का अध्ययन मात्र हो कर नहीं रह गया है। समकालीन पर्याय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का विषय क्षेत्र न केवल विस्तृत हो गया है अपितु यह अनेक रूप से चुनौतीपूर्ण भी हो गया है।

1.7 उपसंहार

इस इकाई के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय संबंध से विद्यार्थियों का परिचय करने की चेष्टा की गई है। सर्वप्रथम, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का एक विषय भी रूप में विकास की विवेचना किया गया है तत्पश्चात पारंपरिक तथा समसामयिक परिभाषाओं के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध तक की यात्रा पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। इसके साथ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की प्रकृति तथा विषय क्षेत्र के सम्बन्ध में भी चर्चा की गयी है।

1.8 शब्दावली

1. **शीत युद्ध** - विश्व महाशक्तियों के बीच वैचारिक टकराव की वह स्थिति जो वास्तविक युद्ध में परिवर्तित ना हो।

2. **राज्य** - अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन की प्रमुख एवं मूल इकाई एक निश्चित भू-भाग में बसा एक संगठित राजनीतिक समूह जिसकी अपनी एक संप्रभु सत्ता हो।

3. **राष्ट्र** - राष्ट्र के तात्पर्य एक ऐसे समूह से है जो भाषा, धर्म, इतिहास और संस्कृति के आधार पर जुड़ा हुआ हो।

4. **संयुक्त राष्ट्र संघ** - विश्व के राष्ट्रों द्वारा द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत बनाया गया एक वैश्विक संगठन जो विश्व के सभी देशों का प्रतिनिधित्व करता है। इसका मुख्य कार्य विश्व के देशों के बीच शांति स्थापित करना है। इसकी स्थापना 24 अक्टूबर, 1945 को हुई।

1.9 सन्दर्भ प्रश्न

1.9.1 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक वाक्य में देने का प्रयास करें :

1. भारत में अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन की प्रारंभिक संस्था कौन सी थी?
   .....
   .....
2. केनेथ थॉम्सन की कृति का नाम लिखिए?
   .....
   .....
3. हेंस जे मार्गेथाऊ ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को किस प्रकार परिभाषित किया है?
   .....
   .....

1.9.2 लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दें :

4. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को परिभषित कीजिये?

   .....

   .....

5. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध की प्रकृति को स्पष्ट करते हुए एक संक्षिप्त लेख लिखिए?

   .....

   .....

1.9.3 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का विस्तार से उत्तर दें।

6. विदेशी मामलों की परिषद् की रिपोर्ट के अनुसार किन पांच तत्वों को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के लिए महत्वपूर्ण माना गया है?

   .....

   .....

7. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र के बारे में एक लेख लिखिए?

   .....

   .....

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. इ. लुअर्ड, बेसिक टेक्स्ट्स इन इन्टरनेशनल रिलेशंस, माकमिलान, लंदन, 1992
2. सी. बिज पालिटिकल थिओरी, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस न्यू जर्सी, 1979
3. जे. बेलिस, एम. स्मिथ, पी. ओएन्स, ग्लोबलाइजेशन ऑफ वर्ल्ड पालिटिक्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2011
4. के.डब्ल्यू. डिउस, आन एनालिसिस ऑफ इन्टरनेशनल रिलेशंस, प्रेन्टिस हाल न्यू जर्सी, 1968
5. हंस, जे. मोर्गेथाऊ, पालिटिक्स एमांग नेशंस, नफ न्यूयार्क, 1978
6. पी. पंत, एस.पी. जैन, आर. पंचोला, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंध, मिनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2016

1.11 नोट

.....

.....

इकाई-2

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : अध्ययन के उपागम

इकाई की संरचना

2.0 इकाई का उद्देश्य

2.1 भूमिका

2.2 पारंपरिक उपागम

2.2.0 आदर्शवाद

2.2.1 यथार्थवाद

2.3 आलोचनात्मक उपागम

2.3.0 मार्क्सवादी उपागम

2.3.1 नारीवादी उपागम

2.3.2 पारिस्थितिकी उपागम

2.3.3 उत्तर-आधुनिक उपागम

2.4 उपसंहार

2.5 शब्दावली

2.6 सम्बन्धित प्रश्न

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.8 नोट

2.0 इकाई का उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन के अनेकों उपागम हैं। इस इकाई में पारंपरिक उपागमों (आदर्शवाद और यथार्थवाद) तथा समसामयिक उपागमों (आलोचनात्मक धाराओं) का विवेचन किया गया है इस इकाई के निम्नलिखित उद्देश्य है :

2.1 भूमिका

उपागम का अर्थ किसी भी विषय को देखने का दृष्टिकोण माना जा सकता है। किसी विषय को देखने व अध्ययन करने के एक से अधिक दृष्टिकोण हो सकते हैं। दृष्टिकोण या उपागम विषय की प्रकृति, क्षेत्र व विषयवस्तु को स्थिर करने में विशेष भूमिका निभाता है। विषय को अध्ययन करने की पद्धतियाँ भी उपागम की अनुसार ही निश्चित होती है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में उपागम का विशेष महत्व है। आधारभूत रूप से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध राष्ट्रों के उन क्रियाओं तथा व्यवहारों का अध्ययन है जो या तो घटित हो गया है या वर्तमान में घटित हो रहा है। यह घटना युद्ध, शांति की सन्धि या राष्ट्रों के बीच में होने वाला गठबन्धन भी हो सकता है। इन घटनाओं को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। अति कठोर दृष्टि रखने वाले विद्वान की व्याख्या में सारी घटनाएँ शक्ति के खेल का रूप लेंगी जब कि विश्व शांति की कामना रखने वाला विद्वान इन घटनाओं में उन प्रवृत्तियों का अन्वेषण करेगा जो युद्ध को घटने से रोका। पारंपरिक रूप से देखा जाये तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के दो ही उपागम मिलते हैं आदर्शवाद एवं यथार्थवाद, जबकि समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में आलोचनात्मक उपागम को महत्व दिया गया है। आलोचनात्मक उपागम अपनी दृष्टि राष्ट्रों से हटाकर व्यक्ति, समूह तथा पर्यावरण जैसे विषयों पर केन्द्रित करता है। इस अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विभिन्न उपागमों को विवेचना किया गया है।

2.2 पारंपरिक उपागम

2.2.0 आदर्शवाद

ऐतिहासिक तौर पर देखा जाए तो 1789 की फ्रांसीसी क्रांति तथा 1776 की अमेरीकी क्रान्ति को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में आदर्शवादी उपागम की प्रेरणा माना सकता है। पर आदर्शवादी विद्वान् सामान्यः अपनी आधुनिक विरासत वूड्रो विल्सन (Woodrow Wilson) में ढूँढते हैं। आदर्शवाद को दूसरे शब्दों में विल्सोनिय उदारवाद कहा जाता है। वुडरो विल्सन के अतिरिक्त कौण्डरसैट (Condorcet) बटन फिल्ड (Button Field), बनार्ड रसेल (Bernard Russel) आदि विद्वानों को इस दृष्टिकोण का प्रमुख समर्थक माना जाता है। इस दृष्टिकोण के अनुसार एक ऐसे विश्व की रचना संभव है जहाँ राष्ट्रों के बीच संघर्ष का नहीं वरन सहयोग का सम्बन्ध हो। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तथा कानूनों से वे एक आदर्श विश्व की रचना करना चाहते है जो अहिंसा व नैतिक आधारों पर आधारित हो।

इस दृष्टिकोण का यह मानना है कि मानव स्वभाविक रूपसे सकारात्मक है। मनुष्य एक दूसरे से सहयोग का सम्बन्ध बनाना चाहते हैं और मानव प्रकृति की इस व्याख्या को बृहद रूप से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। आदर्शवाद के अनुसार शांति प्रिय मनुष्यों के द्वारा निर्मित एवं संचालित राष्ट्रों के बीच स्वभाविक रूप से हितों का तारतम्य संभव है। यह राष्ट्रों के बीच समस्याओं को विकृत लालसा और भ्रष्ट विचारवाद जैसे तत्वों का प्रभाव मानते हैं।

आदर्शवादी दृष्टिकोण आवश्यक रूप से राष्ट्रो के मध्य शक्ति एवं संघर्ष के सम्बन्धों को नकारात्मक रूप से देखता है। इस कारण यह शक्ति सम्बन्धों को आपसी भरोसे और विश्वास के सम्बन्धों द्वारा विस्थापित करने की कोशिश करता है। इसके अनुसार युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय

सम्बन्ध का एक विकृत पहलू है और इसे रोकना असम्भव नहीं है। अन्तर्राष्ट्रीय कानून, मूल्यबोध तथा संस्थाओं के द्वारा युद्ध को नियंत्रित किया जा सकता है। इनका मानना है चूंकि युद्ध एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या है, अंतः इसका समाधान भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही किया जाना चाहिये। आदर्शवादी विद्वान अपने लक्ष्य प्राप्ति के लिए निम्न माध्यमों की ओर ध्यानाकर्षण करते है।

(1) सर्वप्रथम ये राष्ट्रीय स्तर पर एक लोकतान्त्रिक शासन व्यवस्था की स्थापना करना चाहते हैं जो नागरिकों के मतों पर केन्द्रित होती है। आदर्शवादी मानव प्रकृति को स्वाभाविक रूप से शांतिप्रिय मानते हैं। उनका मानना है कि लोकतांत्रिक राष्ट्रों के बीच में युद्ध की संभावनाएँ कम होती हैं। यह विचार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में लोकतान्त्रिक शांति (Democratic Peace) सिद्धांत के नाम से जाना जाता है।

(2) आदर्शवाद यह मानते हैं राष्ट्रों के बीच भी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं परन्तु इनका समाधान भी किया जा सकता हैं। इसके लिए उपयुक्त मंचों की स्थापना करना अत्यंत आवश्यक है जहां समयाग्रस्त क्षेत्रों को चर्चा और परिचर्चा के माध्यम से नियंत्रित किया जा सकता हो। आदर्शवादियों के लिए संयुक्त राष्ट्र तथा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ एक नए विश्व के निर्माण के लिए आशा की किरणें है। कई आदर्शवादी तो सम्पूर्ण विश्व के लिए एक सरकार की कामना भी करते हैं।

आदर्शवादी उपागम के विपक्ष में तर्क

आदर्शवाद उपागम की विभिन्न तरीकों से आलोचना की गयी है :-

(1) सर्वप्रथम इस उपागम में मनुष्य और राष्ट्रों के नैतिक बोध पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है। वास्तविक धरातल में हितों और नैतिकता के बीच अक्सर चयन करना पड़ता है। यह माना लेना अव्यावहारिक प्रतीत होता है वे चाहे व मनुष्य हो या राष्ट्र, कोई भी इकाई हितों को नैतिकता से अपेक्षाकृत कम महत्व देगी तार्किक रूप से आदर्शवाद एक कमजोर दर्शन पर आधारित है।

(2) मनुष्य और राष्ट्रों के नैतिक बोध को समान रूप से देखा नहीं जा सकता है। मोर्गेथाऊ के अनुसार व्यक्ति यह कह सकता है कि Fiat Justitia, pereat mundus अर्थात् मुझे न्याय चाहिए चाहें विश्व ध्वंश हो जाये। पर एक राष्ट्र को यह कहने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। राष्ट्र कोई व्यक्ति नहीं जो केवल अपने लिए यह अपने परिवार के लिए उत्तरदायी है। राष्ट्र उन अनगिनत व्यक्तियों तथा परिवारों के लिए उत्तरदायी है जिन्होनें अपने संरक्षण के लिए न की ध्वंश के लिए, उसका निर्माण किया है।

(3) राष्ट्रों के संबंधों के दायरे से शक्ति व संघर्ष की राजनीति को सम्पूर्ण रूप से नकारना अपरिपक्व विश्लेषण प्रतीत होता है। राष्ट्र संघ ऑफ नेशंस इसका ज्वलंत उदाहरण है जो द्वितीय विश्व युद्ध को रोकने में सम्पूर्ण रूप से असफल रहा। आदर्शवादी उपागम एक काल्पनिक विश्व को अपना आधार मानता है जहाँ राष्ट्र विवेकशील इकाई के रूप में प्रस्तुत किये जाते है। वास्तविक विश्व में ऐसा नहीं होता। विभिन्न बाह्य और आतंरिक तत्व एक राष्ट्र को दूसरे अन्य राष्ट्रों से विशेष व्यवहार करने के लिए विवश कर सकते हैं।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध केवल आदर्शवादिता के आधार पर चलाया नहीं जा सकता है। राष्ट्र अपनी छवि को दूसरे राष्ट्रों के सन्दर्भ में ही आंकते हैं। कभी आर्थिक प्रतिस्पिर्धा

तो कभी शक्ति संतुलन के माध्यम से एक दूसरे को समान स्तर पर रखने की चेष्टा करते हैं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सम्यक अध्ययन हेतु एक ऐसे उपागम की आवश्यकता है जो वास्तविक संबंधों को अपना आधार मानता हो न की एक काल्पनिक विश्व को यथार्थ धरातल की इन वास्तविकताओं की उपेक्षा के कारण ही आदर्शवादी उपागम अंतराष्ट्रीय सम्बन्ध के विश्लेषण में विशेष सहायक नहीं हो पाया। राष्ट्र संघ (League of Nations) की असफलता इसका प्रत्यक्ष परिणाम है।

आदर्शवादी उपागम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में नैतिकता पर बल देता है। इसके अनुसार राष्ट्रों के मध्य शांतिपूर्ण सम्बन्ध हेतु आवश्यक नैतिक मूल्यों को विभिन्न संस्थओं तथा कानूनों के माध्यम से निर्मित किया जा सकता है। यह एक आशावादी उपागम है जो यह विश्वास रखता है कि राष्ट्रों के बीच शक्ति व संघर्ष के परिवेश को समाप्त किया जा सकता है। इस प्रकार आदर्शवादी दृष्टिकोण एक आदर्श विश्व की स्थापना करने की तरीकों का अन्वेषण करता है।

2.2.1 यथार्थवाद

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन में यथार्थवादी उपागम अपेक्षाकृत रूप से ज्यादा लोकप्रिय है। आधुनिक यथार्थवाद की शुरूआत निकोली मैकिआवेल्ली और थॉमस होब्स की लेखनी से मानी जाती है। प्राचीन युग में कई विद्वानों में भी यथार्थवाद के तत्व मिलते हैं जिनमें कौटिल्य (अर्थशास्त्र) और थूसदैद्स (ए हिस्ट्री ऑफ पेलोपोंनेस्सियन वार) का नाम लिया जा सकता है। इस उपागम में विश्वास रखने वाले विद्वानों में हान्स जे. मोर्गेथाऊ, रेनोल्ड निबुर, हेनरी किसिंजर तथा केनेथ वाल्ज़ का नाम लिया जाता है। यथार्थवादी विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को आवश्यक रूप से शक्ति व संघर्ष की राजनीति की तौर पर देखते हैं। यथार्थवाद के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र स्वहित के लक्ष्य के प्रेरित होकर दूसरे राष्ट्रों से सम्बन्ध स्थापित करता है। सबसे मौलिक स्तर पर राष्ट्रहित राष्ट्र के स्वयं के अस्तित्व का संरक्षण और बचाव से सम्बन्धित है। शक्ति के माध्यम से प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वहित को सुरक्षित करता है। संरक्षित करता है और उसकी वृद्धि भी करता है। यथार्थवाद की कृतिओं में शक्ति के विभिन्न पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाता है परन्तु सैन्य शक्ति को अपेक्षाकृत रूप से ज्यादा महत्व दिया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में शक्ति व संघर्ष की प्रधानता के कारण की व्याख्या करने की चेष्टा में यथार्थवाद दो धाराओं में विभाजित हो जाता है। प्रथम धारा के प्रतिनिधि के रूप में मोर्गेथाऊ को लिया जा सकता है। जो मानव प्रकृति को शक्ति व संघर्ष की राजनीति का आधार मानता है। इनके अनुसार मानव स्वाभाविक रूप से शक्ति की लालसा से प्रेरित होता है। अतः मानव सम्बन्धों में विरोध व संघर्ष स्वाभाविक है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध मनुष्य की इसी स्वभाव का वृहत प्रतिबिम्ब है। यथार्थवाद के अनुसार राष्ट्रों के सम्बन्धों में संघर्ष अपरिहार्य है। विभिन्न माध्यमों से इसे नियंत्रित तो किया जा सकता है पर सम्पूर्ण रूप से रोका नहीं जा सकता। इस धारा को पारंपरिक यथार्थवाद (Classical Realism) के नाम से जाना जाता है।

मार्गेथाऊ के राजनैतिक यर्थाथवाद के छः सिद्धान्त

(1) समाज के सामान्य सिद्धांतों के अनरूप ही राजनीति भी मौलिक सिद्धांतों से शासित होती है जिसकी जड़े मानव प्रकृति में अंतरनिहित है। समाज को सुधारने के लिए इन मौलिक सिद्धांतों को समझना अति आवश्यक है।

(2) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में राष्ट्रहित को शक्ति के माध्यम से ही परिभाषित किया जा सकता है। मोर्गेथाऊ का मत है कि शक्ति के नाम से लक्षित स्वार्थों का विचार ही वह प्रमुख मार्गदर्शक है जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में यथार्थवाद का पथप्रदर्शन करता है। विदेश नीति राष्ट्र हित का मुख्य माध्यम होता है। एक कुशल विदेशनीति राष्ट्र के लाभों में वृद्धि और क्षतिओं को कम करती है।

(3) राष्ट्रहित जिसे शक्ति के माध्यम से परिभाषित करते है एक सत्य जरूर है परन्तु यह कोई स्थिर अर्थ या प्रकार से बंधा हुआ है। विदेशनीति के राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ के अनुसार राष्ट्रहित परिवर्तनशील है।

(4) यथार्थवादी राजनीतिक क्रियाओं के नैतिक महत्व को मान्यता देता है। परन्तु यह सफल राजनैतिक क्रियाओं की आवश्यकताओं और नैतिक सिद्धातों के मध्य विवादों की संभावनाओं को अनदेखा नहीं करता।

(5) राष्ट्र की नैतिकता, जगत की नैतिकता के सिद्धातों से अलग हो सकती है।

(6) राजनैतिक क्षेत्र, नैतिक एवं विधि क्षेत्र से स्वतंत्र है।

यथार्थवाद की द्वितीय धारा का प्रतिनिधित्व केनेथ वाल्ज़ कहते है इस गुट को संरचनात्मक यथार्थवादी (Structural Realism) या नवयथार्थवादी (Neo-realism) के रूप में जाना जाता है। इनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की विशेषता इसकी अराजक व्यवस्था है जहां कोई केन्द्रीय सत्ता उपस्थित नहीं है। केन्द्रीय सत्ता के अनुपस्थिति के कारण किसी भी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय कानून या मूल्यबोध का सार्वभौमिकरण संभव नहीं हो पाता। प्रत्येक राष्ट्रों की शक्ति को निरंतर आंकता रहता है। राष्ट्रों के बीच में विश्वास व भरोसे का परिवेश का परिवेश नहीं पाता है। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों से भयभीत रहता है। किसी राष्ट्र का शक्ति या क्षमता में वृद्धि हाते ही दूसरे राष्ट्र, विशेष कर पड़ोसी राष्ट्र, असुरक्षित अनुभव करने लगते है। नवयथार्थवाद (या संरचनात्मक यथार्थवाद) के अनुसार या सुरक्षा-दुविधा (Security Dilemma) ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शक्ति व संघर्ष की राजनीति का मुख्य कारण है। राष्ट्रों के बीच निरंतर चल रही हथियारों की होड़ इसका उपयुक्त उदाहरण है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शक्ति व संघर्ष की राजनीति की व्याख्या करने में नवयथार्थवादी, राष्ट्र के किसी भी आंतरिक तत्वों के योगदान को सम्पूर्ण रूप से खारिज करते है।

यथार्थवाद की दोनों धाराएं शक्ति की राजनीति को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का एक अटूट व महत्वपूर्ण तत्व मानती है। इसके अनुसार शक्ति संतुलन (Balance of Power) के माध्यम से ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापित की जा सकती है। शक्ति संतुलन की अवधारणा का मानना है कि प्रत्येक राष्ट्र, दूसरे राष्ट्र का प्रतिद्वंदी है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थिरता और शांति बनाए रखने के लिए विभिन्न राष्ट्र या राष्ट्रगुटों के बीच में समतुल्यता का परिवेश रहना आवश्यक है। इस तरह से कोई भी राष्ट्र या राष्ट्रगुट अपने वर्चस्व दूसरों के ऊपर स्थापित नहीं कर सकता है।

यथार्थवादी उपागम के विपक्ष में तर्क

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के यथार्थवादी उपागम की निम्नलिखित रूप से आलोचना की जा सकती है।

(1) सर्वप्रथम, पारंपरिक यथार्थवाद मानव प्रकृति का एकतरफा विश्लेषण करता है। यह विश्लेषण मनुष्य को स्वाभाविक रूप से नकारात्मक मानता है। जिसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य शक्तिप्राप्ति है। यह विश्लेषण मनुष्य के सकारात्मक पहलुओं की अनदेखी करता है। इस आधार पर यथार्थवाद की यह धारा राष्ट्रों के बीच संघर्ष को सत्य और किसी भी तरह के सहयोग को संशय की दृष्टि से देखती है। इस प्रकार यह उन सभी सकारात्मक पहलुओं की अनदेखी करता है जो राष्ट्रों और राष्ट्रसमूहों के द्वारा इतिहास के विभिन्न पर्यायों में किया गया है। इसमें संयुक्त राष्ट्र जैसी संस्था और गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को शामिल किया जा सकता है।

(2) यथार्थवाद राष्ट्रों के बीच सहयोग के अनेक तत्त्वों की भी अनदेखी करता है। अगर हम आज के युग में देखें तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का एक महत्वपूर्ण आधार आर्थिक तत्त्वों में मिलेगा जो विश्व के विभिन्न राष्ट्रों को एक सूत्र में बाँधने की कोशिश करता है।

(3) यथार्थवाद के विश्लेषण के तहत राष्ट्र ही अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की एकमात्र इकाई है। यह अपने क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय तथा बहुराष्ट्रीय संगठन, मानव अधिकार जैसे संकल्पनाओं के लिए स्थान नहीं बना पाता है।

(4) यथार्थवाद राष्ट्रहित को अस्थिर और परिवर्तनीय मानते है परन्तु वे यह व्याख्या करने में सक्षम नहीं है कि किन कारणों से राष्ट्रहित परिवर्तित होता रहता है।

(5) यथार्थवादी विश्लेषण अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किसी भी तरह के मूल्यबोधों के लिए स्थान नहीं बन पाया। राष्ट्रों को निरतंर स्वहित प्राप्ति में जुटी हुई इकाईयों के रूप में देखने के कारण यह उपागम राष्ट्रों के बीच किसी भी प्रकार के मूल्यबोध के विकास को नकारता है।

विभिन्न आलोचनाओं के बावजूद यथार्थवादी उपागम अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में सबसे महत्वूपर्ण उपागम माना जाता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का विश्लेषण, वास्तविक परिवेष एवं वैज्ञानिक तरीकों से करते हुए, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को एक स्वतंत्र विषय के रूप में देखने का प्रयास करता है।

2.3 आलोचनात्मक उपागम

सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में आलोचनात्मक दृष्टिकोण की स्थापना का श्रेय फ्रंक फ्रर्ट स्कूल के मैक्स होर्खइमेट (Max Horkheimer) को जाता है जिन्होंने 1937 में सर्वप्रथम इस शब्द का प्रयोग किया। इसके माध्यम से हार्खेइमेर और हेबरमास (Habermas) जैसे विद्वान ज्ञान की प्रकृति और पद्धतियों पर प्रश्न चिन्ह लगाने की चेष्टा की। मार्क्सवाद और उत्तर आधुनिकवाद जैसे सिद्धांतों से प्रेरित इस उपागम के विद्वानों के लिए मनुष्य की मुक्ति ही ज्ञान का आधार तथा लक्ष्य हो गया।

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में आलोचनात्मक उपागम की शुरूआत 1980 के दशक में हुई। प्रारंभिक पर्याय में रोबर्ट कोक्स (Robert Cox), रिचर्ड आशली (Richard Ashley), मार्क होफ्फ्मन (Mark Hoffman) तथा एंड्रु लिंक्लाटर (Andrew Linklater) जैसे विद्वानों का नाम इस उपागम से जुड़ा रहा। मुख्य रूप से इन विद्वानों ने यथार्थवादी उपागम की आलोचना पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। एंड्रू लिंक्लाटर ने विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विषयक्षेत्र

को विभिन्न सामाजिक एवं मूल्यात्मक धाराओं से जोड़ने की चेष्टा की इस तरह से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का विषय क्षेत्र राष्ट्रों से हट कर राष्ट्र के भीतर निवास करने वाले विभिन्न समूहों और उनकी समस्याओं पर टिकने लगा। मानव अधिकार, नारीवाद, पारिस्थितिकीवाद तथा उत्तर-आधुनिकवाद जैसी धाराएँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध क्षेत्र में स्थान प्राप्त करने लगी। आलोचनात्मक उपगम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर में घट रहे प्रत्येक प्रभावों को अध्ययन के विषय के रूप में देखता है।

2.3.0 मार्क्सवादी उपागम

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का मार्क्सवादी उपागम, यथार्थवादी और उदारवादी धाराओं द्वारा प्रतिपादित संघर्ष तथा सहयोग के सिद्धांतों को नकारता है मार्क्सवादी मानते हैं के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विश्लेषण को केवल राष्ट्रों के बीच घट रहीं किया तथा व्यवहारों तक ही सीमित नहीं रखा जा सकता है। इनके अनुसार राष्ट्र सीमा के अंतर्गत चल रहीं। विभिन्न प्रक्रियाओं को भी समझाना आवश्यक है। अतः मार्क्सवादी उपागम राष्ट्रों के अभ्यंतर क्षेत्र में चल रही शोषण की प्रक्रिया को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रही शक्ति व संघर्ष की राजनीति से जोड़ने की चेष्टा करते हैं इस धारा में विश्वास रखने वाले विद्वान यथार्थवाद तथा आदर्शवाद को राष्ट्रीय अभिजनों के स्वहितकारी सिद्धान्त के रूप में देखते हैं जिसके द्वारा विश्व में आर्थिक विषमता की मौजूदा स्थिति को संरक्षित करने की चेष्टा की जाती है। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के अनुसार विश्व व्यवस्था और मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, राष्ट्रीय पूँजीवादियों के द्वारा पूंजी की वृद्धि करने के लक्ष्य से निर्मित की गयी हैं। इस मूलभूत आधार पर मार्क्सवादी दो धाराओं की रचना करते हैं। प्रथम धारा को अवलंबी सिद्धांत (Dependency Theory) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसका मानना है कि पूंजीवादी तथा औद्योगिक राष्ट्र, गरीब तथा अविकसित राष्ट्रों को सैनिक बल एंव आर्थिक पाबंदियों के माध्यम से अवलंबी बनाकर रखते हैं। हान्स सिंगर (Hans Singer) तथा रौली प्रेबिस (Raul Predisch) के द्वारा 1941 में दिया गया यह सिद्धांत विश्व में आर्थिक पुनर्वितरण की मांग करता है। द्वितीय धारा के प्रतिपादक इम्मनुएल वाल्लेस्टैंन (Immanuel Wallerstein) है। इसे विश्व व्यवस्था (World Systems Theory) के नाम से जाना जाता है। इसके अनुसार पूरे विश्व को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है - कोर राष्ट्र, पेरीफेरी राष्ट्र और सेमी-पेरीफेरी राष्ट्र कोर राष्ट्रों के पास उच्च स्तर की कार्यकुशलता और पूंजी आधारित उत्पादन की क्षमता होती है जबकि पेरीफेरी और सेमी-पेरीफेरी राष्ट्रों के पास निम्न स्तर की कार्यकुशलता और श्रम आधारित उत्पादन व्यवस्था होती है। परिणामस्वरूप विश्व व्यवस्था में कोर राष्ट्रों का ही वर्चस्व रहता है। इस तर्क के माध्यम से मार्क्सवादी उपागम राष्ट्रों के बीच की आर्थिक विषमता और वर्ग शोषण को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के विश्लेषण के लिए महत्वपूर्ण बनाते है।

2.3.1 नारीवादी उपागम

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में नारीवादी धाराओं का प्रवेश 1990 के दशक में शीतयुद्ध के उपरांत ही हुआ है। इस समय अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विषय क्षेत्र, प्रकृति तथा लक्ष्यों का पुनर्मूल्याकंन किया जाने लगा। विभिन्न सामाजिक तथा बौद्धिक धाराओं ने कई दिशाओं से राष्ट्र-राज्य की केन्द्रीयता पर प्रश्न चिन्ह उठाये। इनमें से एक नारीवाद भी रहा जिसने सभ्य जगत की राजनीति में युद्ध तथा विध्वंसकारी अस्त्र-शस्त्रों की वैधता पर प्रश्न उठाए। उत्तरोत्तर पर्याय में जहाँ जे.आन टिकनर (J. Ann Tickner) जैसी विद्वानों ने जहाँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में पुरूषत्व के वर्चस्व का आलोचना की, वहीं सिंथिया एन्लोए (Cynthia Enole), जे.बी. एल्शतैन (J.B.

Etshtain), क्रिस्टीन सिल्वेस्टर (Christine Sylvester) जैसे विद्वानों ने नारीवादी दृष्टिकोण के विभिन्न पहलुओं का विवेचन किया। परिणामस्वरूप नारीवाद ने न केवल अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की नवीन धाराओं में ही अपनी उपस्थिति दर्ज करायी वरन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में विश्लेषण के स्तर को राष्ट्र के अंतर्गत बसने वाले नागरिकों तक पहुंचाने में भी सफल रहा।

2.3.2 पारिस्थितिकीवादी उपागम

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में पारिस्थितिकीवाद भी अभिनव प्रयास है। हरित सिद्धांत के नाम से प्रचलित यह धारा विश्व का ध्यान विभिन्न राष्ट्रों को पारिस्थितिकी पदचिन्हों (Ecological Footprints) की ओर आकर्षित करती है। इसके के अंतर्गत न केवल प्रदूषण जैसे मुद्दे अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की विषयवस्तु में स्थान पाते हैं बल्कि वैश्विक पर्यायवरणीय शासन के बारे में भी विमर्ष किया जाता है। संधारणीय विकास (Sustainable Development) पारिस्थितिकीवाद का एक अत्यंत महत्वपूर्ण देन है जो विकास को केवल आर्थिक मानदंडों के आधार पर परिभाषित नहीं करता। इसके अनुसार विकास का अर्थ संसाधनों के विवेकशील उपयोग से है जो वर्तमान के साथ-साथ आनेवाली पीढ़ियों को भी ध्यान में रखता है।

2.3.3 उत्तर-आधुनिक उपागम

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में उत्तर-आधुनिक धाराओं का प्रवेश 1980 की दशक में हुआ। उत्तर-आधुनिकवाद पुनर्जागरण युग की मान्यताओं को नकारता है। पुनर्जागरण ज्ञानोदय का एक बेहद ही महत्वपूर्ण मान्यता एकीकृत तथा सुसंगत सिद्धांत का निर्माण करता रहा है। आधुनिकवाद मानता हे कि प्रत्येक क्षेत्र सत्य की एकाश्मता पर विश्वास करता है। इसके विरोध में उत्तर-आधुनिकवाद प्रत्येक क्षेत्र में अनेक सत्य की होने की पैरवी करता है। उत्तर-आधुनिकवाद के विद्वान सिद्धांत निर्माण करने से ज्यादा विखंडन में विश्वास करते हैं। इस तरह से देर डेरियन (Der Derian), रिचर्ड देवेतक (Richard Devetak), रिचर्ड आशली (Richard Ashley) तथा रोबर्ट वॉकर (Robert Walker) जैसे उत्तर-आधुनिकवादी विद्वान उन आवाज़ों को मुक्ति देना चाहते हैं जो यथार्थवाद तथा आदर्शवाद जैसे पारम्परिक उपागमों के सिद्धान्त अन्वेषण के नीचे दब कर रहे गये है। दूसरे शब्दों में उत्तर-आधुनिक विद्वानों का मानना है कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में एक सत्य का अन्वेषण अनेक सत्यों को अभिव्यक्त होने से रोक रखा है। उत्तर-आधुनिक विद्वान ऐतिहासिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की विभिन्न अवधारणाओं तथा संकल्पनाओं के विखंडन करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार से वे राष्ट्र की निर्माण के विभिन्न दार्शनिक तथा व्यावहारिक क्रमों का अध्ययन करते हैं जिसके माध्यम से ऐतिहासिक रूप से समाज में अधिकारों का आबंटनकारी प्रक्रियाएं एवं अधिकारहीन समूहों के बारे में ज्ञान मिलता है। उत्तर-आधुनिकवादी विद्वान अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध को केवल राष्ट्रों के मध्य व्यवहार या क्रियाओं तक सीमित नहीं रखते है। बल्कि इनके लेखों में राष्ट्र के अभ्यंतर में चल रहे विभिन्न समूहों के समस्याएँ, हाशिए की आवाज़े तथा शक्ति का संघर्ष का अध्ययन मिलता है।

2.4 उपसंहार

इस इकाई के तहत अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विभिन्न उपागमों का विवेचन किया गया है। पारंपरिक उपागमों में यथार्थवाद तथा आदर्शवाद के पक्ष एवं विपक्ष के उठे तर्कों को सरल रूप में प्रस्तुत किया गया है। समकालीन उपागमों में आलोचनात्मक उपागमों पर ध्यान केन्द्रित किया

गया है। इसके अन्तर्गत मार्क्सवादी, नारीवादी, पारिस्थितिकीवादी तथा उत्तरआधुनिक धाराओं की संक्षिप्त में चर्चा की गयी है।

2.5 शब्दावली

सुरक्षा-दुविधा- किसी राष्ट्र की वह स्थिति जो दूसरे राष्ट्रों के समक्ष उसे अपनी सुरक्षा के लिए हथियारों को एकत्रित करने की ओर प्रेरित करती है। इस तरह से राष्ट्र सुरक्षा के नाम पर असुरक्षा का भंवर बनाने में लग जाते हैं।

शक्ति संतुलन- शक्ति संतुलन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थिरता बनाये रखने का एक प्रयास है। इसके माध्यम से प्रतिद्वन्द्वी राष्ट्र शक्तियाँ एक-दूसरे के विरोध में गठबंधन का निर्माण करती हैं इस गठबंधन का मुख्य लक्ष्य विभिन्न राष्ट्रों के बीच शक्ति-समतुल्यता का संतुलन बनाये रखना होता है।

संधारणीय विकास- इससे तात्पर्य संसाधनों के विवेकशील उपयोग से है जो वर्तमान के साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों को भी ध्यान में रखता है।

पुनर्जागरण युग- यूरोप में 13वीं से 15वीं सदी का समय, जिसमें कला, साहित्य, विज्ञान एवं धार्मिक क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए।

2.6 सन्दर्भ प्रश्न

2.6.0 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक वाक्य में देने का प्रयास करें -

1. अंतराष्ट्रीय संबंधों में आदर्शवादी सिद्धांत का प्रतिपादक किन्हें माना जाता है?

   .....

   .....

2. यथार्थवादी उपागम की धाराओं के नाम लिखिए?

   .....

   .....

3. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में उत्तर-आधुनिक धाराओं का प्रवेश किस दशक में हुआ?

   .....

   .....

4. मैक्स होर्खैमेर का नाम किस दृष्टि कोण से सम्बन्धित है?

   .....

   .....

2.6.1 लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दें :

1. अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के मार्क्सवादी उपागम पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए?

   .....

   .....

2. आदर्शवादी उपागम की आलोचना के क्या कारण है?

   .....

   .....

2.6.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संरचनात्मक यथार्थवादी या नवयथार्थवादी अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य की व्याख्या पारंपरिक यथार्थवादियों किस प्रकार से अलग करते हैं?

   .....

2. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में उत्तर-आधुनिक उपागम के विशेषता का उल्लेख करें।

   .....

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हंस जे. मोर्गेथाऊ, पालिटिक्स एमांग नेशंस, नफ, न्यूयार्क, 1978
2. सी. कंगली, कंट्रोवर्सिज इन इन्टरनेशनल रिलेशंस थ्योरी, सेंट मार्टिस, न्यूयार्क, 1995
3. आर.किओहेन, निओरिएलिस्म एण्ड इट्स क्रिटिक्स, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1986
4. डी. बाल्डविन, निओरिएलिस्म एण्ड निओलिबरलिस्म, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2003
5. पी. पंत, एस.पी. जैन, आर. पंचोला, अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ, 2016

2.8 नोट

.....

.....

इकाई-3

राज्यव्यवस्था, राष्ट्रीय शक्ति, राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय सुरक्षा

इकाई की संरचना

3.0 इकाई का उद्देश्य

3.1 भूमिका

3.2 आधुनिक राष्ट्रराज्य व्यवस्था

3.2.0 समकालीन विश्व व्यवस्था

3.3 राष्ट्रीय शक्ति

3.3.0 राष्ट्रीय शक्ति के विभिन्न तत्व

3.3.1 राष्ट्रीय शक्ति के विभिन्न साधन

3.4 राष्ट्रीय हित

3.4.0 राष्ट्रीय हित के विभिन्न तत्व

3.4.1 राष्ट्रीय हित के विभिन्न साधन

3.5 राष्ट्रीय सुरक्षा

3.5.0 सुरक्षा का यथार्थवादी दृष्टिकोण

3.5.1 सुरक्षा का समकालीन दृष्टिकोण

3.6 उपसंहार

3.7 शब्दावली

3.8 सम्बन्धित प्रश्न

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.10 नोट

3.0 इकाई का लक्ष्य

यह इकाई अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की मुख्य अवधाराणाओं से विद्यार्थियों को अवगत करने की कोशिश करती है। इसमें राज्यव्यवस्था, राष्ट्रीय हित तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की विवेचना का विषय बनाया गया है। इस इकाई के निम्नलिखित हैं -

- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मुख्य संकल्पना तथा अवधारणाओं को स्पष्ट रूप से समझना।
- आधुनिक राष्ट्र राज्य व्यवस्था का महत्त्व तथा उसमें आये परिवर्तनों पर प्रकाश डालना।
- राष्ट्रीय शक्ति तथा राष्ट्रीय हित को समझना।
- राष्ट्रीय सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं के बारे में ज्ञान प्राप्त करना।

3.1 भूमिका

आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का प्रारंभ 1648 में वेस्टफालिया की संधि (Treaty of Westphalia) के साथ हुआ, जब यूरोप में औपचारिक रूप से आधुनिक राष्ट्र-राज्य व्यवस्था की स्थापना हुई। यूरोपीय साम्राज्यवाद के माध्यम से इस राष्ट्र-राज्य व्यवस्था का विस्तार उत्तर व दक्षिण अमेरिकी, अफ्रीकी तथा एशियाई देशों में हुआ। 1648 के उपरांत, राज्य की अवधारणा और दूसरे राज्यों में उनकी संबंधों की प्रकृति में अनेक परिवर्तन हुए। प्राचीन भारत, चीन तथा अरब की सभ्यता में राजनैतिक क्षेत्र के विकास को नकारा नहीं जा सकता। यूरोप में भी रोमन साम्राज्य के अंतर्गत राज्यों ने मध्य संचार क्षेत्र में अनेक उपलब्धियों अर्जित की थी। परन्तु 1648 से पहले राष्ट्रों को धार्मिक व्यवस्था से स्वतंत्र करके नहीं देखा जा सकता। उस समय राष्ट्रों के अभ्यंतर की शासन व्यवस्था तथा राष्ट्रों के मध्य सम्बन्ध, धार्मिक सिद्धान्तों से प्रेरित होते थे। 1648 की वेस्टफालिया की संधि ने राष्ट्रों को स्वतंत्र सिद्धान्तों के आधार पर विकसित किया।

3.2 आधुनिक राष्ट्र-राज्य व्यवस्था

पामर एवं पर्किन्स (Palmer & Perkins) के अनुसार राज्य व्यवस्था से हम उस राजनैतिक जीवन की ओर दिशा-निर्देश करते हैं जो विश्व में बसने वाले मनुष्यों को संप्रभु राज्यक्षेत्र के नागरिक बनाता हे और उन राज्यक्षेत्रों का परस्पर के साथ रहना सिखाता है। 1648 की वेस्टफालिया की संधि की को स्पष्ट प से तीन आधुनिक तत्त्वों को जन्म देने का श्रेय जाता है।

- राज्य-सम्प्रभुत्ता का सिद्धान्त (The Principle of State sovereignty)
- राज्य की (वैधानिक) समानता का सिद्धान्त (The principle of [legal] equality of states)
- अन्य राज्यों के आंतरिक विषय में अहस्तक्षेप का सिद्धान्त (The principle of non-intervention of one state in the internal affairs of another)

राज्यों की क्षेत्रीय स्वतन्त्रता व संप्रभुसत्ता का निरूपण वेस्टफालिया की संधि का सबसे महत्वपूर्ण बौद्धिक योगदान रहा है। राज्यों की संप्रभुत्ता का विस्तार से वर्णन फ्रांसीसी विद्वान ज्यां बोदा (Jean Bodin) के लेखों में मिलता है। बोदां के अनुसार संप्रभुता किसी गणराज्य में निहित निरकुंश तथा चिरस्थायी सत्ता है। सम्प्रभुत्ता राष्ट्र को अपने राज्यक्षेत्र के ऊपर सम्पूर्ण अधिकार देता है। इस संधि के अनुसार प्रत्येक सम्प्रभु राष्ट्र को अपने भौगोलिक क्षेत्र के सीमाओं के अंतर्गत घरेलू मुद्दों पर निर्णय लेने का सम्पूर्ण अधिकार है। राष्ट्रों के सैन्य बल रखने के अधिकार को भी इस संधि के माध्यम से वैधता प्रदान की गयी। इस प्रकार वेस्टफालिया के संधि ने राज्य को अधिक शक्तिशाली बना दिया। सबसे महत्वपूर्ण रूप से इस संधि ने राष्ट्र-राज्य की

अवधारणा विकसित की जिससे भौगोलिक क्षेत्रीयता ही उनकी पहचान बनी। प्रत्येक राष्ट्र द्वारा अन्य राष्ट्र की क्षेत्रीयता व संप्रभुत्ता को सम्मान देना अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का मुख्य तत्व बन गया। परिणामस्वरूप प्रत्येक राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अन्य राष्ट्र के समान माना जाने लगा। वाट्टेल (Vattel) के शब्दों में एक बौना उतना ही मनुष्य है जितना एक महाकाय। एक क्षुद्र गणराज्य किसी महाशक्ति से कम संप्रभु है (A dwarf is as much a man as a giatn is. A small republic is no less sovereign than the most powerful kingdom). इस प्रकार वेस्टफालिया की संधि ने एक नवीन विश्वव्यवस्था की नींव रखी जिसमें निर्दिष्ट सीमाओं से बंधा हुआ संप्रभु राष्ट्र मुख्य कारक के रूप से उभरा। नवीन विश्व व्यवस्था में केवल संप्रभु राष्ट्रों को ही युद्ध करने का, संधि करने का और गुटों का निर्माण करने की वैधता मिली। इस प्रकार से राष्ट्रों की बीच के संबंधों से धार्मिक और सांस्कृतिक तत्वों का वर्चस्व समाप्त हुआ हौर केवल राष्ट्र-राज्य को महत्त्व दिया गया। वेस्टफालिया राष्ट्र राज्य व्यवस्था की स्थापना के प्रथम 100 वर्षो के भीतर तीन नयी प्रक्रियाओं का प्रारंभ हो गया।

(1) राष्ट्रों राज्यों के बीच संचार की क्रिया जारी रखने के लिए औपचारिक रूप से कूटनीतिज्ञों को नियुक्ति दिया गया। कूट नीतिज्ञों को अपने राष्ट्र राज्य के वैध प्रतिनिधि के रूप में मान्यता दी गयी।

(2) यह मान्यता स्थापित हुई कि राष्ट्र राज्यों को अन्तर्राष्ट्रीय कानून मानने के लिए कोई बाध्य नहीं कर सकता। राष्ट्र राज्य केवल स्वेच्छा से उन कानूनों को मान सकता है।

(3) अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र की अराजक प्रकृति को देखते हुए एक-ध्रुवीय व्यवस्था को टालने के लिए शक्ति संतुलन एक आवश्यक व्यवस्था के रूप में उभरने लगा।

बीसवीं शदी के अंत तक वेस्टफालिया राष्ट्र राज्य व्यवस्था अनेक चढ़ाव से गुजर चुकी थी। साम्राज्यवाद के माध्यम से इसका विस्तार यूरोपीय क्षेत्र लांघकर एशिया तक पहुँच चुका था। ये कहना गलत नहीं होगा कि सम्पूर्ण विश्व इस व्यवस्था को स्वीकार कर चुका था। द्वितीय स्तर पर इस व्यवस्था का महत्वपूर्ण उप-सिद्धान्त शक्ति संतुलन दो विश्वयुद्धों को रोकने में असफल रहा था। परिणामस्वरूप, नयी संस्थाओं की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् राष्ट्र संघ (League of Nations) और द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र (United Nation) की स्थापना इसी का नतीजा रहा। इन संस्थाओं के माध्यम से शक्ति संतुलन के स्थान पर सामूहिक सुरक्षा (Collective Security) को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्यता मिली।

3.2.0 समकालीन विश्व व्यवस्था

समकालीन विश्व 193 स्वतंत्र तथा संप्रभु राष्ट्रों में संगठित राष्ट्र के रूप में राष्ट्रों ने आपस की समस्याओं के समाधान के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय मंच का गठन किया है। परिणामस्वरूप राष्ट्रों के बीच विवादों के बावजूद तृतीय विश्वयुद्ध की परिस्थिति नहीं आयी है। एक स्तर पर आज भी राष्ट्र-राज्य अंतराष्ट्रीय सम्बन्ध की मुख्य इकाई है परन्तु दूसरू स्तर पर देखा जाए तो राष्ट्र की क्षेत्रीयता व संप्रभुत्ता को चुनौती देने वाली वैश्विक प्रक्रियाएं अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी है। आज किसी भी राष्ट्र को पृथक इकाई के रूप में नहीं देखा जा सकता है। समकालीन विश्व आर्थिक व तकनीकी रूप से अत्यंत अन्योन्याश्रित है। व्यापार एवं वित्तीय व्यवस्था कल्पनातीत रूप से विस्तार कर रहे हैं। इलेक्ट्रोनिक संचार व्यवस्था के आगमन ने विश्व के विभिन्न समाजों के बीच की दूरियों को पाट दिया है। आज के समय में राष्ट्रों के

अभ्यंतर में स्थित सामाजिक समूह एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए राष्ट्रों के ऊपर निर्भर नहीं करते हैं राजनैतिक क्षेत्र में अनेक नवीन प्रवृत्तियाँ देखने को मिल रही हैं। विभिन्न पारदेशीय राजनैतिक संगठन और आन्दोलन राष्ट्रों को प्रभावित कर रहे है। इनमें बहु-राष्ट्रीय कंपनियाँ, आतंकवादी संगठन तथा पर्यावरण आन्दोलन शामिल हैं यह प्रक्रियाएँ राष्ट्रों की संप्रभुत्ता व क्षेत्रीयता पर लगातार प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं।

3.3 राष्ट्रशक्ति

शक्ति सम्बन्ध के बिना किसी भी स्तर का कोई भी मानव सम्बन्ध संभव नहीं है। चाहे व्यक्तिओं के आपसी सम्बन्ध हो या पारिवारिक/सामाजिक सम्बन्ध, शक्ति का तत्व प्रत्येक स्थान पर देखने को मिलता है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर भी इससे अछूता नहीं है। ईमानदारी से कहा जाए तो अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में शक्ति एक बेहद महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। मोगेंथाऊ की प्रसिद्ध कृति के शीर्शक पॉलिटिक्स एमोंग नेशन्सः ए स्ट्रगल फॉर पॉवर एंड पीस (Politics among nations: A struggle for Power and Peace) को देखकर इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

मोगेथाऊ (Morgenthau) के विचार में राजनैतिक सन्दर्भ में शक्ति का अर्थ है मनुष्य की वह शक्ति, जिसके द्वारा वह अन्य दूसरे मनुष्य के मस्तिष्क और उसके कार्यों के ऊपर नियंत्रण करता है।

हार्टमान (Hartmann) के मतानुसार, शक्ति का बल या क्षकता है जिसे एक प्रभुसत्ता-संपन्न राज्य अपने राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति के लिए प्रयोग कर सकता है।

रोबर्ट ए डाह्ल (Robert A. Dahl) के अनुसार, शक्ति एक विशेष प्रकार का प्रभाव है जिसका पालन न करने पर घोर हानियाँ उठानी पड़ती है।

वि.वि. डाइक (V.V. Dyke) के विचार में शक्ति इच्छा से माने गए प्रभाव से अलग बलपूर्वक मनवाया गया प्रभाव है।

श्वार्जबर्गर (Schwarzenberger) के अनुसार, शक्ति दूसरों पर अपनी अच्छा लादने और आज्ञा का पालन न करे पर उनके विरूद्ध प्रभावशाली कार्यवाही करने की क्षमता है।

अति सरल भाषा में शक्ति का अर्थ क्षमता से है जिसके माध्यम से एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार, क्रिया तथा विचारों को अपनी इच्छा के अनुरूप प्रभावित करता है। इस प्रकार से शक्ति एक सापेक्षिक अवधारणा है जिसमें दो पक्षों शक्ति प्रयोग करने वाला तथा शक्ति प्रयोग से पीड़ित पक्ष की आवश्यकता होती है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में शक्ति का अर्थ उस क्षमता से है जिसके द्वारा एक राष्ट्र अपनी इच्छा के अनुसार अन्य राष्ट्रों के व्यवहार तथा क्रियाओं को प्रभावित करता है एवं अन्य राष्ट्रों से सम्मान तथा मान्यता प्राप्त करता है।

3.3.0 राष्ट्रीय शक्ति के तत्व

राष्ट्र को विभिन्न तत्त्वों से शक्ति प्राप्ति होती हैं। इनमें जनसंख्या भौगोलिक क्षेत्र, सामरिक शक्ति जैसे मूर्त तत्व तथा नेतृत्व, राष्ट्रीय चरित्र जैसे अमूर्त तत्व सम्मिलित है। यहाँ एक-एक करके शक्ति तत्वों की चर्चा किया जा रहा है।

जनसंख्या- सामान्य रूप से जनबहुल राष्ट्र को शक्तिशाली माना जाता है। ये माना जाता है कि जनबहुल राष्ट्र में ही एक शक्तिशाली सैन्य बल एवं आर्थिक विकास हेतु आवश्यक मानव संसाधन पाया जा सकता है। परन्तु इजराइल, ब्रिटेन जैसे अनेक राष्ट्रों का उदाहरण से यह ज्ञात होता है कि राष्ट्र की जनबहुलता को ही सैन्य शक्ति या आर्थिक विकास के लिए अति-आवश्यक तत्व नहीं माना जा सकता है।

भौगोलिक क्षेत्र- राष्ट्र का भौगोलिक सन्दर्भ उसकी शक्ति को प्रभावित कर सकता है सामान्यतः यह माना जाता है कि एक बृहद भू-क्षेत्र संपन्न राष्ट्र एक लघु राष्ट्र से अपेक्षाकृत रूप से शक्तिशाली होगा। राष्ट्र की विशालता आर्थिक व सामरिक दृष्टि से भी सकारात्मक मानी जाती है। राष्ट्र का विशाल स्वरूप, कृशि तथा औद्योगिक विकास में सहायक भूमिका निभाता है। इस प्रकार एक विशाल राष्ट्र, युद्ध की रणनीति के लिए भी उपयोगी माना जाता है लेकिन इजराइल जैसे छोटा परन्तु शक्तिशाली राष्ट्र यह प्रमाणित कर देता है कि भौगोलिक आकार राष्ट्र की शक्ति के लिए एकमात्र आवश्यक तत्व नहीं है।

भौगोलिक क्षेत्र के साथ जलवायु को भी राष्ट्र शक्ति के एक महत्वपूर्ण तत्व के रूप में लिया जाता है। बर्फीले अंटार्कर्टिका या सहारा जैसे मरूस्थल निश्चित रूप से शक्ति के लिए उपयोगी स्थान नहीं है। भू-राजनीति (Geo-politics) अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का एक ऐसा विषय क्षेत्र है जो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर भौगोलिक तत्वों के प्रभावों का विश्लेषण करता है। भू-राजनीतिज्ञ अल्फ्रेड थायेर महान (Alfred Thayer Mahan) के विचार में सागरीय शक्ति राष्ट्रों को महाशक्ति बनाने में सहायक सिद्ध होती है। वहीं हल्फोर्ड माककाईडंर (Halford Mackinder) के अनुसार विश्व के केन्द्रस्थल (Heartland) को नियंत्रण करने वाला राष्ट्र ही विश्व-महाशक्ति बन सकता है।

प्राकृतिक संसाधन- राष्ट्रीय शक्ति की वृद्धि में प्राकृतिक संसाधनों के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है। समकालीन विश्व में खाड़ी के राष्ट्रों की शक्ति तैल संसाधन के कारण ही है। समग्र विश्व चाहे वह अमेरिका जैसी महाशक्ति हो या कोई विकासशील राष्ट्र वह खाड़ी राष्ट्रों पर अपने तेल की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्भर है।

सामरिक शक्ति- पारंपरिक दृष्टिकोण से सैन्य बल ही किसी राष्ट्र की शक्ति का सबसे महत्वपूर्ण मापदंड है। प्राचीन काल में विभिन्न सैन्य टुकड़ियों से राष्ट्र की शक्ति को नापा जाता था। अश्वारोही सेना, पैदल सेना तथा हस्तिरोही सेना की उपस्थिति एक राष्ट्र के महाशक्ति होने का परिचय थी। समकालीन युग में सेना को मुख्यतः तीन प्रकारों जल, थल तथा वायु में विभाजित किया जाता है। परन्तु आज का युग नाभिकीय अस्त्रों का युग है जहां ऐसा राष्ट्र जो परमाणु शक्ति संपन्न है अन्य राष्ट्रों की तुलना में शक्तिशाली मानी जाता है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि बिना आर्थिक शक्ति के सामरिक शक्ति संभव नहीं हो सकती है।

नेतृत्व- किसी राष्ट्र के पास उपरोक्त सारे तत्व होने के बावजूद भी वह एक शक्तिशाली राष्ट्र नहीं बन सकता जब तक एक कुशल नेतृत्व की कमी हो। एक सशक्त तथा सुदृढ़ नेतृत्व राष्ट्र का सकारात्मक मार्ग दर्शन करा सकता है तथा संकट के समय एक कुशल रणनीति के माध्यम से सफलता पा सकता है। समकालीन युग में एक लोकतान्त्रिक, विचारशील नेतृत्व को कुशल माना जाता है एक कुशल नेतृत्व राष्ट्र के मनोबल का विशेष ध्यान रखता है तथा राष्ट्र में बसने वाले सभी नागरिकों को समान दृष्टि से देखता है। इस प्रकार किसी भी संकटकालीन परिस्थिति में उसे नागरिकों के सहयोग की प्राप्ति होती है।

शक्ति के विभिन्न साधन या माध्यम- समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में राष्ट्रीय शक्ति को कठोर शक्ति (Hard Powder), मृदु शक्ति (Soft Power) तथा तीक्ष्णशक्ति (Smart Power) के प्रकारों के माध्यम से देखा जाता है। जोसफ न्ये (Joseph Nye Jr.) की 2004 की कृति साफ्ट पॉवर : द मीन्स टू सक्सेस इन वर्ल्ड पालिटिक्स के अनुसार किसी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में बल या शक्ति के माध्यम से हासिल की गयी जीत, कठोर शक्ति का परिचय है। वहीं अगर उसे वार्तालाप के माध्यम से अन्य राष्ट्रों का सहयोग लेकर किया जाता है तब उसे मृदु शक्ति का उदाहरण माना जा सकता है तथा जब किसी अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में उभय कठोर तथा मृदु शक्ति का संयोजित प्रयोग होता है तब इसे तीक्ष्णशक्ति का उदाहरण माना जाता है। अतः सामान्य रूप से राष्ट्रों की शक्ति या तो बल के माध्यम से, या कूटनीति के प्रयोग से या फिर पुरस्कार के माध्यम से प्रदर्शित होता है।

- **बल के माध्यम से :** राष्ट्रों के बीच में बल प्रयोग कर के अपनी बात मनवानी अति सामान्य तरीका है। 2003 में इराक में अमेरिका का इराक आक्रमण एवं तत्पश्चात घटित इराक-अमेरिका युद्ध इसका एक समाकालीन उदाहरण है।
- **कूटनीति के माध्यम से :** कूटनीति के प्रयोग से एक राष्ट्र अन्य राष्ट्रों को अपने दृष्टिकोण से ने केवल अवगत करा सकता है परन्तु अपने अनुसार सम्बन्ध स्थापना के लिए समझा बुझा सकता है।
- **पुरस्कार के माध्यम से :** राष्ट्रों को पुरस्कार या उपहार की प्रस्तुति के माध्यम से भी प्रभावित किया जा सकता है। सामान्यतः राज्य क्षेत्र, सामारिक सहायता या मुक्त व्यापार के लेन-देन के माध्यम से शक्तिशाली राष्ट्र अन्य राष्ट्रों के व्यवहार तथा क्रियाओं को अपने अनुसार सम्पन्न करवाया है।

3.3.2 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में शक्ति का स्वरूप

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध निश्चित रूप से असमान शक्तियों के बीच संबंधों का अध्ययन है, प्रत्येक राष्ट्र अपने आपको सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न माध्यमों का अन्वेषण करता रहता है। इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामान्य माने जाने वाले दो साधनों का चर्चा करना आवश्यक है। आगे शक्ति संतुलन तथा सामूहिक सुरक्षा की व्यवस्थाओं को संक्षिप्त में वर्णन किया गया है।

शक्ति संतुलन- आधारभूत रूप से देखा जाए तो शक्ति संतुलन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्थिरता रखने का एक प्रयास है। इसके माध्यम से प्रतिद्वन्दी राष्ट्र शक्तियां एक दूसरे के विरोध में गठबंधन का निर्माण करते हैं। इस गठबंधन का मुख्य लक्ष्य विभिन्न राष्ट्रों के बीच शक्ति-समतुल्यता या संतुलन बनाये रखना होता है। शक्ति संतुलन के व्यवहार का प्रमाण प्रथम विश्व युद्ध के पहले से ही मिलता है। 19वीं सदी में वर्षों तक ब्रिटेन यूरोपीय क्षेत्र में शक्ति संतुलन की भूमिका निभाता रहा। ब्रिटेन ने किसी भी दूसरे यूरोपीय राष्ट्रों को स्थाई समर्थन नहीं देकर अपने आपको किसी भी गठबंधन के तरफ किसी भी समय जाने के लिए स्वतंत्र रखा। इस प्रकार से यूरोपीय गठबन्धनों में स्थिरत्व तथा लचीलापन बरकरार रहा। 20वीं सदी में भी शक्ति संतुलन का प्रमाण मिलता हैं। प्रथम विश्व युद्ध के समय में ब्रिटेन-फ्रांस-रूस-अमेरिका को जर्मनी-आस्ट्रिया-हंगरी के विरोध में गठबंधन बनाते हुए देखा गया है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय में जर्मनी-जापान-इटली के विरोध में रूस-अमेरिका-ब्रिटेन-चीन का एक विश्व स्तर का गठबन्धन देखने को मिलता हैं।

क्विंसी राइट (Quincy Wright) के अनुसार शक्ति संतुलन निम्नलिखित पाँच अनुमानों पर आधारित है।

- प्रत्येक राष्ट्र अपने मार्मिक हितों को सभी संभावित माध्यमों से सुरक्षित रखने हेतु प्रतिबद्ध है। किसी राष्ट्र की अखंडता, भौगोलिक सुरक्षा, राजनैतिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक समृद्धता इन मार्मिक हितों में सम्मिलित हैं।
- उपरोक्त उल्लेखित मार्मिक हित कभी भी संकट में पड़ सकते हैं।
- पीड़ित राष्ट्र शक्ति संतुलन के माध्यम से आक्रमणकारी राष्ट्र को समतुल्य जवाब देने की स्थिति में हो पाता है।
- विभिन्न राष्ट्रों की शक्ति स्थिति को सापेक्षिक रूप से नापा जा सकता है। इसके माध्यम से आवश्यकता के अनुरूप शक्ति का प्रबंधन किया जा सकता है।
- शक्ति संतुलन विदेश नीति की कुशल रूप से विवेचना करने में सहायक होता है।

इस प्रकार से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्वान शक्ति संतुलन को राष्ट्रों की सुरक्षा एवं विश्व की स्थिरता के साथ जोड़ते हैं।

सामूहिक सुरक्षा- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शक्ति के प्रबंधन का दूसरा माध्यम सामूहिक सुरक्षा है। यहाँ न तो गठबन्धनों की और न ही अस्त्रों के होड़ की बात की जाती है। यह व्यवस्था 'सुरक्षा' को लक्ष्य एवं 'समूह' को माध्यम के रूप में देखती है। इसके अंतर्गत किसी भी संकटमय परिस्थिति के दौरान समग्र विश्व को एकत्रित करने तथा सुरक्षा हेतु सामूहिक रूप से कदम उठाने का प्रयास किया जाता है। इस तरह से संकट को किसी एक राष्ट्र का या गठबंधन का नहीं परन्तु समग्र विश्व की चिन्ता के रूप में देखा जाता है। इस व्यवस्था में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन को विशेष महत्व दिया जाता है। राष्ट्र संघ तथा संयुक्त राष्ट्र को इसी व्यवस्था का उदाहरण कहना असत्य नहीं होगा। संयुक्त राष्ट्र के किसी भी सदस्य राष्ट्र पर हुए आक्रमण कोसमग्र विश्व की शांति तथा स्थिरता पर संकट की तरह देखा जाता है।

3.4 राष्ट्रीय हित

राष्ट्रीय हित अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध व विदेश नीति का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विषय माना जाता है। यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्र का व्यवहार तथा प्रत्येक क्रिया राष्ट्रीय हित के संवर्धन के लिए है। जोसफ फ्रांकेल (Joseph Frankel) के अनुसार एक अवधारणा के रूप में राष्ट्रीय हित का इतिहास सोलहवीं सदी से ही प्रारंभ हुआ है। यह वह समय था जब स्पष्ट राजनैतिक सीमाओं का उदय हुआ। इसके पहले विभिन्न समाजों के बीच में सम्बन्ध धर्म, भाषा या शक्ति के आधार पर बनता था। वास्तविक रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध और राज परिवारों के बीच संबंधों में अन्तर नहीं था। फ्रांसीसी क्रांति के पश्चात् राजनैतिक राष्ट्रों का उदय हुआ जो सम्राट या राजपरिवार को एक तत्व मात्र के रूप में देखने लगा। राष्ट्र को एक स्वतंत्र इकाई के रूप में देखा जाने लगा तथा उसकी लक्ष्य की संकल्पना की जाने लगी। राष्ट्र का लक्ष्य नागरिकों का कल्याण एवं सुरक्षा करना माना जाने लगा। उसी प्रकार राष्ट्रहित की भी संकल्पना की जाने लगी। हान्स जे. मार्गेथाऊ (Hans. J. Morgenthau) के अनुसार जब एक विश्व राजनैतिक रूप से राष्ट्रों में संगठित रहेगा, राष्ट्रीय हित निश्चित रूप से विश्व राजनीति

का अंतिम शब्द होगा। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो राष्ट्रीय हित ही राष्ट्र-नीति की एकमात्र मुख्य घटक है। राष्ट्रीय हित ही वह तत्व है जो राष्ट्रों को मित्रता के सूत्र में बांधता है और आवश्यक पड़ने पर शत्रु बना देता है। राष्ट्रीय हित की अवधारणा के बिना अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का अध्ययन अपूर्ण माना जाएगा। परन्तु यह अत्यंत आश्चर्य का विषय है कि इतनी महत्वपूर्ण अवधारणा होने के बावजूद भी राष्ट्रीय हित की में कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती।

पादेलफोर्ड व लिंकन (Padleford and Lincoin) के अनुसार राष्ट्रहित, राष्ट्र कल्याण, राजनैतिक भावना की सुरक्षा, राष्ट्रीय संस्कृति, क्षेत्रीय अखंडता तथा राष्ट्र की सुरक्षा जैसे समाज के महत्वपूर्ण मूल्यों पर केन्द्रित होता है।

रोबर्ट ओसगूड (Robert Osgood) के अनुसार राष्ट्रीय हित राष्ट्र के कल्याण का दूसरा नाम है।

हान्स जे मार्गेथाऊ (Hans J. Morgenthau) के अनुसार राष्ट्र राज्य का मुख्य कार्य भौगोलिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक अस्तित्व का संरक्षण करना है।

ब्रुकिंग इंस्टीट्यूट (Brooking Institute) के अनुसार राष्ट्रीय हित वह हित है जिसे एक राष्ट्र अपनी सुरक्षा तथा कुशलता के लिए आवश्यक समझाता है, राष्ट्रीय हित साधारण तथा निरंतर बने रहने वाले उद्देश्य को प्रतिबिंबित करता है, जिनके लिए राष्ट्र कार्य करते है।

चार्ल्स ओ.लर्च तथा अब्दुल सईद (Charles O. Lerche and Abdul Sayeed) के विचार में राष्ट्रीय हित साधारण तथा निरंतर बना रहने वाला वह उद्देश्य है जिसे राज्य, राष्ट्र एवं सरकार पूरा करने में लगे रहते हैं।

3.4.0 राष्ट्रीय हित के विभिन्न तत्व

- **सुरक्षाः** मूल रूप में राष्ट्रीय हित राष्ट्र के जीवन से सम्बन्धित है। प्रत्येक राष्ट्र मौजूदा अराजक विश्व व्यवस्था में अपने आपको सुरक्षित, स्वतंत्र एवं अखंड रखना चाहता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक राष्ट्र की विदेश नीति का स्वाभाविक लक्ष्य राष्ट्र की रक्षा करना है। परमाणु अस्त्रशास्त्रों के लिए चल रही होड़ विभिन्न प्रयास राष्ट्रों की असुरक्षित भावना का ही परिणाम है।

- **आर्थिक विकासः** राष्ट्रीय हित का द्वितीय लक्ष्य अर्थव्यवस्था को दृढ़ करना है। इसके अंतर्गत अन्य राष्ट्रों से व्यापार के लिए सकारात्मक परिवेश का निर्माण तथा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के माध्यम से अपने आर्थिक हितों का संरक्षण करना सम्मिलित है। जहाँ विभिन्न व्यापारिक पाबंदियों के माध्यम से राष्ट्र अपने आर्थिक हितों की रक्षा करना चाहते हैं वहीं व्यापारिक रियासतों के माध्यम से अन्य राष्ट्रों से आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। उभय स्थिति में राष्ट्र का लक्ष्य आर्थिक विकास से सम्बन्धित है।

- **शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्थाः** राष्ट्रीय हित का तृतीय पहलू अन्तर्राष्ट्रीय शांति सयसे सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय कानून व संस्थाओं को मान्यता तथा अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण समाधान सम्मिलित है। संयुक्त राष्ट्र को विश्व के विभिन्न राष्ट्रों द्वारा मान्यता इसका एक जीता जागता उदाहरण है।

3.4.1 राष्ट्रीय हित के विभिन्न साधन

राष्ट्रीय हित को निम्नलिखित साधनों के माध्यम से सुदृढ़ किया जा सकता है।

- **यथास्थिति की नीति के माध्यम से :** सामान्यतः राष्ट्र युद्ध को किसी भी तरह से टालना तथा शन्ति की स्थिति को बनाकर रखना चाहते है।

- **कूटनीति के माध्यम से :** कूटनीति के माध्यम से एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों के साथ हितों का सौदा करते हैं।

- **प्रचार :** अपने हितों के रक्षा हेतु अपने पक्ष तथा विचारों से दूसरे राष्ट्रों को प्रभावित करने की चेष्टा करते हैं।

- **युद्ध :** इतिहास से हमें यह ज्ञात होता हैं कि राष्ट्र हितों की रक्षा तथा अभिवृद्धि हेतु युद्ध का सहारा भी ले सकते हैं।

- **गठबंधन तथा संधि :** शक्ति संतुलन राष्ट्रीय हित के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राष्ट्र गठबंधन तथा संधियों के माध्यम से दूसरे राष्ट्रों को या तो मित्रता के सूत्र में बांधता है या शत्रु राष्ट्रों को हानि पहुंचाने से रोकता है।

- **आर्थिक माध्यम से :** आर्थिक तथा व्यापारिक संबंधों को सुदृढ़ करके भी राष्ट्र अपने हितों की अभिवृद्धि करने की चेष्टा करते हैं।

3.5 राष्ट्रीय सुरक्षा

सामान्य भाषा में सुरक्षित होने का अर्थ किसी भी शारीरिक या मानसिक हानि से मुक्त रहना है। पूर्ण सुरक्षित रहना एक असंभव भी अवस्था है। दुर्घटनाएं किसी के भी साथ, कभी भी और कहीं भी हो सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में सुरक्षा का एक विशिष्ट अर्थ है। पारंपरिक रूप से देखा जाए तो सुरक्षा को प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रहित से ही जोड़ के देखा जाता है। यथार्थवादी अवधारणा के अनुसार राष्ट्रीय सुरक्षा को, किसी राष्ट्र की ओर से किसी राज्य की संप्रभुता तथा अखंडता के समझ आने वाली चुनौती माना जाता है। 1990 के दशक से अनराष्ट्रीय सम्बन्ध में सुरक्षा के अर्थ को व्यापक बनाने की चेष्टा की जाने लगी। समकालीन समय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के विद्वान मानव-सुरक्षा को सुरक्षा विमर्ष का केन्द्र बिन्दु बनाये हुए है। आगे सुरक्षा के उभय यथार्थवादी तथा नवीन दृष्टिकोणों की चर्चा की गयी हैं।

3.5.0 सुरक्षा का यथार्थवादी दृष्टिकोण

मैकमिलन शब्दकोश (Macmillan Dictionary) के अनुसार राष्ट्रीय सुरक्षा का सम्बन्ध किसी भी राष्ट्र के अभ्यांतरिक भेदों का संरक्षण तथा नागरिकों की कुशलता से है। वाल्टर लिपमान (Walter Lippmann) के अनुसार एक राष्ट्र को सुरक्षित तभी कहा जा सकता है जब उसे युद्ध को टालने के लिए अपने वाजिब हितों को त्यागना न पड़ता हो और आवश्कता पड़ने पर युद्ध के माध्यम से हितों की रक्षा कर सकता हो। हेरोल्ड लासवेल्ल (Harold Lasswell) राष्ट्रीय सुरक्षा को विदेशी ताकतों के दबाव से स्वतंत्रता के रूप में परिभाषित करते हैं। चार्ल्स मैएर

(Charles Maier) राष्ट्र सुरक्षा को राष्ट्र शक्ति के दृष्टिकोण से परिभाषित करते है। उनके अनुसार राष्ट्रीय सुरक्षा घरेलू तथा विदेशी परिस्थितियों को नियंत्रण करने की वह क्षमता है जिसे राष्ट्र की जनता, स्वायत्ता और राष्ट्रकल्याण के लिए आवश्यक मानती है।

इस प्रकार से सुरक्षा का पारंपरिक यथार्थवादी दृष्टिकोण राष्ट्र को मुख्य इकाई मानता है। इस अवधारणा के अनुसार प्रत्येक राष्ट्र को हर दूसरे राष्ट्र से खतरे की आशंका है, अतः प्रत्येक राष्ट्र को अपने भौगोलिक क्षेत्र को सुरक्षित रखने के लिए निरंतर प्रयासरत रहना होगा। इसके लिए प्रत्येक राष्ट्र को अपने राष्ट्र क्षेत्र को सुरक्षित रखने हेतु सैन्य बल, अस्त्र शस्त्र एवं अत्याधुनिक सामरिक तकनीकों की आवश्यकता होती है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मौजूदा अस्त्रों की होड़ राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति इस तरह के दृष्टिकोण का ही नतीता है। इस प्रकार से सुरक्षा का यह दृष्टिकोण राष्ट्र क्षेत्र को मुख्य विषय मानता है।

3.5.1 सुरक्षा का समकालीन दृष्टिकोण

1980 के दशक में विश्व के मध्य पूर्वी क्षेत्र के तेल संकट तथा पर्यावरणीय समस्याओं को ध्यान में रखते हुए सुरक्षा को एक व्यापक रूप से समझने की चेष्टा की गयी। इन समस्याओं का प्रारंभ किसी राष्ट्र से तो होता था पर इनके परिणामों को किसी राष्ट्र क्षेत्र की सीमाओं से बांधा नहीं जा सकता था। यह समस्याएँ केवल राष्ट्रों के लिए ही नहीं वरन समग्र मानव जाति के लिए एक संकट के रूप में उभरी थीं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध सुरक्षा के नवीन दृष्टिकोण मानव सुरक्षा पर ध्यान केन्द्रित करता है। 1994 में संयुक्त राष्ट विकास कार्यक्रम (United Nations Development Programme) के प्रतिवेदन के अनुसार मानव सुरक्षा के दो पहलू है। प्रथम पहलू, क्षुधा, व्याधि तथा दमन जैसे जीर्ण संकटों पर ध्यान केन्द्रित करता है। द्वितीय पहलू दैनिक जीवन में आकस्मिक तथा हानिकारक दुर्घटना के संरक्षण पर ध्यान केन्द्रित करता है। महबूब उल हक् (Mahbub Ul Haq) के दृष्टिकोण के मानव सुरक्षा का सम्बन्ध अस्त्र-शस्त्र से नहीं बल्कि मनुष्य की गरिमा से है। अंततः सुरक्षा का सम्बन्ध उस लड़के से है जिसकी अकाल मृत्यु नहीं हुई, उस व्याधि से हे जिसको फैलने नहीं दिया गया, उस सजातीय संकट से है जिसे विस्फोटित होने नही दिया गया, उस विरोधी आवाज़ से है जिसको चुप नहीं कराया गया, वह मानव जोश से है जिसे दमन नहीं किया गया है।

इस प्रकार के नवीन मतों के अनुसार असुरक्षा उस संरचनात्मक हिंसा से सम्बन्धित है जो मानव को एक पूर्ण गरिमामय जीवन जीने से रोकता है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम मानव सुरक्षा के क्षेत्र को निम्नलिखित पहलुओं में विभाजित करता है।

- **आर्थिक सुरक्षा :** राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को जीवन यापन के लिए आवश्यक आय अर्जित करने हेतु कार्य एवं सार्वजनिक वित्तीय सुरक्षा मिलनी चाहिए।
- **खाद्य सुरक्षा :** राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को क्षुधा/भुखमरी से मुक्ति मिलनी चाहिए।
- **स्वास्थ्य सुरक्षा :** राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक केा व्याधिमुक्त जीवन जीने की हरसंभव व्यवस्था और सेवाएं मिलनी चाहिए।
- **पर्यावरणीय सुरक्षा :** राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को प्राकृतिक आपदाओं से संरक्षित करने की हरसंभव चेष्टा होनी चाहिए।
- **व्यक्तिगत सुरक्षा :** राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को शारीरिक हिंसा से संरक्षण मिलना चाहिए।

- **सांप्रदायिक सुरक्षा :** प्रत्येक नागरिक को सांप्रदायिक हिंसा से संरक्षण मिलना चाहिए।
- **राजनैतिक सुरक्षा :** प्रत्येक नागरिक को ऐसा जीवन जीने का अवसर मिलना चाहिए जिसके तहत वह बुनियादी मानव अधिकारों तथा सामान्य राजनैतिक स्वतंत्रता का उपभोग कर सकें।

इस प्रकार से सुरक्षा का समकालीन दृष्टिकोण राष्ट्र को माध्यम तो मानता है परन्तु राष्ट्र में बसने वाले नागरिक को मुख्य इकाई के रूप में देखता है। इस तरह से सुरक्षा की अवधारणा विभिन्न खतरों को अपने में समाविष्ट करती है। नीचे दी गई सारणी में सुरक्षा के पारंपरिक एवं समकालीन दृष्टिकोणों में अन्तर को कुछ प्रश्नोत्तरों के मध्यम से वर्णित किया गया है।

	प्रश्न	पारंपरिक अवधारणा	समकालीन अवधारणा
1.	सुरक्षा की मुख्य इकाई क्या है?	राज्य	नागरिक, व्यक्ति, सम्प्रदाय
2.	असुरक्षा (खतरे) की प्रवृत्ति क्या है?	सामरिक	आर्थिक, वैचारिक, पर्यावरणीय
3.	असुरक्षा (खतरे) का क्षेत्र कहाँ तक है?	वाह्य (अन्य राष्ट्र)	वाह्य एवं आंतरिक
4.	सुरक्षा प्राप्ति के साधन क्या है?	अस्त्र शस्त्र, सैन्य बल के माध्यम से	समावेशी, राष्ट्रीय विकास अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं एवं कानूनों के माध्यम से

3.6 उपसंहार

इकाई में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की कुछ महत्वूपर्ण संकल्पनाओं की विवेचना की गई है। सर्वप्रथम राष्ट्र व्यवस्था के विभिन्न पर्यायों के बारे में चर्चा की गयी। तत्पश्चात् राष्ट्रीय शक्ति के विभिन्न पर्यायों के बारे में चर्चा की गयी। तत्पश्चात् राष्ट्रीय शक्ति के विभिन्न तत्वों तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शक्ति के स्वरूप को समझाने की चेष्टा की गयी। अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की अन्य मुख्य अवधारणा राष्ट्रीय हित को परिभाषित करते हुए उसके तत्वों तथा साधनों के बारे में सूचना दी गयी। अंततः यह अध्याय राष्ट्रीय सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करता है।

3.7 शब्दावली

संप्रभुत्ता : किसी राज्य का एक महत्वपूर्ण भाग, स्वतंत्र राष्ट्र की वह शक्ति जो उसे आंतरिक व बाहरी मामलों में बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति प्रदान करती है।

शक्ति : शक्ति का अर्थ वह क्षमता से है जियके माध्यम से एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के व्यवहार, क्रिया तथा विचारों केा अपने इच्छा के अनुरूप प्रभावित करता है।

राष्ट्रीय सुरक्षा : राष्ट्रीय सुरक्षा को किसी वाह्य राष्ट्र की ओर से किसी राज्य की संप्रभुत्ता तथा अखंडता के समझ आने वाली चुनौती माना जाता है।

3.8 सन्दर्भ प्रश्न

3.8.0 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक वाक्य में देने का प्रयास करें।

1. राज्य की संप्रभुत्ता का विस्तार से वर्णन किस विद्वान की लेखनी में देखने को मिलता है?

   .....

   .....

2. मोर्गेथाऊ की कृति का नाम बताइये?

   .....

   .....

3. यथार्थवादी विचारक राष्ट्र-नीति का एकमात्र मुख्य घटक किसे मानते है?

   .....

   .....

3.8.1 लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दें :

1. अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अध्ययन में वेस्टफालिया की संधि का क्या महत्व है?

   .....

2. मानव सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं का वर्णन करें।

   .....

3.8.2 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम ने मानव सुरक्षा के क्षेत्र को कितने पहलुओं में विभाजित किया जाता है?

   .....

   .....

2. राष्ट्रीय हित के विभिन्न तत्त्वों के बारे में लिखिए?

.....

.....

3.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. इ. हब्स्वाम, नेशंस एण्ड नेसनालिज्म सिंस, 1780 कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1990
2. बी. अंडरसन, इमाजिंड कम्युनिटीज, वर्सो, लंदन, 1983
3. हंस, जे. मोर्गेथाऊ, पालिटिक्स एमांग नेशंस, नफ्, न्यूयार्क, 1978
4. जे. बेलिस, एस. स्मिथ, पी ओएन्स, ग्लोबलैजेशन ऑफ वर्ल्ड पालिटिक्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2011
5. पी. पंत., एस.पी. जैन, आर. पंचोला, अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 2016

3.10 नोट

.....

.....

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

खण्ड – 2

अन्तः युद्धकाल

इकाई – 4 **43**

प्रथम विश्व युद्ध कारण घटनायें एवं प्रभाव

इकाई – 5 **55**

वैश्वीकरण

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. एम. पी. सिंह – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, 34 उत्तरांचल अपार्टमेंट, 5, आईपी एक्सटेंशन पटपड़गंज, नई दिल्ली

(2) **प्रो. एस.पी. एम त्रिपाठी – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

(3) **प्रो.एल.आर.गुर्जर – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान

(4) **डॉ.दीपशिखा श्रीवास्तव – सचिव**
शैक्षणिक परामर्शदाता ,राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज

लेखक

1. **प्रो0 संजय श्रीवास्तव** — **प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान,** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय **(इकाई–04, 05, 15)**
2. **डॉ0 विश्वनाथ मिश्रा** — **असि0 प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान** आर0 महिला पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई– 06, 07, 08, 09, 10, 11, 12)**
3. **डॉ0 स्वाती सुचरिता नन्दा** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई–01, 02, 03, 21, 22, 23)**
4. **डॉ0 अर्चना सुदेश मैथ्यू** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** पी0जी0 कालेज छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश **(इकाई–13, 14, 16, 17, 18)**
5. **डॉ दीपशिखा श्रीवास्तव** — **शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान** यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज **(इकाई– 19, 20)**

संपादक / परिमापक

डॉ. नागेश्वर प्रसाद शुक्ला — प्राचार्य गन्ना उत्पादक पी0जी0 कालेज, बहेड़ी, बरेली

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव, — शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

(मुद्रित)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN- 978-93-83328-37-6

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई-4

प्रथम विश्वयुद्ध कारण घटनायें एवं प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 प्रथम विश्व युद्ध के कारण

4.2.1 सैन्य शक्ति में वृद्धि और शस्त्रीकरण

4.2.2 आर्थिक प्रतिस्पर्धा एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्ति

4.2.3 सन्धियाँ एवं समझौते

4.2.4 राष्ट्रीयता की लहर

4.2.5 सामाजिक असन्तुलन

4.2.6 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अराजकता

4.2.7 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रीय सत्ता का अभाव

4.2.8 संचार साधनों का अभाव

4.3 युद्ध का परिणाम

4.3.1 जनशक्ति महाविनाश

4.3.2 आर्थिक विनाश

4.3.3 मुद्रा प्रसार

4.3.4 युद्ध ऋण

4.3.5 व्यापार की क्षति

4.3.6 स्त्रियों की दशा में परिवर्तन

4.3.7 वैज्ञानिक प्रगति

4.3.8 सांस्कृतिक क्षति

4.4 निष्कर्ष

4.5 बोध प्रश्न

4.6 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है-

- प्रथम विश्वयुद्ध के कारणों को जानना।
- प्रमुख घटनाक्रमों को जानना।
- प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामों को जानना।

4.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत वर्णन किया गया है कि किस प्रकार से विश्व स्तर पर प्रथम विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार हुई और देशों के आपसी तनाव, आर्थिक प्रतिस्पर्धा, सैन्यवाद, राष्ट्रीयता आदि प्रथम विश्वयुद्ध का कारण बने। परिणामस्वरूप युद्ध से विश्व में महाविनाश, अपार जन-धन की हानि, व्यापारिक क्षति हुई।

4.2 प्रथम विश्व युद्ध के कारण

बीसवीं सदी के प्रारम्भ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का जो स्वरूप था उसने पूर्ण रूप से प्रथम विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। पिछली अर्द्धशताब्दी से यूरोप की घटनायें जिस तरह घटित हो रही थीं, वे अधिक समय तथा शान्ति को स्थायी नहीं रख सकती थीं। यूरोप के सभी राष्ट्र परस्पर अस्त्र-शस्त्र की प्रतिस्पर्धा में लगे हुये थे। फ्रांस-प्रशा युद्ध, बर्लिन सम्मेलन, बल्गेरिया का प्रश्न, त्रिराष्ट्र सन्धि का जन्म, सेरोजियॉ हत्याकाण्ड आदि कुछ ऐसी प्रमुख घटनायें थीं जिसने सम्पूर्ण विश्व को भयंकर विनाश की ओर अग्रसर किया।

वस्तुतः उग्र राष्ट्रीयता, साम्राज्य सम्बन्धी प्रतिस्पर्धा तथा अन्तर्राष्ट्रीय गुटबन्दी प्रथम विश्वयुद्ध के प्रधान कारण थे। बारूद की ढेर पर बैठे यूरोप के लिए 28 जून, 1914 को आस्ट्रिया हंगरी के युवराज फ्रांसिस फर्डिनेण्ड और उसकी पत्नी की बोस्निया के नगर सेराजिवो में हत्या ने एक चिंगारी का काम कर दिया। इस हत्या के परिणामस्वरूप आस्ट्रिया तथा सर्बिया के मध्य जो युद्ध प्रारम्भ हुआ उसने सम्पूर्ण विश्व को अपनी चपेट में ले लिया। वास्तव में इतना विध्वंसकारी युद्ध पूर्व में कभी नहीं हुआ था। इस प्रलयंकारी एवं विनाशक युद्ध के निम्न कारण थे-

4.2.1 सैन्य शक्ति में वृद्धि और शस्त्रीकरण

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में सैनिकवाद पनप रहा था। इसका मूल कारण राष्ट्रीयता, आर्थिक प्रतियोगिता तथा अन्तर्राष्ट्रीय तनाव था। विभिन्न देशों के बीच पारस्परिक शंका और ईर्ष्या बढ़ती जा रही थी। अतः यूरोप के सभी देश अपनी सैनिक शक्ति में वृद्धि कर रहे थे।

जब जर्मनी ने अपनी नौ-सैनिक शक्ति को बढ़ाना आरम्भ किया, तो यह कार्य इंग्लैण्ड की नाविक शक्ति के लिए एक चुनौती माना जाने लगा। इसके परिणामस्वरूप नाविक प्रतिस्पर्धा बढ़ गयी। इस प्रतिस्पर्धा ने यूरोप के अन्य देशों को भी प्रभावित किया। प्रत्येक देश अपनी सैन्य वृद्धि को ही राष्ट्रीय प्रतिष्ठा समझ बैठा और सैनिक शक्ति में वृद्धि करने लगा। 1914 ई. तक जर्मनी के पास आठ लाख पचास हजार सैनिक थे। इसके अतिरिक्त उसके पास पचास लाख प्रशिक्षित व्यक्ति थे, जो युद्ध के समय मोर्चे पर भेजे जा सकते थे। फ्रांस ने भी अधिक से अधिक लोगों को युद्ध के लिए तैयार किया। रूस के पास भी शान्ति के समय में पन्द्रह लाख सैनिक थे। इन देशों ने न केवल सैनिकों की संख्या में बढ़ोत्तरी की अपितु आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का भी विकास किया। यद्यपि यह सब सैनिक तैयारी सुरक्षा की दृष्टि से की गयी किन्तु उसके कारण विभिन्न देशों में सैनिक शक्ति बढ़ाने की प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हो गयी, जिससे सर्वत्र भय, आशंका एवं पारस्परिक घृणा का वातावरण बन गया।

यूरोप के देशों में सैन्यवाद का प्रभाव बढ़ने से उनकी आन्तरिक और विदेश नीति भी प्रभावित हुई। सैन्यवाद ने कुछ देशों की मानसिकता को ही बदल दिया। अब लोगों को यह विश्वास हो गया था कि अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं का हल केवल सैनिक शक्ति के आधार पर ही किया जा सकता है। यद्यपि रूस के जार निकोलस द्वितीय ने शस्त्रीकरण पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबन्ध लगाने के लिए हेग में सम्मेलन आमन्त्रित किये थे किन्तु जर्मनी के विरोध के कारण शस्त्रीकरण को सीमित करने की योजना असफल सिद्ध हुई।

इस प्रकार सैन्यवाद और शस्त्रीकरण के फलस्वरूप यूरोप के बड़े राज्य दो परस्पर विरोधी और पूर्ण रूप से सुसज्जित युद्ध शिविरों में विभाजित हो चुके थे। अब युद्ध आरम्भ करने के लिये केवल एक चिंगारी की आवश्यकता थी।

4.2.2 आर्थिक प्रतिस्पर्धा एवं साम्राज्यवादी प्रवृत्ति

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ से विश्व में दो प्रकार की प्रगति हुई थी। एक तो, जिन देशों के पास धन था और जिनका औद्योगीकरण तीव्र गति से हुआ था। उनमें अधिक धन कमाने और अपने तैयार माल को बेचने के लिए बाजार प्राप्त करने की इच्छा रहती थी। ऐसे देशों में इंग्लैण्ड, अमेरिका और जर्मनी प्रमुख थे। ऐसे देशों में आर्थिक प्रतिद्वंद्विता साम्राज्यवाद से संलग्न थी। ये देश अपना औपनिवेशिक विस्तार आर्थिक आवश्यकता के कारण करना चाहते थे। दूसरी प्रगति उन देशों की थी, जो अभी कृषि तथा उद्योग के सन्तुलन की स्थिति से गुजर रहे थे। ऐसे देशों में फ्रांस तथा इटली थे। ये देश एशिया, अफ्रीका तथा पूर्वी यूरोप के देशों पर अपना अधिकार स्थापित करना चाहते थे क्योंकि इन स्थानों में अभी औद्योगिक प्रगति नहीं हुई थी। स्वभावतः नये देशों को अधिकार में करने की भूख और अपने धन और उत्पादन की खपत करने की अभिलाशा से औपनिवेशिक संघर्ष उत्पन्न हुआ था।

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक अफ्रीका का अधिकांश भाग यूरोपीय राज्यों में विभाजित हो चुका था। इसमें सबसे अधिक हिस्सा इंग्लैण्ड तथा फ्रांस को प्राप्त हुआ। जर्मनी औपनिवेशिक दौड़ में विलम्ब से पहुँचा। अतः उसको अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र ही प्राप्त हो सका, जिससे वह असन्तुष्ट रहा। यद्यपि अफ्रीका के बँटवारे के लिए कोई युद्ध नहीं लड़ना पड़ा था किन्तु उसके कारण यूरोपीय राज्यों के मध्य पारस्परिक तनाव में वृद्धि अवश्य हुई। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जर्मनी तथा इंग्लैण्ड की व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता इतनी बढ़ गयी थी कि दोनों देशों के उद्योगपति और राजनीतिज्ञ एक-दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करने लगे। बाल्कन क्षेत्र में रूस तथा आस्ट्रिया के परस्पर विरोधी आर्थिक हितों के कारण ही वहाँ संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई।

4.2.3 सन्धियाँ एवं समझौते

बिस्मार्क ने फ्रांस को पराजित करने के पश्चात् जर्मनी की सुरक्षा के लिए आस्ट्रिया तथा इटली से गुप्त संधियाँ स्थापित कर त्रिगुट का निर्माण किया, जिसके विरूद्ध फ्रांस ने भी अपनी सुरक्षा के लिए रूस तथा इंग्लैण्ड से मैत्री कर ट्रिपल एताँत का गठन किया। अब यूरोप शक्तिशाली एवं परस्पर विरोधी गुटों में विभाजित हो गया था। ये सन्धियाँ मूल रूप से रक्षात्मक थी, फिर भी इनके कारण पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता की भावना उत्पन्न हुई फ्रांस ने इटली के साथ गुप्त सन्धि करके त्रिगुट को कमजोर बनाने का प्रयत्न किया, तो जर्मनी ने इंग्लैण्ड और फ्रांस की मित्रता को तोड़ने के लिए रूस के साथ गुप्त समझौता करने का प्रयास किया।

प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व यूरोप में संधियों एवं समझौते के कारण गुटीय कूटनीति को बढ़ावा मिला जिसने तनाव व विरोध उत्पन्न किये। उदाहरणार्थ विस्मार्क की कूटनीतिक सन्धियों के कारण एक ओर त्रिगुट का निर्माण हुआ, तो दूसरी ओर आत्मरक्षा में त्रिराष्ट्र मैत्री स्थापित हुई। उसने यूरोप को दो सशक्त विरोधी गुटों में विभक्त कर दिया था। जिनके सदस्य सन्धियों के जाल में इस प्रकार फँसे हुए थे कि यदि उनमें से कोई एक युद्ध छेड़ देता, तो दूसरे अपने आप ही उसमें खिंचे चले आते। इसने धीरे-धीरे यूरोप की शक्तियों को विरोधी गुटों में बाँट दिया, जिनमें एक-दूसरे के प्रति सन्देह बढ़ता रहा और जो अपनी थल सेना एवं नौ-सेना शक्ति बढ़ाते रहे।

इस गुटबन्दी के कारण ही गुट के प्रत्येक सदस्य को ऐसी कार्यवाही भी करनी पड़ती थी, जिसमें उन्हें कोई लाभ नजर नहीं आ रहा हो क्योंकि उन्हें अपन मित्र का समर्थन करना पड़ता था। अतः उनकी कार्यवाही में भी सम्मिलित होना पड़ता था, जैसे-जर्मनी की बाल्कन में कोई रूचि नहीं थी किन्तु उसे अपने मित्र आस्ट्रिया के समर्थन में कार्यवाही करनी पड़ी। इसी तरह फ्रांस के रूस की मित्रता बनाए रखने के लिए उसकी बाल्कन नीति का समर्थन करना पड़ा। ब्रिटेन के विदेश मंत्रालय के उच्चाधिकारियों को भी यह विश्वास हो गया था कि 'ट्रिपल एलाएंस' के विरूद्ध 'ट्रिपल एताँत' को सुदृढ़ बनाने के लिए इंग्लैण्ड को रूस और फ्रांस का समर्थन करना चाहिये। इस प्रकार इन कूटनीतिक सन्धियों ने विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी।

4.2.4 राष्ट्रीयता की लहर

फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के द्वारा राष्ट्रीयता की भावना का जन्म हुआ था। इस राष्ट्रीयता का तेजी से विकास वियना कांग्रेस के पश्चात् ही सम्भव हुआ। राष्ट्रवाद ने एक ओर तो राष्ट्रों के निर्माण को प्रेरित किया परन्तु दूसरी ओर उग्र राष्ट्रवाद के कारण पारस्परिक मतभेद भी उत्पन्न हुए। इटली के राष्ट्रवादियों द्वारा ट्रेन्टिनों और ट्रीस्ट के प्रदेशों को प्राप्त करने के लिए समुद्धरणवादी आन्दोलन चलाया गया, जिसने इटली और आस्ट्रिया के सम्बन्धों पर प्रतिकूल

प्रभाव डाला। आस्ट्रिया हंगरी का साम्राज्य तो स्वयं ही राष्ट्रीयता की भावना के लिए एक चुनौती थी। पोल लोग, जिन पर विदेशियों का शासन था, यह चाहते थे कि उनका अपना राष्ट्र पुनः स्थापित कर दिया जाए।

'देशभक्ति' की बढ़ती हुई अतिवादी भावना ने विभिन्न राष्ट्रों के बीच घृणा और द्वेश उत्पन्न कर 'राष्ट्रवाद को रणोन्मादी बना दिया। राष्ट्रीयता की यह प्रवृत्ति माँग कर रही थी कि 'एक राष्ट्रीयता एक राज्य' के सिद्धान्त के अनुसार यूरोप के राजनीतिक मानचित्र का पुनः निर्माण हो। इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना के कारण विश्व के देश एक-दूसरे से टकराने के लिए आतुर थे।

4.2.5 सामाजिक असन्तुलन

राष्ट्रीयता की संकुचित भावना, कूटनीति से उत्पन्न, मनोमालिन्य, आर्थिक हित चिन्तन और स्वार्थ का प्रचलन इतना अधिक बढ़ गया था कि 'शान्ति की दुहाई' नक्कारखाने में तूती की आवाज' सिद्ध हुई। शान्ति और सद्भावना के स्थान पर आशंका, भय और देश की भावना उत्पन्न हुई। ऐसी स्थिति में विभिन्न राष्ट्रों के लिए ठण्डे दिमाग से कुछ भी सोचना कठिन हो गया था। इस प्रकार भौतिकवाद की प्रगति के साथ धार्मिकता तथा मानवता की भावना शिथिल पड़ती जा रही थी और नरसंहार से अब लोगों की नैतिक भावना को अधिक ठेस नहीं पहुँचती थी। उन्हें भौतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए सैनिक बल-प्रयोग में कोई अनौचित्य नजर नहीं आता था। यह प्रवृत्ति युद्ध के लिए प्रोत्साहित कर रही थी।

4.2.6 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अराजकता

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में ही यूरोप में अशान्ति एवं अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो चुकी थी। शक्तिशाली देश छोटे-छोटे राज्यों को बाँटकर अपने स्वार्थों की पूर्ति में लग रहे थे। 1900 ई0 के पश्चात् ऐसी घटनाएँ घटित हुईं, जिनके कारण अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण तनावपूर्ण बना रहा।

रूस की पराजय के कारण उसकी दुर्बलता से लाभ उठाने के लिए जर्मनी ने मोरक्को में फ्रांस को चुनौती दी और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में गम्भीर स्थिति उत्पन्न कर दी। इसके अतिरिक्त जब रूस को सुदूर पूर्व में साम्राज्य विस्तार का अवसर नहीं मिला तो उसने बाल्कन-प्रदेशों में अनुचित हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। इससे बाल्कन की राजनीति और अधिक जटिल हो गयी।

सन् 1911 में फेज के विद्रोह को दबाने के लिए तथा यूरोपियन लोगों के जन-जीवन की रक्षा करने के लिए फ्रांस ने वहाँ अपनी सेना भेज दी, तो इस पर जर्मनी ने इसका विरोध किया और अपना 'पेन्थर' नामक युद्ध-पोत अगादियार के बन्दरगाह पर भेज दिया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध का खतरा बढ़ गया। इंग्लैण्ड की चेतावनी के कारण जर्मनी को झुकना पड़ा तथा फ्रांसीसी कांगों का बहुत सा भाग जर्मनी को देना पड़ा। इस संकट में इंग्लैण्ड द्वारा फ्रांस को समर्थन देने से इंग्लैण्ड और जर्मनी के सम्बन्धों में और अधिक कटुता उत्पन्न हुई। सन् 1908-09 में आस्ट्रिया द्वारा बोस्निया-हर्जीगोविना को अपने साम्राज्य में मिलाने से एक गम्भीर संकट उत्पन्न हो गया। रूस और आस्ट्रिया तथा इटली और आस्ट्रिया के परस्पर सम्बन्ध इसी कारण बिगड़ गए। यद्यपि यह संकट तो टल गया किन्तु वातावरण दूषित हो गया।

सन् 1912-13 के बाल्कन युद्धों ने भी अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण को अत्यधिक तनावपूर्ण बना दिया था। इन युद्धों के कारण सैन्यवाद और शस्त्रीकरण की दौड़ और तेज हो गई।

बल्गेरिया सबसे अधिक असन्तुष्ट राज्य था क्योंकि सर्बिया, यूनान आदि राज्यों ने उससे बहुत भू-भाग छीन लिया था।

4.2.7 अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर केन्द्रिय सत्ता का अभाव

यूरोप में इस समय तक कोई ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था नहीं थी, जो पारस्परिक वार्तालाप के माध्यम से विभिन्न राष्ट्रों के झगड़ों का समाधान करके युद्ध की सम्भावना को टाल देती। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय कानून और सदाचार की संहिता थी किन्तु इन्हें लागू कराने वाली शक्ति का अभाव था। 1899 ई.और 1907 ई0 के हेग सम्मेलनों में अनेक प्रस्ताव हुए थे किन्तु सभी देश अपनी सुविधाओं के अनुसार ही इनका अनुसरण करते थे। सभी देश अपने को सर्वाधिक सम्पन्न देश मानकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिज्ञाओं के प्रति अवहेलना का रूख अपनाया करते थे। सन् 1902 ई. में फ्रांस से और सन् 1909 में रूस से प्रथम गुप्त सन्धियाँ की गयीं। उस समय ऐसी सन्धियाँ न करने के लिए दबाव डालने वाली कोई अन्तर्राष्ट्रीय संस्था नहीं थी। अतः किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के अभाव में किसी भी देश पर कोई अंकुश नहीं था और सभी देश अपनी इच्छानुसार उचित या अनुचित कार्य करने के लिए पूर्णतः स्वतंत्र थे।

4.2.8 संचार साधनों का प्रभाव

किसी भी देश के समाचार-पत्र उस देश की विचारधारा का प्रतिनिधित्व अवश्य करते हैं और जनमत को प्रभावित करने में उनका बड़ा योगदान रहता है। इस समय देशों के समाचार पत्रों ने उग्र-राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर बहुत सी घटनाओं को इस प्रकार से प्रस्तुत किया, जिससे कि जनता में उत्तेजना बढ़ी और शान्तिपूर्ण ढंग से समझौता करना कठिन हो गया। जब ब्रिटेन के समाचार-पत्रों में जर्मन सम्राट विलियम द्वितीय की नीतियों की आलोचना की गयी, तो जर्मनी की जनता इंग्लैण्ड को अपना शत्रु समझने लगी। इसी प्रकार जर्मन समाचार-पत्रों ने भी इंग्लैण्ड की जनता को उकसाया। आर्क ड्यूक फ्रांसिस फर्डीनेण्ड की हत्या के पश्चात सर्बिया और आस्ट्रिया के समाचार पत्रों में एक-दूसरे के विरुद्ध जो कटुतापूर्ण लेख लिखे गये, उससे दोनों देशों की जनता में रोष उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था।

यद्यपि हमें यूरोप के देशों के समाचार पत्रों की स्वतंत्रता, उनके विकास आदि पर काफी सामग्री उपलब्ध होती है फिर भी वहाँ के समाचार-पत्रों और सरकार से उनके सम्बन्धों के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है। यद्यपि पूर्वी और पश्चिमी यूरोप के देशों के समाचार-पत्रों को इंग्लैण्ड की अपेक्षा कम स्वतंत्रता प्राप्त थी फिर भी यूरोपीय देशों के समाचार पत्रों ने युद्ध को भड़काने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। युद्ध की परिस्थितियों को तभी सम्भाला जा सकता था, जब प्रेस की स्वतंत्रता पर कोई नियन्त्रण होता। वस्तुतः अनियन्त्रित प्रेस भी प्रथम महायुद्ध को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। प्रमुख देशों के समाचार पत्रों द्वारा जनमानस में विषैला प्रचार एक सच्चाई थी और यह ऐसा विषय है, जिस पर शोध करना अपेक्षित है।

4.2.9 युद्ध का तात्कालिक कारण

आस्ट्रिया और सर्बिया के सम्बन्ध 1908 ई. से ही बिगड़े हुए थे, जो 1914 ई. तक अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुके थे। सर्बिया के कुछ उग्र राष्ट्रवादियों से सर्व-स्लाव आन्दोलन के प्रभाव में आकर स्लावों की मुक्ति के लिए अनेक गुप्त संस्थाएँ बनायी थीं। इनमें एक संस्था काला हाथ भी था। इस संस्था ने संगठन या मृत्यु नामक दूसरी संस्था से मिलाकर बोस्निया के गर्वनर

पोटियोरके की हत्या की योजना बनाई। किन्तु इसी समय उन्हें यह पता चला कि आस्ट्रिया का युवराज फर्डिनेण्ड बोस्निया की सरकारी यात्रा पर आने वाला है, तो उन्होंने युवराज की हत्या का शडयन्त्र रचा। सर्बिया की सरकार के उच्च अधिकारियों ने उन व्यक्तियों को हथियार और गोला बारूद दिये और बोस्निया की सीमा में प्रविष्ट कराने का प्रबन्ध भी किया। युवराज की यात्रा का मुख्य उद्देश्य बोस्निया में स्थित 15वीं एवं 16वीं सेना का वार्शिक निरीक्षण करना था। इसी सूचना के आधार पर षड्यन्त्रकारियों ने हत्या की योजना बनायी। आर्क ड्यूक और उसकी पत्नी 28 जून, 1914 ई. को बोस्निया के प्रमुख शहर सेराजिवों गये। दुर्भाग्य से यह दिन सर्बिया के लिए शोक दिवस था। जब शाही दल सेराजिवों के टाउन हाल की ओर जा रहा था, तभी एक शडयन्त्रकारी गेवरीलो प्रिन्सिप ने दो गोलियाँ चलाईं, जिससे युवराज फर्डिनेण्ड तथा उसकी पत्नी सोफी मारी गयी। इस घटना ने यूरोप को युद्ध की ज्वाला में धकेल दिया।

आस्ट्रिया में हत्या की प्रतिक्रिया : युवराज की हत्या का समाचार आस्ट्रिया पहुँचते ही वहाँ क्रोध की लहर उत्पन्न हो गयी। सरकार ने इसके लिए सर्बिया को दोषी माना।

आस्ट्रिया का प्रधान सेनापति कोनराड भी सर्बिया को हत्या के लिए दोषा मानता था और उसके विरुद्ध युद्ध करना चाहता था। पर सम्राट फ्रांसिस जोसेफ सर्बिया से युद्ध के पक्ष में नहीं था। उसको भय था कि सर्बिया के विरुद्ध युद्ध करने से रूस से भी युद्ध करना पड़ सकता है। हंगरी के प्रधानमंत्री तिस्ज्ञा ने भी सर्बिया के विरूद्ध युद्ध का विरोध किया था।

आस्ट्रिया जर्मनी के समर्थन के बिना सर्बिया से युद्ध करने का खतरा नहीं उठा सकता था। अतः आस्ट्रिया के विदेश मंत्री बर्चटोल ने सम्राट फ्रांसिस की ओर से जर्मन सम्राट को पत्र लिखकर आस्ट्रिया की नीति स्पष्ट की तथा जर्मनी से सहयोग का अनुरोध किया।

प्रमुख घटनाक्रम : इंग्लैण्ड के विदेश मंत्री ग्रे ने आखिरी समय तक युद्ध रोकने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें निराश होना पड़ा। यद्यपि फ्रांस और रूस के साथ किये गये समझौते के अनुसार इंग्लैण्ड, फ्रांस या रूस का साथ देने को बाध्य नहीं था, तो भी उसकी सहानुभूति फ्रांस के साथ थी। 1905 ई0 से 1912 ई. तक प्रत्येक संकट के समय इंग्लैण्ड ने फ्रांस का समर्थन किया था। इसी बीच इंग्लैण्ड और फ्रांस के सैनिक अधिकारियों के बीच गुप्त परामर्श भी होता रहा था। फ्रांस पर आक्रमण होने की दशा में उसकी सहायता करना इंग्लैण्ड का नैतिक कर्त्तव्य था परन्तु ग्रे की स्थिति बड़ी कठिन थी। इंग्लैण्ड का लोकमत युद्ध विरोधी था और उसके लिए मन्त्रिमण्डल तथा पार्लियामेन्ट को युद्ध के पक्ष में करना कठिन था। वह हर स्थिति में त्रिराष्ट्र मैत्री को कायम रखना चाहता था। 31 जुलाई, 1914 ई. को फ्रांस के राष्ट्रपति ने अपना एक विशेष दूत सम्राट जार्ज पंचम के पास भेजा और उससे सहायता माँगी किन्तु उस समय तक ब्रिटेन फ्रांस को कोई निश्चित आश्वासन देने की स्थिति में नहीं था। इंग्लैण्ड ने प्रशा तथा अन्य राज्यों के साथ 1839 ई0 में बेल्जियम की तटस्थता की गारण्टी दे रखी थी। जर्मनी के इस कार्य अन्तर्राष्ट्रीय कानून के भंग होने और उससे भी अधिक बेल्जियम पर जर्मनी का अधिकार होने से अपनी सुरक्षा के लिए संकट खड़ा होता देख, इंग्लैण्ड ने जर्मनी से बेल्जियम के समक्ष प्रस्तुत की गई माँगों को वापस लेने के लिए कहा। 4 अगस्त की अर्द्धरात्रि तक जर्मनी की ओर से कोई उत्तर न मिलने पर ब्रिटेन ने जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। विश्वव्यापी युद्ध का आरम्भ 4 अगस्त, 1914 ई0 को ब्रिटेन द्वारा जर्मनी के विरूद्ध युद्ध में प्रवेश करते ही यूरोप की सभी बड़ी शक्तियों के बीच युद्ध आरम्भ हो गया था। कुछ ही समय पश्चात यूरोप और एशिया के कुछ अन्य राज्य भी इसमें सम्मिलित हो गये। 7 अगस्त को मान्टीनीग्रो ने सर्बिया की ओर से युद्ध में प्रवेश किया। 23 अगस्त को जापान ने सन् 1902 की आंग्ल जापानी संधि की शर्तों को पूरा करने तथा जर्मनी से बदला लेने के उद्देश्य से उसको अल्टीमेटम दे दिया और युद्ध की घोषणा कर दी। 29 अक्टूबर,

सन् 1914 को तुर्की ने बिना युद्ध की घोषणा किये रूस के काला सागर के बन्दरगाहों पर बम वर्षा की, जिसके कारण 3 नवम्बर, सन् 1914 को रूस ने तुर्की के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। तुर्की के जर्मनी की ओर से युद्ध में सम्मिलित होने से मित्र राष्ट्रों को काफी चिन्ता हुई क्योंकि उसके कारण स्ट्रेट्स के मार्ग से रूस को युद्ध का सामान भेजना और रूस से अनाज प्राप्त करना कठिन हो गया। यह भी भय उत्पन्न हुआ कि तुर्की की सुल्तान के धार्मिक प्रभाव के कारण एशिया और अफ्रीका में ब्रिटेन और फ्रांस के अधीन क्षेत्रों के मुसलमानों का विद्रोह न हो जाय।

3 अगस्त 1914 ई0 इटली मित्र राष्ट्रों के गुट में शामिल हो गया। इटली ने इस आधार पर तटस्थता की घोषणा की थी कि उसके मित्रों ने स्वयं ही युद्ध आरम्भ किया है। सम्भवतः तटस्थ रह कर इटली दोनों गुटों से लाभ उठाना चाहता था। उसकी तटस्थता की घोषणा के बाद से ही जर्मनी तथा मित्र राष्ट्र उसे अपने अपने पक्ष में लाने का प्रयत्न कर रहे थे। अन्त में मित्र राष्ट्रों ने उसे 26 अप्रैल 1915 ई. की लन्दन की गुप्त सन्धि के द्वारा अपने गुट में सम्मिलित कर लिया। सन्धि के अनुसार मित्र राष्ट्रों ने उसे गारीजिया, ग्रेडिस्का, इरिट्रीया तथा अल्बानिया द्वीप समूह पर इटली का आधिपत्य स्वीकार करने, इसके अतिरिक्त तुर्की के एशियाई क्षेत्र के एक भाग पर उसका प्रभाव स्थापित करने और अफ्रीका में जर्मन प्रदेश का कुछ भाग उसे देने का आश्वासन दिया। इसके पश्चात् 23 मई, 1915 ई. को इटली ने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। 1916 ई. में मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में भाग लिया। इसके पश्चात् 27 अगस्त 1916 ई0 को रूमानिया ने आस्ट्रिया के विरूद्ध युद्ध की घोषणा करके मित्र राष्ट्रों का पक्ष मजबूत किया।

संयुक्त राज्य अमेरिका का मित्र राष्ट्रों की ओर से युद्ध में सम्मिलित होना :- 4 अगस्त 1914 ई. को अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने तटस्थता की घोषणा की किन्तु अमेरिका के अधिकांश नागरिकों की सहानुभूति मित्र राष्ट्रों की ओर थी। ज्यों-ज्यों युद्ध की अग्नि भड़कती गई यह स्पष्ट होने लगा कि अमेरिका अपनी तटस्थता की नीति पर स्थिर नहीं रह सकता। युद्ध आरम्भ होते ही मित्र राष्ट्रों ने अमेरिका से अधिक से अधिक अनाज एवं युद्ध सामग्री खरीदना आरम्भ किया, जिससे अमरीकी उद्योगों को बहुत लाभ हुआ। कुछ समय पश्चात् अमेरिका की व्यापारिक कम्पनियों ने मित्र राष्ट्र को युद्ध सामग्री खरीदने के लिए ऋण भी दिये थे। इन सभी कारणों से अमेरिका मित्र राष्ट्रों को विजयी बनाना चाहता था। 1917 ई0 में दो महत्वपूर्ण घटनाएं घटित हुईं। प्रथम, रूस में बोल्शेविक क्रान्ति के कारण उसने जर्मनी से सन्धि कर युद्ध से अपने आपको अलग कर लिया था। इससे मित्र राष्ट्रों की स्थिति कमजोर बन गई थी। द्वितीय, अमेरिका का लुसिटानिया नामक यात्री जहाज जर्मन लोगों द्वारा डुबाने से अमेरिका में जर्मनी के विरूद्ध जनमत उबल पड़ा क्योंकि इस जहाज में लगभग 1,200 यात्री थे। 31 जनवरी, 1917 ई0 को जर्मनी की सरकार ने अमेरिका को सूचित किया कि 1 जनवरी, 1917 ई. से वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करने वाले सभी जहाजों के विरूद्ध जर्मन पनडुब्बियों द्वारा आक्रमण पुनः आरम्भ कर दिये जायेंगे। मार्च, 1917 ई0 को जर्मनी ने 5 अमेरिकी व्यापारी जहाजों को डुबो दिया। इससे अमेरिका का धैर्य समाप्त हो गया और उसने भी 6 अप्रैल, 1917 ई0 को जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अमेरिका के युद्ध में प्रवेश करने में युद्ध ने सही मायनों में विश्वव्यापी रूप धारणा कर लिया था। यह युद्ध ऐसा था, जिसने यूरोप के बड़े राष्ट्र सुदूरपूर्व और सुदूर पश्चिम को संयुक्त राज्य अमेरिका तथा दक्षिणी अमेरिका के गणराज्य को गम्भीर रूप से प्रभावित किया। सम्पूर्ण विश्व, युद्ध के लिए, दो प्रमुख गुटों में बँट चुका था।

1. मित्र तथा संयुक्त राष्ट्रों (Allied and Associated Powers) में इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस, सर्बिया, जापान, पुर्तगाल, इटली, संयुक्त राज्य अमेरिका, रूमानिया, यूनान, श्याम, साइबेरिया, क्यूबा, ब्राजील, ग्वाटेमाला, आदि थे।
2. केन्द्रीय शक्तियों (Central Powers) में जर्मनी, आस्ट्रिया-हँगरी, बल्गेरिया और तुर्की मुख्य थे।

4.3 युद्ध परिणाम

4.3.1 जनशक्ति का महाविनाश

सवा चार वर्ष के युद्ध के दौरान 80 लाख मृतकों एवं 2 करोड़ आहतों ने सिद्ध कर दिया कि आधुनिक युद्ध एक महा विनाशकारी युद्ध था। इस अवधि में 7 हजार व्यक्ति प्रतिदिन मरे। तीन क्षेत्रों में प्रथम महायुद्ध के सैनिक आँकड़े किसी भी ज्ञात युद्ध से कहीं आगे हैं। तत्कालीन जनसंख्या के अनुपात में जितने मनुष्यों को युद्ध की वर्दी पहनने का आदेश दिया गया, वह पहले के किसी भी युद्ध से अधिक था। कुछ 6 करोड़ मनुष्यों ने सैन्य गतिविधियों में भाग लिया जो इतिहास में अभूतपूर्व था।

4.3.2 आर्थिक विनाश

जब 11 नवम्बर, 1918 ई. को युद्ध विराम की घोषणा से युद्ध समाप्त हुआ, तो खून से सनी मानवता सवा चार वर्ष के महाविनाश का मूल्य आँकने को तत्पर हुई। इस युद्ध में 10 खरब रूपये प्रत्यक्ष रूप में खर्च हुआ और जान-माल की परोक्ष हानि का तो कोई अनुमान ही नहीं लगाया जा सकता। मार्च, 1915 ई. में इंग्लैण्ड का दैनिक खर्च औसतन 15 लाख पौण्ड था, जो बढ़कर 1915-16 ई0 में 40 लाख 1916-17 ई0 में 55 लाख और 1917-18 ई0 में 65 लाख पौण्ड तक हो गया और उसका राष्ट्रीय ऋण भी, जो पहले सत्तर करोड़ आठ लाख पौण्ड था, अब सात अरब, तैतालीस करोड़ पचास लाख पौण्ड हो गया। फ्रांस का राष्ट्रीय ऋण भी 34,182 मिलियन फ्रेंक से बढ़कर 147,472 मिलियन फ्रेंक हो गया। जर्मनी का राष्ट्रीय ऋण, जो पहले 5,000 मिलियन मार्क था अब 160,600 मिलियन मार्क हो गया। इस प्रकार इस विशाल धनराशि को चार साल में दोनों पक्षों ने फूँक कर राख कर दिया। सन् 1918 में संयुक्त राज्य अमेरिका की सारी सम्पत्ति इससे अधिक कीमत नहीं रखती थी। ब्रिटिश साम्राज्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति की कीमत भी इस विशाल धनराशि से कम थी। इसमें एक तिहाई खर्च जर्मनी और उसके साथियों का हुआ और दो तिहाई मित्र राष्ट्रों का महायुद्ध के आरम्भ में औसतन दैनिक खर्च चालीस करोड़ रूपया था। 1918 ई0 के बाद तो इस खर्च का औसत साढ़े तीन करोड़ रूपये प्रति घण्टा पड़ता था। अमेरिकन फेडरल रिजर्व बोर्ड ने अनुमान लगाया था कि सब लड़ने वाले राष्ट्रों का संयुक्त व्यय 31 मई, 1918 तक 35,000 मिलियन पौण्ड हो चुका था।

4.3.3 मुद्रा प्रसार

महायुद्ध में अरबों रूपया खर्च किया गया। यह राशि किसी उत्पादक कार्य में न लगाकर विनाश में लगायी गयी थी। युद्ध में न केवल धन पानी की तरह बहा था बल्कि कल-कारखाने, रेलवे जहाज व अन्य सम्पत्ति का भी विनाश हो गया था। इस स्थिति में सभी राज्य अपने अत्यन्त बढ़े हुए खर्चों को पूरा करने के लिए कर्ज लेने को मजबूर थे। यह कर्ज चाहे देश

धनपतियों से लिया गया या विदेशों से। धन एकत्र करने के लिए करदाताओं पर भी भारी करों का बोझ लादा जाने लगा। अपने ऋणों को चुकाने के लिए अनेक यूरोपीय राष्ट्रों ने विशाल मात्रा में कागजी मुद्रा जारी कर दी, जिससे कीमतों में भारी वृद्धि हुई। कागजी मुद्रा का मूल्य बाजार में बहुत गिर गया। इस मुद्रा स्फीति ने बचत को समाप्त कर दिया। यूरोप के प्रायः सभी देशों में एक प्रकार का आर्थिक संकट उपस्थित हो गया, जिसे दूर करने के लिए उन्हें अनेक उपाय सोचने पड़े। इंग्लैण्ड को स्वर्ण स्तर का त्याग भी करना पड़ा।

4.3.4 युद्ध ऋण

युद्ध के असाधारण खर्च के कारण सार्वजनिक ऋणों की मात्रा में भी असाधारण रूप से वृद्धि हो गयी। 1914 ई. में दोनों पक्षों के प्रमुख राज्यों का कुल सार्वजनिक ऋण आठ हजार करोड़ था, जो 1918 में बढ़कर चालीस हजार करोड़ हो गया। सार्वजनिक ऋण की मात्रा में पाँच गुनी वृद्धि हो जाना यह सूचित करता है कि युद्ध में सम्मिलित राज्यों को किस प्रकार ऋण के बोझ से लद जाना आवश्यक हो गया था? इसके अतिरिक्त विभिन्न देशों को सम्पत्ति के विनाश के कारण कठिनाई भी उत्पन्न हुई। कुल मिलाकर तेरह हजार दो सौ करोड़ रूपयों की सम्पत्ति नष्ट हुई। इतने भारी धन विनाश का प्रभाव यह हुआ कि वस्तुओं की कीमतें बढ़ने लगीं, मजदूरी की दर भी ऊपर बढ़ने लगी, पैदावार बहुत कम रह गयी, मुद्रा की कीमत कम होने लगी और व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र में एक विशेष प्रकार की अव्यवस्था सी उत्पन्न हो गयी। विभिन्न देशों की सरकारों को अपना बजट बराबर करना कठिन हो गया। नये टैक्स लगाये गये और लोग सब तरह से आर्थिक संकट अनुभव करे लगे। मित्र राष्ट्रों को युद्ध से होने वाले अपार खर्च के लिए संयुक्त राष्ट्र से भारी ऋण लेना पड़ा।

4.3.5 व्यापार की क्षति

अरबों रूपयों के विनाश से राष्ट्रों के व्यापार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। अब प्रत्येक राष्ट्र यह प्रयत्न कर रहा था कि वह अन्य देशों से कम से कम माल खरीदे और उन्हें अधिक से अधिक माल बेचे। ऐसा करने के लिए सरकारों ने तटकरों में भारी वृद्धि की, जिसके कारण विश्व व्यापार और कम हो गया। युद्ध के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका, जापान तथा कुछ लैटिन अमेरिका देशों ने उन बाजारों में अपने पाँव जमा लिये जो पहले ब्रिटेन और जर्मनी के हाथों में थे। 1925 ई. तक अमेरिका का विदेशी व्यापार युद्ध-पूर्व के स्तर की अपेक्षा दुगुना हो गया। युद्ध से पूर्व अमेरिका कर्जदार देश था, युद्ध के बाद वह संसार का प्रमुख कर्ज देने वाला राष्ट्र बन गया।

4.3.6 स्त्रियों की दशा में परिवर्तन

महायुद्ध ने महिलाओं को चारदीवारी से बाहर लाकर पुरुषों के समकक्ष कंधा से कंधा मिलाकर काम करने एवं अपनी क्षमताओं को सिद्ध करने का अवसर प्रदान किया। महिलाओं ने कार्यालयों, कारखानों एवं अस्पतालों और जहाँ भी उन्हें काम सौंपा गया, उसे पूर्ण क्षमता से पूरा करके यह दिखा दिया कि वे केवल कोमलांगी या गृह-शोभा की वस्तु नहीं हैं वरन् अवसर मिलने पर पुरुष की सच्ची सहयोगिनी बन सकती हैं। वस्तुतः महायुद्ध ने महिला वर्ग में आत्मविश्वास और राजनीतिक चेतना पैदा करने का महत्वपूर्ण कार्य किया। इससे महिला वर्ग में अपने अधिकारों के प्रति जागृति पैदा हुई और महिलाओं ने अपने अधिकारों की माँग की। फलतः 1918

ई0 में इंग्लैण्ड ने 30 वर्ष की आयु प्राप्त महिलाओं को वयस्क मताधिकार प्रदान कर इस दिशा में पहल की। 1920 ई0 में जर्मनी ने भी महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया और धीरे-धीरे ये कदम दुनिया के अन्य देशों ने भी उठाये। अब शनैः शनैः महिलाओं का हर क्षेत्र में पुरुषों के समक्ष बराबरी के अधिकारों को स्वीकार किया जाने लगा।

4.3.7 वैज्ञानिक प्रगति

महायुद्ध ने अनेक प्रकार के युद्धकालीन आविष्कारों के द्वारा दुनिया को नवीन यांत्रिक ताकत प्रदान की। वैज्ञानिकों ने टैंको, हवाई जहाजों, पनडुब्बियों आदि के रूप में दुनिया को नये हथियार उपलब्ध कराये, वहीं यातायात के साधनों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन किये। नये-नये रासायनिक हथियार बनाये तो औशधियों की भी खोज की। युद्धकालीन आवश्यकताओं के लिए वैज्ञानिकों के कई त्वरित आविष्कारों से दुनिया में वैज्ञानिक प्रगति को बढ़ावा मिला।

4.3.8 सांस्कृतिक क्षति

विश्व युद्ध सांस्कृतिक दृष्टि से महा-विनाशकारी सिद्ध हुआ। उसने विविध सांस्कृतिक धरोहरों को नष्ट ही नहीं किया, वरन् कलाकारों और बुद्धिजीवियों की एक पीढ़ी को भी लील लिया। लाखों नवस्नातकों को युद्ध का ग्रास बना दिया। स्कूलों, कॉलेजों को तबाह कर दिया गया। बहुत से वैज्ञानिक, लेखक, कलाकार युद्ध में मारे गये। संक्षेप में, सांस्कृतिक विकास को जहाँ उससे भारी आघात लगा, वहीं पुरानी कलाकृतियों, पुस्तकालयों, ऐतिहासिक इमारतों आदि के ध्वंस से भी सांस्कृतिक विकास का मार्ग अवरूद्ध हुआ।

4.4 निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रथम विश्वयुद्ध मानवता के लिए अभिशाप बनकर आया था। इस युद्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अनेक ऐसे कारण थे जिनके कारण इसका होना अवश्यम्भावी हो गया। इसके दुष्परिणाम पूरी मानवता पर परिलक्षित हुयी। नये शिरे से मानवता को बचाने के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुए। विध्वंस की राख पर निर्माण की पहल की जाने लगी। अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर नये-नये समीकरण उभरने लगे जिसने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की दिशा निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

4.5 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. प्रथम विश्व युद्ध के लिये उत्तरदायी कारणों की विवेचना करें।
2. प्रथम विश्व युद्ध में घटित होने वाले घटनाक्रमों का वर्णन करें।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. प्रथम विश्व युद्ध के कारण यूरोप की राजनीति में परिलक्षित होने वाले परिवर्तनों पर प्रकाश डालें।

2. प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम की विवेचना करें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रथम विश्व युद्ध का आरम्भ कब हुआ?

   (अ) 1910 (ब) 1914 (स) 1902 (द) 1905

2. प्रथम विश्व युद्ध के परिणाम थे-

   (अ) जनशक्ति का विनाश (ब) आर्थिक विनाश (स) मुद्रा प्रसार (द) उपरोक्त सभी

   उत्तर-1. (ब), 2.(द)

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति : दीनानाथ वर्मा,
- अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति : पुष्पेश पन्त
- विश्व का इतिहास : लईक अहमद

इकाई-5

वैश्वीकरण

इकाई की संरचना

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 वैश्वीकरण के तत्व

- 5.2.1 आयात - निर्यात का उदारीकरण
- 5.2.2 निजीकरण
- 5.2.3 मुक्त व्यापार
- 5.2.4 उदारीकरण
- 5.2.5 आर्थिक गतिविधियों का वैश्वीकरण
- 5.2.6 आर्थिक सहयोग
- 5.2.7 आर्थिक सुधार

5.3 वैश्वीकरण की विशेषताएँ

5.4 वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क

5.5 वैश्वीकरण के विपक्ष में तर्क

5.5 निष्कर्ष

5.7 बोध प्रश्न

- 5.7.1 दीर्घ प्रश्न
- 5.7.2 लघु प्रश्न
- 5.7.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5.8 संदर्भ ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है -

- आप वैश्वीकरण के तत्वों के विषय में जानकारी उपलब्ध कराना।
- वैश्वीकरण की विशेषताओं के बारे में प्रकाश डालना।
- वैश्वीकरण के पक्ष एवं विपक्ष सम्बन्धी तर्क का बोध कराना।

5.1 प्रस्तावना

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में वैश्वीकरण अथवा भूमण्डलीकरण की अवधारणा एक महत्वपूर्ण विवेचनीय बिन्दु है। 20वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में होने वाले राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तनों ने सम्पूर्ण विश्व व्यवस्था को प्रभावित किया। शीतयुद्ध का अन्त, सोवियत संघ का विघटन, जर्मनी के एकीकरण जैसी घटनाओं ने एक नयी विश्व व्यवस्था (New World Order) से परिचित कराया जिसके फलस्वरूप भूमण्डलीकरण, आर्थिक उदारीकरण बाजारोन्मुख अर्थव्यवस्था, प्रतिस्पर्धात्मक एवं खुली अर्थव्यवस्था जैसी संकल्पनाओं का उदय हुआ।

भूमण्डलीकरण अथवा वैश्वीकरण विश्व के सभी क्षेत्रों में वास्तविक सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिवर्तनों के द्वारा एक वैश्विक समरूपता एवं एकरूपता प्रदान करने की सतत् प्रक्रिया से सम्बन्धित है। अन्य शब्दों में वैश्वीकरण शब्दों की राजनीतिक सीमाओं के आर-पार आर्थिक लेन-देन की प्रक्रियाओं से सम्बन्धित है।

वास्तव में वैश्वीकरण के तात्पर्य उन्मुक्त बाजार एवं प्रतिस्पर्धात्मक राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का विश्व अर्थव्यवस्था के साथ समायोजन तथा राष्ट्रीय बाजारों का अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों की ओर उन्मुखीकरण है। अनेक विद्वानों ने वैश्वीकरण का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत बताया है, उनके अनुसार भूमण्डलीकरण एक ऐसी घटना है जिसका प्रभाव मानव के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक सभी क्षेत्रों पर पड़ रहा है।

वैश्वीकरण, विश्व के सभी भागों में रहने वाले लोगों के मध्य सामाजिक-आर्थिक-औद्योगिक-व्यापारिक-सांस्कृतिक सम्बन्धों के बढ़ाने की व्यापक प्रक्रिया है। इसमें वह प्रक्रिया भी शामिल रहती है जो विश्व को एक अर्न्तसम्बंधित तथा अन्तर्निभर गाँव में परिवर्तित करने के लिये आवश्यक मानी जाती है। यह एक विचारधारा भी है जो न केवल सबके लिये स्वतंत्रता, अन्तर्राष्ट्रवाद/अन्तर्राष्ट्रीयतावाद, सब लोगों के लिए मुक्त व्यापार और मुक्त आर्थिक सम्बन्धों के लाभ तथा इसके साथ-साथ उत्पादकता तथा कुशलता को बढ़ाने की भी वकालत करती है। इस धारणा में ऐसे नियमों तथा तरीकों को बनाना और लागू करना शामिल है जिससे विश्व के सभी लोगों के लिये सामाजिक, आर्थिक एकीकरण को प्राप्त किया जा सके।

5.2 वैश्वीकरण के तत्व

वैश्वीकरण की धारणा अब अत्यंत व्यापक है इसमें कई एक तत्त्व एक साथ गतिशील रहते हैं। इसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

5.2.1 आयात-निर्यात का उदारीकरण

सभी राज्यों की आयात-निर्यात व्यवस्थाओं के उदारीकरण की प्राप्ति तथा इन पर से अनावश्यक प्रतिबन्धों तथा शुल्कों को कम-से-कम करना।

5.2.2 निजीकरण

राज्य को औद्योगिक उत्पादन के स्वामित्व से दूर रखना ताकि सभी सीमाओं के आर-पार औद्योगिक उत्पादों, व्यापार तथा आर्थिक सम्बन्धों का मुक्त प्रवाह सम्भव हो।

5.2.3 मुक्त व्यापार

राष्ट्रों के मध्य व्यापार पर से प्रतिबन्ध हटाना और विभिन्न राष्ट्रों की सीमाओं के आर-पार वस्तुओं, सेवाओं और तकनीक का मुक्त प्रवाह एवं व्यापार

5.2.4 उदारीकरण

इसका अर्थ विश्व की कारोबारी संस्थाओं / कम्पनियों अथवा निगमों द्वारा न केवल अपने-अपने देशों में अपितु विश्व के सभी देशों और भागों में अपने कारोबारी संगठन / उद्योग स्थापित करने में लोगों, वस्तुओं और सेवाओं का सीमाओं के आर-पार स्वतंत्र प्रवाह।

5.2.5 आर्थिक गतिविधियों का वैश्वीकरण

आर्थिक गतिविधियों पर घरेलू तथा अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों दोनों का शासन तथा घरेलू अर्थव्यवस्थाओं का विश्व अर्थव्यवस्था से जुड़ना।

5.2.6 आर्थिक सहयोग

तीव्र आधुनिकीकरण, विकास तथा तकनीकी विकास के लिए सभी देशों की वित्तीय-औद्योगिक तकनीकी संस्थाओं में अधिक-से-अधिक सम्बन्धों की स्थापना।

5.2.7 आर्थिक सुधार

विश्व व्यापार बाजार उन्मुख अर्थव्यवस्था, मुक्त संस्थान आर्थिक गतिविधि तथा बाजार शक्तियों के हित में आर्थिक सुधारों को उत्साहित करना।

इस प्रकार वैश्वीकरण का लक्ष्य मुक्त-विश्व व्यापार तथा व्यापक रूप से विश्व बाजारों में पहुँच बनाना है तथा यह आर्थिक निर्देशों की मुक्त व्यवस्था के सिद्धान्तों की वकालत करता है। यह विश्व संस्कृति, अर्थव्यवस्था तथा आधारभूत संरचना का, विश्व स्तर पर निवेश द्वारा लोकतन्त्रीकरण तथा एकीकरण करने की धारणा है। यह विश्व को एक गांव-समुदाय के रूप में विकसित करना चाहती है तथा विश्व के सभी लोगों तथा क्षेत्रों के लिए टिकाऊ विकास की प्राप्ति करना इसका लक्ष्य है।

5.3 वैश्वीकरण की विशेषताएँ

वैश्वीकरण की विशेषताओं के आधार पर इसके विषय में और भी अच्छी तरीके से जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसकी पाँच प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं -

1. इस शब्द का उपयोग वर्णनात्मक रूप में अधिक किया गया है, न कि यथार्थ चित्रण के रूप में। यह किन्हीं वांछनीय या अवांछनीय उद्देश्यों का उल्लेख नहीं करता, जिन्हें स्वीकार किया जाए, या अस्वीकार। यह केवल कुछ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा प्रौद्योगिकी शक्तियों को दर्शाता है, जो कि हाल के समय में स्पष्ट रूप से विख्यात हुए हैं।

2. इस शब्द का उपयोग अपेक्षाकृत नया है, जबकि इससे सम्बद्ध घटना / घटनाएँ किसी भी प्रकार नवीन नहीं कही जा सकतीं। अतीत में ऐसी घटनाएँ घटी हैं जो कि भूमण्डलीकरण शब्द में समाहित हैं।

3. भूमण्डलीकरण प्रक्रिया के फलस्वरूप जिन संस्थाओं का उदय हुआ है, वे सभी राष्ट्र-राज्य की शक्ति और सत्ता से बाहर हैं। यहाँ तक कि भूमण्डलीकरण होते अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में, राष्ट्र-राज्य एक मात्र अभिकर्ता (actors) नहीं रह गए हैं (जैसा कि पहले था), अब अन्य अनेक अभिकर्ता भी हैं जो नई व्यवस्था में प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इनमें गैर-सरकारी संगठन, पर्यावरण-सम्बन्धी आन्दोलन, परराष्ट्रीय निगम, जातीय राष्ट्रीयताएँ तथा बहु-राज्यीय अथवा क्षेत्रीय संगठन शामिल हैं।

4. ''भूमण्डलीकृत'' विश्व में नए अभिकर्ताओं की भूमिका निरंतर बढ़ी है - शायद इसलिए कि आर्थिक राजनीतिक और संचार अवसरंचनाओं की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है। इन व्यवस्थाओं (या जालों) ने राष्ट्र-राज्यों की सीमाओं को खुला कर दिया है तथा उनके आर पार लोगों, वस्तुओं, सेवाओं, विचारों तथा सूचनाओं का आवागमन अत्यंत सरल हो गया है।

5. भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया ने न केवल अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को अधिक विस्तृत बना दिया है, बल्कि वे अधिक सघन (एकोदिष्ट) भी हो गए हैं, क्योंकि अब न केवल अभिकर्ताओं की संख्या बढ़ी है, तथा विस्तृत व्यवस्था (जाल) एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं, बल्कि अधिक महत्वपूर्ण यह है कि इनमें से प्रत्येक जो दूसरों पर प्रभाव डालता है वह गुणवत्ता में पहले से कहीं अधिक श्रेष्ठ है। विश्वव्यापी संचार व्यवस्था, बहुराष्ट्रीय निगमों के उत्पाद तथा बड़ी संख्या में लोगों का संसार के एक भाग से दूसरे में आवागमन, इन सबने विश्व स्तर पर लोगों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक नौबंध (moorings) को भी प्रभावित किया है। ऊपर भूमण्डलीकरण की जिन विशेषताओं की व्याख्या की गई है, उनमें से प्रथम दो उस प्रक्रिया की पहचान करती है जो उत्तर (अनुक्रिया) की अपेक्षा करती हैं। तीसरी विशेषता इस बात पर बल देती है कि भूमण्डलीकृत होती विश्व व्यवस्था में राष्ट्र-राज्य अन्य अभिकर्ताओं के साथ विश्व मंच पर भागीदार के रूप में कार्य कर रहे हैं - उनका एकाधिकार समाप्त हो गया है। इस प्रकार आधुनिक 'अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, पहले की अपेक्षा, कम राज्य-केन्द्रित रह गया है। चौथी और पाँचवीं विशेषताएँ यह संकेत देती हैं कि घरेलू और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में किया जाने वाला अंतर अब उतना टिकाऊ नहीं रह गया है जितना पहले था।

5.4 वैश्वीकरण के पक्ष में तर्क

यह कहा जाता है भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण) की प्रक्रिया ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध विषय के आधार के रूप में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों के मध्य अंतर कम कर दिया है। इस विचार का कुछ लोग स्वागत करते हैं, तथा कुछ विरोध। जो विद्वान भूमण्डलीकरण का स्वागत

करते हैं उनका कहना है कि यह प्रक्रिया विश्व शांति, मानव सुरक्षा और आर्थिक सम्पन्नता को प्रोत्साहित करेगी। दूसरी ओर कुछ लेखक इन दावों को अस्वीकार करते हुए यह तर्क देते हैं कि भूमण्डलीकरण, लोकतंत्र, मानव स्वतंत्रता तथा मानव पहचान के लिए बड़ा खतरा हो सकता है।

सामान्य तौर पर भूमण्डलीकरण के समर्थकों का दावा है कि संसार में एक ''सर्वदेशीय लोकतांत्रिक समुदाय'' (Cosmopolitan democratic community) का विकास हो रहा हैं यह एक नया अन्तर्सम्बन्धीय प्रतिमान है। परन्तु, उनके मध्य कुछ मतभेद भी हैं। उन विद्वानों में से कुछ बिना किसी हिचकिचाहट के भूमण्डलीकरण का समर्थन करते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं क्योंकि अनेक ऐसी समस्याएँ जो कि भूमण्डलीकरण से उत्पन्न मानी जाती हैं, वे वास्तव में इसलिए उपजी हैं क्योंकि हमने संसार की वैश्विव (भूमंडली) प्रकृति को न पूरी तरह समझा है, और न अपनाया है। उनके अनुसार एक संस्था के रूप में, अपनी उत्पत्ति से ही, राष्ट्र-राज्य विश्व को शांति, मानव अधिकार तथा खुशहाली न तो दे पाया है, और न उसे सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया है। ऐसी स्थिति में, मानव अधिकारों की अवहेलना, मानव के सम्मान और निर्धनता जैसी समस्याओं के निराकरण का प्रयात्स अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के द्वारा किया जा रहा है। इन संस्थाओं का सशक्तीकरण के लिए आवश्यक है। उनके पास पर्याप्त सत्ता और शक्ति है। यह आवश्यक है कि ऐसे विश्व सरकार की स्थापना की जाए, जो कि अपनी नीतियों के क्रियान्वयन के लिए राष्ट्रीय सरकारों पर निर्भर तो रहें, परन्तु उन राज्यों पर अपनी कुछ सत्ता का प्रयोग अवश्य करें।

अपने तर्कों के समर्थन में, भूमण्डलीकरण के प्रशंसक मानते हैं कि संसाधन प्रबंधन तथा पर्यावरण की क्षति को रोकने में राष्ट्र-राज्य किस प्रकार विफल रहे हैं। वे इसकी तुलना इन समस्याओं के समाधान की दिशा में अन्तर्राष्ट्रीय या भूमण्डलीकरण संस्थाओं के द्वारा उठाए जा रहे प्रभावी कदमों से करते हैं। इसके विपरीत, एक ऐसा वर्ग भी है जो भूमण्डलीकरण को ऐसा समर्थन देता है जिसे आँख बंद कर दिया समर्थन नहीं मान सकते। यह वर्ग जहाँ भूमण्डलीकरण के परिणामस्वरूप हुए कुछ घटनाक्रमों का स्वागत करता है, वहीं कुछ अन्य को यह अस्वीकार भी करता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि, यह वर्ग भूमण्डलीकरण के वांछनीय तथा अवांछनीय परिणामों में अंतर करता है। परन्तु इन विचारों में यह स्पष्ट नहीं है कि भूमण्डलीकरण की कौन सी विशेषताएँ वांछनीय है, और कौन सी नहीं है। एक ओर, उद्योग तथा व्यापारिक संगठन, जिन्होंने मुक्त बाजार का इसलिए स्वागत किया है कि उपभोक्ताओं के समक्ष विकल्पों में वृद्धि हुई है और वस्तुओं के मूल्यों में कमी आई है, वे भी पूरी तरह, उन बहुराष्ट्रीय संधियों का समर्थन नहीं करते जो उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश के मानकों के अधीन बना देती हैं। दूसरी ओर वे श्रमिक संगठन जो यह माँग करते हैं कि, प्रगतिशील सामाजिक न्याय से सम्बन्धित मानव अधिकारों के अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को मान्यता दी जाए और उन्हें अपनाया जाए, उनके द्वारा भी, निर्धन श्रमिकों की परिस्थितियों से लाभ उठाने के लिए विश्व बाजार की क्षमता की निंदा की जाती है।

जो लोग भूमण्डलीकरण को सीमित रूप से समर्थन प्रदान करते हैं, उनकी चिंता का एक अन्य पक्ष भी है। उनका विचार है कि भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया केवल वहीं तक ठीक है जहाँ यह राष्ट्र-राज्य नामक संस्था की जड़ों पर कुठाराघात नहीं करती। उनका विश्वास है कि राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा के लिए राष्ट्र-राज्य का सशक्त रहना अनिवार्य है। राष्ट्र-राज्य के महत्व पर बल देते हुए भी वे यह कहते हैं कि, विश्व स्तर पर उभरने वाली समस्याओं के निदान के लिए प्रत्येक राष्ट्र-राज्य को अन्य राष्ट्र-राज्यों के साथ मिलकर और उनके सहयोग से कार्य करना चाहिए। उनका यह भी विश्वास है कि भूमण्डलीकरण (वैश्वीकरण) के फलस्वरूप एक भूमण्डलीकरण

नागरिक समाज का उदय होगा, जिसमें राष्ट्र-राज्य तथा गैरसरकारी संगठन मिलकर एक ऐसी संरचना के अंगों के रूप में कार्य करेंगे जिसे अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और परम्पराओं से मान्यता प्राप्त होगी।

5.5 वैश्वीकरण के विपक्ष में तर्क

जो विद्वान भूमण्डलीकरण का पूर्ण समर्थन करते हैं, वे भी तथा जो कुछ शर्तों (या संकोच) के साथ इसका स्वागत करते हैं दोनों ऐसा मानते हैं कि इस प्रक्रिया ने, बाजारों को मुक्त करके तथा राष्ट्र-राज्यों पर मानव सुरक्षा और सुख शांति के लिए दबाव डालकर, राष्ट्रीय समुदायों के लिए नई सम्भावनाओं के द्वार खोले हैं तथा उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। पर इनके विरोधियों का कहना है कि भूमण्डलीकरण एक गम्भीर चिंता का विशय है। उनके अनुसार, भूमण्डलीकरण में अनेक खतरनाक और अनियंत्रित (अंकुशहीन) तत्व कार्यरत हैं, जिन्होंने राष्ट्र-राज्य के मूलभूत अधिकारों, तथा उसके (राज्य के) द्वारा घरेलू अर्थव्यवस्था तथा राजनीतिक प्रबंधन को सुव्यवस्थित रूप से संचालन करने और अपनी राष्ट्रीय पहचान बनाए रखने की क्षमता, शक्ति और सत्ता को कुंठित करके, राष्ट्रीय समुदायों को अशक्त कर दिया है। वास्तव में, उनका विचार है कि, भूमण्डलीकरण का परिणाम उसके बिल्कुल विपरीत हुआ है जिसकी बात इसके समर्थक करते हैं। उन्होंने तीन प्रमुख चिंताएँ व्यक्त की हैं जो कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के लिए खतरा सिद्ध हो सकती हैं। वे हैं -

1. राष्ट्रीय आर्थिक हितों से समझौता
2. राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता में कटौती तथा
3. राष्ट्रीय पहचान को क्षति।

वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अन्तर्गत बड़ी-बड़ी विशिष्ट कम्पनियों ने, उत्पादकता के विकास की धीमी प्रगति के बावजूद, अच्छा कारोबार किया। क्योंकि वैश्वीकरण ने उन्हें वेतनों को कम रखने में सहायता की, कम हुए उत्पादकता लाभ के एक बड़े भाग पर भी वे अधिकार जमाने में सफल हुए तथा इससे विशिष्टों की आमदनी तथा बाजार मूल्यों में तीव्रता से वृद्धि हुई। परन्तु विश्व की बहुसंख्या के लिये वैश्वीकरण ने अच्छे और लाभकारी परिणाम नहीं पैदा किये।

नए विश्व क्रम (New Global Order) की विशेषता बढ़ी हुई वित्तीय तरलता है तथा 1980 के दशक के तीसरी दुनिया के ऋण संकट से 1994-95 मैक्सिकन पतन से, 1995-99 के वर्षों तक के एशिया संकट, सभी वित्तीय संकट अधिक से अधिक घातक तथा चुनौतीपूर्ण हो रहे हैं। निजीकरण तथा नियमन व्यवस्था के बढ़ते हुए स्वरूप से सरकार एवं गैर-नियमनकृत वित्तीय शक्तियों के बीच अन्तर बढ़ता है तथा विश्व स्तर पर वित्तीय संकट आने की सम्भावनाएँ धीरे-धीरे बढ़ जाती हैं।

वैश्वीकरण के आलोचक यहां तक कह देते हैं कि यह एक थोपी हुई व्यवस्था है न कि लोकतंत्रीय रूप में स्थापित व्यवस्था है। यह प्रक्रिया व्यापार उन्मुख रही है तथा व्यापारिक उद्देश्यों के लिये व्यापारिक योजनाक्रम तथा चालों के द्वारा चलती रही है। सरकारों ने इसमें लघु नीति क्रियाओं तथा बढ़ी नीति-प्रक्रियाओं द्वारा इस प्रवृत्ति की सहायता की है। यह सब कुछ बिना बहस के गुप्त नीति से किया गया। वैश्वीकरण की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने में कई बड़ी-बड़ी क्रियाओं जैसे NAFTA (North America Free Trade Agreement) की स्थापना या फिर EMU (Europe Monetary Union) में शामिल होने की क्रिया आदि के सम्बन्ध में जनप्रसार

साधनों तथा व्यापार जगत द्वारा बहुत भारी प्रचार मुहिमों (Massive Propaganda Campaigns) का सहारा लिया गया। संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा किये गये जनमत सर्वेक्षणों ने यह दिखाया कि इसके बावजूद भारी प्रचार के बाद आम जनता ने NAFTA के विरूद्ध मत दिया था। परन्तु प्रचार मीडिया ने इसका साथ दिया तथा यह समझौता पास हो गया। यूरोप में भी, बार-बार किये गये जनमत सर्वेक्षणों ने दिखाया कि यूरो के आरम्भ किये जाने का विरोध किया था परन्तु शक्तिशाली विशिष्ट वर्गों (Powerful Elites) के समर्थन के कारण यूरो भी अस्तित्व में आ गया।

यह गैर-लोकतंत्रीय प्रक्रिया, जो कि लोकतंत्रीय पर्दे में चलाई गई, वैश्वीकरण के लाभों तथा खर्चों को बांटने में अनुरूप नहीं तथा तथ्य तो यह है कि इसने विशिष्ट वर्ग के हितों की ही सेवा की है न कि सभी देशों की। गैर-योजनाबद्ध प्रभावों के द्वारा, श्रम वेतनों को सीमित रख कर, तथा कल्याणकारी राज्य की भूमिका में कम करके वैश्वीकरण ने धीरे-धीरे लोकतंत्र को कमजोर किया है। इसने व्यापारियों की एक अल्प संख्या द्वारा राज्य पर दृढ़ नियंत्रण करने को प्रोत्साहित किया है तथा बहुसंख्या की मांगों की ओर ध्यान देने की राज्य की क्षमता को समाप्त किया है।

वैश्वीकरण के लक्ष्यों के अंतर्गत व्यापारी समुदाय ने राज्य की सरकार पर हावी होने के शक्तिशाली प्रयास किये हैं। अपने लाभों को बढ़ा कर तथा श्रम को कमजोर करके वैश्वीकरण ने शक्ति सन्तुलन को व्यापार के पक्ष में कर दिया है तथा चुनावों में राजनीतिक दलों पर व्यापारी समुदाय के प्रभाव को निर्णायक रूप में बढ़ा दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं तथा जनप्रसार साधनों की सहायता तथा समर्थन से व्यापारिक विशिष्ट वर्ग लगातार सामाजिक लोकतंत्र के समर्थकों को ऐसी नीतियों को अपनाने के लिए विवष किया जो कि 'शासकों' की इच्छानुसार थी। एक के बाद दूसरे देश में सामाजिक-लोकतंत्रीय दलों ने नव-उदारवाद को स्वीकार कर लिया तथा ऐसा अपने-अपने देश में विद्यमान बहुसंख्यकों की सोच के विपरीत किया गया। इसका सीधा अर्थ यह है कि आज का लोकतंत्र वास्तविक रूप में लोकतंत्र नहीं रहा तथा यह आम नागरिकों की सेवा नहीं कर रहा। चुनाव अर्थहीन तथा लोकतंत्र सार रहित हो गये हैं। यही कारण है कि आज आधे से ही अधिक मतदाता अपने मतदान के अधिकार का प्रयोग नहीं कर रहे हैं।

आज तक वैश्वीकरण की प्रक्रिया उत्पादकता बढ़ाने के क्षेत्र में असफल रही है, यह एक सामाजिक त्रासदी तथा स्थायित्व के लिये चुनौती बनी है। इसके समर्थकों द्वारा प्रस्तुत यह तर्क कि मुक्त व्यापार आर्थिक विकास का रास्ता है, भी ऐतिहासिक अनुभव के आधार पर टिकता नहीं। किसी भी विगत या वर्तमान देश ने तब तक निरंतर आर्थिक विकास के कदम नहीं रखा तथा आर्थिक पिछड़ेपन से आधुनिकता में प्रवेश नहीं किया जब तक उन्हें आरम्भ किये उद्योगों तथा अन्य प्रबन्धों को शक्तिशाली बाहरी शक्तियों (कम्पनियों) से सरकार द्वारा भारी मात्रा में सुरक्षा नहीं दी गई थी। ब्रिटेन, अमरीका, जापान, जर्मनी, दक्षिण कोरिया आदि सभी विकसित तथा अमीर देशों ने अपने विकास के पहले चरणों में निश्चित रुप से अपने उद्योगों को सुरक्षा प्रदान की थी। आज भी ये देश अपने हितों की सुरक्षा के लिये संरक्षणवादी नीतियों को अपनाने से हिचकिचाते नहीं। परन्तु आज वैश्वीकरण के नाम पर ये देश बहुराष्ट्र कम्पनियों के हितों की रक्षा में जुटे हैं। अब IMF, WB, WTO, NAFTA के माध्यम से कार्य करते हुए विकसित देशों द्वारा अपने उद्योगों को दिये जाने वाले संरक्षणों को समाप्त करवा रहे हैं। आज कम विकसित देशों की व्यापारिक कम्पनियों को बाहर की कम्पनियों द्वारा कब्जा किये जाने का डर बना हुआ है, ये बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की सहायक इकाईयों के रूप में कार्य करने के लिये विवश

भी हो रही हैं। सरकारों की अपने-अपने राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित करने की योग्यता और क्षमता धीरे-धीरे कम हो रही है।

5.6 निष्कर्ष

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि वैश्वीकरण की अवधारणा ने आज भी दुनिया को काफी प्रभावित कर रखा है। इसने बदलते अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्धों की प्रकृति को रुपाचित करने में अहम् भूमिका अदा की है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया में आर्थिक प्रश्न अहम हो गये हैं और राजनीतिक प्रश्न गौण। यह पूँजीवादी प्रवृत्तियों को उभारने एवं सशक्त बनाने की प्रक्रिया के रुप में अपनी पहचान बनायी है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की प्रकृति जटिल हुयी है। संचार-साधनों एवं यातायात साधनों में इसकी क्रांति ने वैश्वीकरण में नये आयामों की सृष्टि की है और वैश्वीकरण की प्रक्रिया में वाह्य बने हैं। इस दौरान इसके सकारात्मक तथा नकारात्मक पहलू भी स्पष्ट होकर हमारे सामने आये हैं। मानवता के लिए नई सभ्यता की तलाश अब भी जारी है जो सर्वमान्य और सर्वकल्याणकारी हो।

5.7 बोध प्रश्न

5.7.1 दीर्घ प्रश्न

1. वैश्वीकरण की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें।

---

2. वैश्वीकरण के कारण वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में आये परिवर्तन की व्याख्या कीजिए।

5.7.2 लघु प्रश्न

1. वैश्वीकरण के पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दे?

---

2. वैश्वीकरण क्या है? इसके प्रमुख तत्वों को स्पष्ट करें।

5.7.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

5.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

- भारत का भूमण्डलीकरण : अभय दूबे
- Golobization : Arjuan Appadurai
- भारतीय अर्थ व्यवस्था : दत्त एवं सुन्दरम्

MAPS-119
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड – 3

शीत युद्ध और विश्व राजनीति

इकाई – 6 **67**

द्वितीय विश्वयुद्ध कारण और परिणाम (महाशक्तियों का उदय)

इकाई – 7 **77**

शीत युद्ध का उद्‌भव और विकास

इकाई – 8 **85**

बोल्शेविक क्रान्ति

इकाई – 9 **93**

शस्त्रीकरण एवं निशस्त्रीकरण

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. एम. पी. सिंह – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, 34 उत्तरांचल अपार्टमेंट, 5, आईपी एक्सटेंशन पटपड़गंज, नई दिल्ली

(2) **प्रो. एस.पी. एम त्रिपाठी – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

(3) **प्रो.एल.आर.गुर्जर – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान

(4) **डॉ.दीपशिखा श्रीवास्तव – सचिव**
शैक्षणिक परामर्शदाता ,राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज

लेखक

1. **प्रो0 संजय श्रीवास्तव** — **प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान,** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय **(इकाई–04, 05, 15)**

2. **डॉ0 विश्वनाथ मिश्रा** — **असि0 प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान** आर0 महिला पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई– 06, 07, 08, 09, 10, 11, 12)**

3. **डॉ0 स्वाती सुचरिता नन्दा** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई–01, 02, 03, 21, 22, 23)**

4. **डॉ0 अर्चना सुदेश मैथ्यू** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** पी0जी0 कालेज छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश **(इकाई–13, 14, 16, 17, 18)**

5. **डॉ दीपशिखा श्रीवास्तव** — **शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान** यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज **(इकाई– 19, 20)**

संपादक / परिमापक

डॉ. नागेश्वर प्रसाद शुक्ला — प्राचार्य गन्ना उत्पादक पी0जी0 कालेज, बहेड़ी, बरेली

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव, — शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

(मुद्रित)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN- 978-93-83328-37-6

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई-6

द्वितीय विश्वयुद्ध कारण और परिणाम (महाशक्तियों का उदय)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 कारण

- 6.2.1 वर्साय की अपमान जनक सन्धि
- 6.2.2 सामूहिक सुरक्षा की विफलता
- 6.2.3 जर्मनी के प्रति ब्रिटेन एवं फ्रांस की नीति
- 6.2.4 सर्वाधिकारवादी राज्यों का उदय
- 6.2.5 अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मन्दी
- 6.2.6 निःशस्त्रीकरण की विफलता
- 6.2.7 प्रतिद्वन्दी सैनिक गुटों का उदय
- 6.2.8 साम्राज्य विस्तार की नीति

6.3 द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम

- 6.3.1 शान्ति स्थापना हेतु मर्यादित पहल
- 6.3.2 यूरोप की परम्परागत शक्ति संरचना में परिवर्तन
- 6.3.3 शीत युद्ध का आरम्भ
- 6.3.4 नव-स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय
- 6.3.5 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना
- 6.3.6 नव-साम्राज्यवाद एवं नव-उपनिवेशवाद का आरम्भ

6.3.7 गुट निरपेक्षता का उदय

6.4 प्रमुख शब्दावली

6.5 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

6.6 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

6.7 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में द्वितीय विश्वयुद्ध के कारणों एवं परिणाम की चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- द्वितीय विश्वयुद्ध के कारणों को जान सकेंगे।
- युद्ध के महत्वपूर्ण घटनाक्रम को समझ सकेंगे।
- युद्ध के परिणामों का विश्लेषण कर पायेंगे।
- युद्धोत्तर विश्व के अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की पृष्ठभूमि का ऑकलन कर सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्ष को समझने के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध के कारणों एवं परिणामों का ज्ञान आवश्यक है। इस महायुद्ध ने न केवल अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की यूरोप केन्द्रितता का पटाक्षेप किया बल्कि इसने विचारधारा के आधार पर महाशक्तिगुटों का निर्माण भी किया। एक ओर जहाँ महायुद्ध के परिणामों ने परम्परागत साम्राज्यवाद का विघटन किया वहीं इसने नव साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को प्रश्रय भी दिया। सैद्धान्तिक दृष्टि से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन हेतु बने सिद्धान्त, यथा यथार्थवाद, संरचनावाद, व्यवस्था सिद्धान्त, निर्भरता सिद्धान्त, मार्क्सवादी सिद्धान्त, खेल सिद्धान्त, निर्णय निर्माण सिद्धान्त आदि पर भी महायुद्ध को जन्म देने वाली प्रवृत्तियों एवं उसके पश्चात् स्थापित संस्थाओं का प्रभाव है। समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति भी द्वितीय महायुद्ध के पश्चाात् स्थापित विभिन्न संरक्षणवादी संस्थाओं के हस्तक्षेप से परिचालित हो रही है। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के लोकतान्त्रीकरण की मांग जहाँ जोर पकड़ रही है वहीं पूँजी, तकनीक, उपभोग, व्यापार, जीवन की गुणवत्ता आदि के क्षेत्र में उत्तर एवं दक्षिण के मध्य खाई भी बढ़ती जा रही है।

6.2 कारण

प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् शक्ति एवं पुनर्निर्माण हेतु जो पहले किये गये वे अपर्याप्त एवं भेद-भावपूर्ण थे। पेरिस शान्ति सम्मेलन (1919) के पश्चात् स्थायी शान्ति की जो उम्मीद लगायी गई थी उसमें विश्वास ज्यादा और यथार्थ कम था। पेरिस शान्ति सम्मेलन के बाद भी यूरोप में कहीं न कहीं संघर्ष चल ही रहा था। तनाव, मतभेद एवं अविश्वास भी समाप्त नहीं हुए

थे। 1 सितम्बर, 1939 को हिटलर द्वारा पोलैण्ड पर आक्रमण और ब्रिटेन तथा फ्रांस द्वारा जर्मनी के विरूद्ध युद्ध की घोषणा से द्वितीय विश्व युद्ध का आरम्भ तो अवश्य होता है, किन्तु ऐसे युद्ध की पृष्ठभूमि यूरोप में पेरिस शान्ति सम्मेलन के बाद से ही बनने लगी थी।

क्योंकि, शान्ति स्थापना के सम्पूर्ण प्रयत्नों से विल्सन के चौदह सूत्र मात्र दिखावा बनकर रह गये थे। शक्ति के बल पर शान्ति स्थापना और जर्मनी की आपत्तियों के बावजूद यूरोपीय देशों द्वारा बदले की भावना से जर्मनी पर सन्धि का आरोपित करने के उपक्रम कभी स्थायी शान्ति के संवाहक हो भी नहीं सकते थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारणों का विस्तृत उल्लेख निम्नलिखित रूप से की जा सकती है।

6.2.1 वर्साय की अपमानजनक सन्धि

मित्र राष्ट्रों द्वारा जर्मनी को युद्ध आरम्भ करने का दोषी करार देते हुए उसे आर्थिक एवं सैनिक दृष्टि से पंगु बना देने हेतु जो पहल विभिन्न सन्धियों के रूप में हुए उनमें वर्साय की सन्धि सबसे महत्वपूर्ण है। इस सन्धि में मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी को कमजोर एवं असहाय बनाकर जहाँ अपने प्रतिशोध को पूरा कर रहे थे वहीं उनकी यह भी आशा थी कि अशक्त जर्मनी में भविष्य में सैनिक उन्माद उत्पन्न नहीं होगा। वर्साय की सन्धि के नाम पर जर्मनी की चालीस हजार वर्ग किलोमीटर का भू-भाग और सत्तर लाख की जनसंख्या से हाथ धोना पड़ा। सन्धि शर्तों के अनुसार जर्मनी एक लाख से अधिक सैनिक नहीं रख सकता था। जर्मनी के व्यापारिक जहाज, नौ सैनिक क्षमता, औद्योगिक प्रतिष्ठान इत्यादि भी सीमित कर दिये गये। उसके खनिज संसाधन एवं कृषि योग्य भूमि भी सीमित कर दी गई।

वर्साय सन्धि जनित अपमान ने जर्मनी में जिस निराशा, कष्ट एवं आक्रोश को जन्म दिया आगे चलकर वही नाजियों के अभ्युदय का कारण बना। नाजियों ने जर्मन जनता को यह समझाया कि उनकी दुर्दशा का कारण वर्साय की सन्धि है। इस दुर्दशा से मुक्ति उन्हें शक्ति अर्जित करके पुराने गौरव को प्राप्त करने से ही मिल सकती है। फलतः जर्मनी में वर्साय की अपमानपूर्ण सन्धि के विरूद्ध प्रतिशोध की भावना में युद्धोन्याद उत्पन्न हुआ। हिटलर ने इसी युद्धोन्माद को हवा दी और अपने शक्ति के बल पर वर्साय सन्धि की धज्जियाँ उड़ाकर रख दा

6.2.2 सामूहिक सुरक्षा की विफलता

प्रथम महायुद्ध के त्रासदी ने यूरोप के नेताओं को किसी भी सम्भावित हमले को रोकने के लिए सामूहिक सुरक्षा की नीति को अपनाने हेतु प्रेरित किया। फ्रांस ने पेरिस शान्ति सम्मेलन के बाद भी जर्मनी के प्रति सावधानी की नीति का परिचय देते हुए लघु मैत्री संन्धि का निर्माण किया। जर्मनी को चारों ओर से घेरे रखने की दृष्टि जहाँ लघु मैत्री संन्धियों पर भरोसा बढ़ा रहा था वहीं यूरोप की शक्तियां युद्धत्याग के सभी पक्षों पर चर्चा कर रहे थे। इसी दृष्टि से जेनेवा, लेकार्नों एवं पेरिस संधियों का महत्वपूर्ण स्थान है जो सामूहिक सुरक्षा को प्रोत्साहित करते हुए प्रतीत होते है। किन्तु सामूहिक सुरक्षा की दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहल राष्ट्र संघ के रूप में हो रही थी। कालान्तर में अमेरिका द्वारा अपने को राष्ट्र संघ से अलग कर लेने से एवं राष्ट्र संघ के प्रति सदस्य राष्ट्रों के परस्पर विरोधी दृष्टिकोण के कारण यह प्रभावशाली नहीं हो पाया और निष्फल हो गया। इटली द्वारा इथियोपिया एवं जापान द्वारा चीन पर आक्रमण के समय यह न तो मंचूरिया से जापान को निकाल पाया न ही इथियोपिया के स्वतन्त्रता की रक्षा कर सका। 1930 की आर्थिक मंदी ने भी सामूहिक सुरक्षा की नीति को विफल करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इस मंदी ने राष्ट्रीय स्तर पर कट्टर राष्ट्रवादी शक्तियों को अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों की मर्यादाओं को तोड़ने हेतु प्रेरित किया। शान्ति विरोधी इटली एवं जापान जैसे शक्तियों के विरूद्ध प्रारम्भ में सामूहिक सुरक्षा के नाम पर राष्ट्र संघ मात्र कुछ आर्थिक एवं वित्तीय प्रतिबन्धों को ही लागू करने का प्रयत्न किया। वह भी पूरी निष्ठा से लागू नहीं हो सका। फलतः सामूहिक सुरक्षा की नीति शान्ति विरोधियों में वह भय उत्पन्न न कर सकी जो युद्ध को रोकने हेतु पर्याप्त हो।

6.2.3 जर्मनी के प्रति ब्रिटेन एवं फ्रांस की नीति

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् जर्मनी के प्रति ब्रिटेन एवं फ्रांस की नीति में विरोधाभाष आ गया। ब्रिटेन जहां शक्ति सन्तुलन की नीति पर अमल कर रहा था वहीं फ्रांस वर्साय की शर्तों का कठोरता से पालन सुनिश्चित करना चाहता था। ब्रिटेन साम्यवाद के बढ़ते प्रसार को जर्मनी के उभरते तानाशाही की अपेक्षा अधिक घातक समझता था। उसने जर्मनी के सहयोग से सोवियत संघ के बढ़ते प्रसारवादी नीति को रोकने की, इस मंशा से योजना बनायी कि एक शक्तिशाली जर्मनी आवश्यकता पड़ने पर सोवियत संघ का मुकाबला कर सकेगा। फलतः ब्रिटेन जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति को अपनाने लगा। ब्रिटेन ने जर्मनी के साथ एक सैनिक समझौता करके उसे बीस हजार टन के जहाज बनाने, नौसैनिक शक्ति बढ़ाने एवं पनडुब्बियाँ रखने का अधिकार दे दिया। प्रारम्भ में जर्मनी द्वारा वर्साय की शर्तों के उलंघन का फ्रांस ने विरोध किया किन्तु उसे ब्रिटेन का साथ प्राप्त नहीं हुआ। हिटलर द्वारा जब आस्ट्रिया एवं राइनलैण्ड पर अधिकार कर लिया गया और उसके विरूद्ध सक्रिय कार्यवाही नहीं हुई तब वह चेकोस्लोवाकिया को भी हड़प लिया। ब्रिटेन एवं फ्रांस ने तब भी संतोष प्रकट किया। फलतः हिटलर को यह आत्मघाती भ्रम होने लगा कि उसके विरूद्ध खड़ा होने का साहस किसी राष्ट्र में नहीं है।

6.2.4 सर्वाधिकारवादी राज्यों का उदय

प्रथम महायुद्ध के बाद शान्ति स्थापना एवं पुनर्निर्माण के जो भी प्रयत्न हो रहे थे उनमें लोकतंत्र की स्थापना को महत्वपूर्ण माना गया था। किन्तु धीरे-धीरे ब्रिटेन एवं फ्रांस को छोड़कर अधिकांश यूरोप किसी न किसी सर्वाधिकारवादी शासन के अधीन आ गया। इटली एवं जर्मनी में जहां एक प्रकार के प्रतिक्रियात्मक सत्तावाद का उदय हो रहा था वहीं सोवियत संघ में एक विचारधारा परक सत्तावाद अपनी जड़ें जमा रहा था। इन दोनों प्रकार के सत्तावादी राज्यों ने पश्चिम के उदारवादी लोकतंत्र के प्रति गहरा असंतोष प्रदर्शित किया। इन सत्तावादी राज्यों की योजना विश्व शान्ति के अनुकूल नहीं थी। जहां सोवियत संघ सम्पूर्ण विश्व को सर्वहारा क्रान्ति से रक्तरंजित कर देने का पक्षधर था वहीं हिटलर नाजी जाति की रक्त शुद्धता में विश्वास के कारण जर्मनी को विश्व साम्राज्य का नियन्ता बनाना चाहता था। इसी प्रकार मुसोलिनी प्राचीन रोमन साम्राज्य के पुनरोदय का स्वप्न साकार करना चाहता था। ऐसी ही स्थिति जापान की भी थी जो सम्पूर्ण एशिया का भाग्य विधाता बनना चाहता था। ऐसे सर्वाधिकार वादी राज्यों के अस्तित्व के बीच स्थायी शान्ति की सम्भावना एक कल्पना मात्र ही थी।

6.2.5 अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मंदी

1930 की विश्वव्यापी आर्थिक मंदी ने भी द्वितीय महायुद्ध के लिए पृष्ठभूमि तैयार किया। इस आर्थिक संकट ने बेरोजगारी को जन्म दिया। जर्मनी में ही लगभग सात लाख लोग बेरोजगार हो गये। बेरोजगारी ने जर्मनी में निराशा को और भी बढ़ा दिया जिसमें नाजीवाद को

फलने-फूलने का अवसर प्राप्त हुआ। आर्थिक मन्दी की चपेट से उबरने के एक उपक्रम के रूप में सैन्य प्रतिष्ठानों एवं उद्योगों का पुनः परिचालन आरम्भ हो गया जिससे शस्त्रों की होड़ आरम्भ हो गयी। मन्दी से उबरने के प्रयासों में जब प्रथम विश्वयुद्ध के विजेता व्यस्त थे तब चीन, जापान एवं इटली अपनी महत्वाकाक्षाओं को पूर्ण करने के प्रयत्न में लगे हुए थे।

6.2.6 निःशस्त्रीकरण की विफलता

निःशस्त्रीकरण को पेरिस शान्ति वार्ताकारों ने युद्ध की आशंका को दूर करने के एक उपयुक्त आधार के रूप में स्वीकार किया था। पराजित राष्ट्रों पर तो निःशस्त्रीकरण के एजेन्डे को शक्ति के बल पर आरोपित किया गया किन्तु विजेता राष्ट्रों में शक्ति संवर्धन की होंड़ बनी रही। 1932 में जेनेवा में राष्ट्र संघ के अधीन निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का आरम्भ तो अवश्य हुआ, किन्तु दो वर्ष तक जारी प्रयासों के बाद भी इसे कोई सफल्ता नहीं मिली। जब 1933 ई. में जर्मनी ने अपने आपको इस सम्मेलन से और राष्ट्रसंघ से अलग कर लिया तब उस पर कोई कार्यवाही नहीं हुई। 1935 ई. में जब हिटलर ने विधिवत शस्त्रीकरण की घोषणा की तब भी उसके विरूद्ध कोई ठोस कार्यवाही नहीं हुई। बल्कि ब्रिटेन ने भी वर्साय की सन्धि के उल्लंघन में हिटलर का साथ दिया। जर्मनी के शस्त्रीकरण के प्रत्युत्तर में फ्रांस एवं रूस ने मित्रता सन्धि की और प्रतिरक्षात्मक शस्त्रीकरण को बढ़ावा दिया।

6.2.7 प्रतिद्वन्दी सैनिक गुटों का उदय

द्वितीय विश्व युद्ध को जन्म देने के लिए प्रतिद्वन्दी सैनिक गुट भी उत्तरदायी है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व भी मुख्य रूप से यूरोप और सामान्य रूप से पूरा विश्व उसी प्रकार दो परस्पर विरोधी सैनिक गुट में बंट गया था जैसे यह प्रथम महायुद्ध के पूर्व बंटा हुआ था। एक गुट में जहाँ जर्मनी, इटली एवं जापान थे वहीं दूसरे गुट में ब्रिटेन, फ्रांस, रूस एवं अमेरिका जैसे देश थे। इटली, जर्मनी एवं जापान का गुट 'रोम बर्लिन-टोकियों धुरी' के नाम से विख्यात हुआ। ऐसी ही गुटबन्दी में जब जर्मनी ने पोलैण्ड पर आक्रमण किया और ब्रिटेन तथा फ्रांस ने पोलैण्ड का पक्ष लेते हुए जर्मनी को रोकना चाहा तब द्वितीय विश्वयुद्ध को टाला नहीं जा सकता था।

6.2.8 साम्राज्य विस्तार की नीति

जर्मनी, इटली तथा जापान तीनों ही राष्ट्र ब्रिटेन एवं फ्रांस की तरह विशाल साम्राज्य के मालिक बनना चाहते थे। जर्मनी यूरोप का इटली अफ्रीका का एवं जापान एशिया का स्वामित्व प्राप्त करना चाहता था। धुरी राष्ट्रों के साम्राज्य विस्तार की नीति से उन राष्ट्रों के हितों का सीधा टकराव था जो उस समय विश्व में बड़े साम्राज्य के स्वामी थे। अतः ब्रिटेन एवं फ्रांस की धुरी राष्ट्रों से संघर्ष का एक कारण यह भी था कि धुरी राष्ट्र ब्रिटेन एवं फ्रांस के साम्राज्य को छीन सकने की स्थिति में न आने पायें। इस युद्ध में अमेरिका का हस्तक्षेप जापानी साम्राज्यवाद से अपनी रक्षा के नाम पर हुआ किन्तु अत्यन्त गहरे स्तर पर द्वितीय विश्व युद्ध में अमेरिका का हस्तक्षेप अपनी शक्ति को साबित करने एवं अपने दीर्घ कालीन पूँजीवादी हितों की पूर्ति के लिए ही हुआ। इसी प्रकार सोवियत संघ का इस युद्ध में हस्तक्षेप जहाँ फ्रांस के साथ सन्धि के कारण हुआ वही यह युद्ध उसके लिए प्रतिरक्षात्मक कारणों से भी अवश्यम्भावी हो गया था। तथापि, कालान्तर में सोवियत नीति में भी विजित प्रदेश में शान्ति स्थापना एवं सरकार निर्माण के उपक्रम में उसके साम्राज्यवादी नीति का संकेत मिलता है।

6.3 द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पश्चात् विश्व में शान्ति स्थापना एवं पुनर्निर्माण बेहद गम्भीर समस्या थी। समस्या की गम्भीरता इस तथ्य में निहित थी कि अब विश्व विचारधारा के आधार पर दो गुटों में विभाजित हो चुका था। फलतः शान्ति स्थापना के प्रत्येक प्रयत्नों में अमेरिका एवं रूस द्वारा अपने वर्चस्व को स्थापित करने के प्रयत्न शामिल होते गये। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ एवं चीन के प्रतिनिधियों ने ही अधिकांश योजनाओं पर विचार किया और उन्हें साकार रूप प्रदान किया। शान्ति समझौतों के मसविदा को तैयार करने के लिए लन्दन, मास्को, पेरिस एवं न्यूयार्क में अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस एवं चीन के विदेश मंत्रियों का सम्मेलन आयोजित किया गया। इस महायुद्ध के बाद विश्व में स्थायी शान्ति हेतु एवं आर्थिक पुनर्निर्माण हेतु प्रथम विश्वयुद्ध की अपेक्षा कुछ ठोस पहल अवश्य हुए। किन्तु, इनमें भी भेद-भाव एवं संरक्षणवादी नीति का स्पष्ट समावेश रहा है। महायुद्ध के परिणामों को विस्तार से निम्नलिखित रूप से समझाया जा सकता है।

6.3.1 शान्ति स्थापित हेतु मर्यादित पहल

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् शान्ति स्थापना हेतु लन्दन, मास्को, पेरिस एवं न्यूयार्क में शान्ति सम्मेलन हुए। इन सम्मेलनों में अमेरिका एवं सोवियत संघ के हित परस्पर टकराते रहे। इस टकराव ने शान्ति स्थापना के प्रयत्नों को इस दृष्टि से मर्यादित रखा कि कोई भी गुट अपनी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने हेतु खुली छूट प्राप्त नहीं कर पाया। उक्त शान्ति सम्मेलनों में जिन मुद्दों पर सहमति बन पायी उनके आधार फरवरी 1947 को इक्कीस मित्र राष्ट्रों ने पराजित धुरी राष्ट्रों के समर्थकों के साथ पाँच शान्ति संधियों पर हस्ताक्षर किये। यह सन्धि इटली, रूमानियाँ, बुल्गारिया, फिनलैण्ड और हंगरी के साथ अलग-अलग रूप में की गई। जर्मनी, आस्ट्रिया और जापान के साथ अलग से शान्ति वार्ताएं और सन्धि हुईं। इन शान्ति सन्धियों में मुख्य रूप से निम्नलिखित पक्षों पर विशेष जोर दिया गया।

क- पराजित पक्ष से युद्ध का हर्जाना वसूल करना।

ख- तानाशाही प्रवृत्तियों एवं उनके प्रेरक संगठनों का उन्मूलन करना।

ग- पराजित पक्ष के सैन्य क्षमता एवं शस्त्रीकरण की सम्भावना को कमजोर करना।

घ- लोकतान्त्रिक शक्तियों को प्रोत्साहित करना।

ङ- राष्ट्रीय आत्म निर्णय के अधिकार का समर्थन करना।

तथापि, यह उल्लेख करना समीचीन है कि इन शांति सन्धियों में भी नव साम्राज्यवाद एवं नव उपनिवेशवाद के बीच प्रक्षिप्त रह ही गये थे।

6.3.2 यूरोप की परम्परागत शक्ति संरचना में परिवर्तन

द्वितीय विश्वयुद्ध ने वैश्विक स्तर पर यूरोप के वर्चस्व को समाप्त कर दिया। महायुद्ध ने विश्व राजनीति पर ब्रिटेन के प्रभुत्व को समाप्त कर दिया। शक्ति संरचना में आयी इस रिक्तता को अमेरिका और सोवियत संघ ने भरने का कार्य किया। द्वितीय महायुद्ध के परिणामस्वरूप ब्रिटेन सैनिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर हो गया। इसी तरह युद्ध के परिणाम स्वरूप यूरोप के

अनेक राष्ट्र यथा जर्मन, इटली, बुल्गारिया, रोमानियाँ, फिनलैण्ड, हंगरी आदि को भी पर्याप्त धन-जन की हानि हुई। दूसरी ओर पर्याप्त समय से विश्व की गुटबंदी से अलग रहकर अमेरिका ने तीव्र आर्थिक विकास कर लिया था और सोवियत संघ ने भी विचारधारा की प्रेरणा से अपनी आर्थिक एवं सैनिक शक्ति को सुदृढ़ करने का प्रयास किया था। फलतः महायुद्ध के पश्चात् दो महाशक्तियों अमेरिका एवं सोवियत संघ ने विश्व राजनीति पर वर्चस्व स्थापित कर लिया।

6.3.3 शीत युद्ध का आरम्भ

महायुद्ध की समाप्ति ने अमेरिका एवं सोवियत संघ के उस सहयोग एवं एकता को भी समाप्त कर दिया जो धुरी राष्ट्रों के विरोध हेतु पनपा था। इन दोनों ही राष्ट्रों ने परस्पर विरोधी विचारधारा के आधार पर अपने-अपने ढंग से विश्व को संचालित करने का प्रयास करना आरम्भ किया। दोनों ही राष्ट्र शक्ति संतुलन के कारण प्रयत्क्ष टकराहट से तो बचते रहे किन्तु इनके बीच प्रचार युद्ध, शस्त्र क्षमता अर्जित करने हेतु शस्त्रीकरण की होड़ निरन्तर चलता रहा। शीत युद्ध के काल में 'तनाव पूर्ण शान्ति' भले ही कायम रही हो किन्तु मानवीय विकास की घोर उपेक्षा हुई।

6.3.4 नव स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् औपनिवेशिक शक्तियों के पराभव के कारण एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका में अनेक स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय हुआ। इन स्वतंत्र राष्ट्रों ने विश्व राजनीति में महायुद्ध के पश्चात् अपनी उपस्थिति से जहाँ सकारात्मक परिवर्तन को अंजाम दिया वहीं नकारात्मक पक्षों का भी बीजारोपण किया। इन राष्ट्रों में व्याप्त जातीय संघर्ष, असन्तुलित विकास, राजनीतिक अस्थायित्व, रूढ़िवादिता आदि ने पश्चिमी शक्तियों को हस्तक्षेप का अवसर प्रदान किया। फलतः जहाँ नव स्वतंत्र राष्ट्रों के एक समुदाय ने विश्व राजनीति में जहाँ लोकतान्त्रिकरण की प्रक्रिया और विश्व शान्ति तथा मानवता के कल्याण हेतु अनुकूल योगदान दिया वहीं कुछ राष्ट्रों के कठपुतली सरकारों ने विश्व राजनीति में विकास की गति को हतोत्साहित भी किया।

6.3.5 संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् राष्ट्र संघ की स्थापना के प्रयोग धूमिल पड़ गये थे। किन्तु द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना ने मानव जाति के कल्याण एवं भावी सन्ततियों को युद्ध की विभिशिका से बचाने के प्रति तत्कालीन राजनेताओं की आदर्श सोच को साकार रूप दिया। यद्यपि इस संस्था से विश्व सरकार की दिशा में प्रारंभिक कदम के रूप में जो प्रत्याशा बनी थी वह पूर्ण नहीं हो सकी। कालान्तर में यह निहित स्वार्थो के संघर्ष कारण अपनी प्रामाणिक भूमिका से वंचित रह गयी। तथापि सामूहिक सुरक्षा की दिशा में यह एक सकारात्मक और बड़े पहल के रूप में अवश्य चिन्हित की जाती है।

6.3.6 नव साम्राज्यवाद एवं नव उपनिवेशवाद का आरम्भ

महायुद्ध की समाप्ति में भले ही नव स्वतंत्र राष्ट्रों की संख्या में वृद्धि की हो और लोकतांत्रिक शक्तियों को प्रोत्साहन दिया हो, किन्तु इसकी आड़ में नव साम्राज्यवाद एवं नव

उपनिवेशवाद को बढ़ावा मिला है। बर्टनउड सम्मेलन के पश्चात् स्थापित अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं यथा विश्वबैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष आदि पर निरन्तर यह आक्षेप लगते रहे हैं कि इन संस्थाओं ने गरीब राष्ट्रों के पराश्रितता को बढ़ावा दिया। इसी प्रकार द्वितीय महायुद्ध के बाद भले ही विकसित राष्ट्रों द्वारा उपनिवेश स्थापित करने की प्रक्रिया का अंत हुआ हो किन्तु उनके द्वारा अप्रत्यक्ष शोषण के दूसरे साधनों का प्रयोग होने लगा है, जो सांस्कृतिक साम्राज्यवाद, आर्थिक साम्राज्यवाद, प्रौद्योगिकी के साम्राज्यवाद एवं आणविक तकनीक पर विशेषाधिकार आदि के रूप में प्रकट होता है।

6.3.7 गुट निरपेक्षता का उदय

जिन परिस्थितियों में द्वितीय महायुद्ध का अंत हुआ उसमें नव स्वतंत्र राष्ट्रों के समक्ष अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के सीमित विकल्प थे। वे या तो शीत युद्ध का हिस्सा बन सकते थे या एकाकी रहकर आरोपित किये जाने वाले त्रासदी की इंतजार कर सकते थे। किन्तु नेहरू, एन्क्रुमा मार्शल टीटो एवं नासिर ने नव स्वतंत्र राष्ट्रों की नव प्राप्त स्वतंत्रता की रक्षा हेतु गुट निरपेक्षता का मंच तैयार किया। यह दोनों ही गुटों से समान दूरी रखते हुए स्वतंत्र विदेश नीति के पालन का सिद्धान्त था। इस संगठन के अभ्युदय में द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् शीत युद्ध के परिवेश का महत्वपूर्ण स्थान है। साथ ही गुट निरपेक्ष राष्ट्रों में दोनों ही गुटों के विस्तारवादी नीति से अपनी रक्षा का भी पक्ष महत्वपूर्ण रहा है।

6.4 प्रमुख शब्दावली

धुरी राष्ट्र : इटली, जर्मनी एवं जापान तथा द्वितीय विश्वयुद्ध में इनके सहयोगी राष्ट्र

मित्र राष्ट्र : अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, सोवियत संघ एवं इनके मित्र राष्ट्र जो धुरी राष्ट्रों के विरूद्ध द्वितीय महायुद्ध में सहयोगी थे।

नव साम्राज्यवाद : एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण का ऐसा अप्रत्यक्ष प्रारूप जिसमें सैनिक शक्ति का प्रत्यक्ष प्रयोग शमिल नहीं है।

नव उपनिवेशवाद : एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण का वह प्रारूप जिसमें शोषित राष्ट्र पर प्रत्यक्षतः राजनीतिक नियन्त्रण न स्थापित किया गया हो।

6.5 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

- गुप्ता पार्थसारथि, सं0 (2004) यूरोप का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, नई दिल्ली।
- पॉल केनेडी (1989), द राइज एण्ड फॉल ऑफ द ग्रेट पावर्स : इकोनॉमिक चेन्ज एण्ड मिलिटरी कॉनिफ्ल्क्ट कॉनिपलक्ट फ्रॉम 1500 टू 2000 फोन्टाना प्रेस, लन्दन।
- विलियम थामसन (1999) ग्रेट पॉवर रायवलरिज, यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ कैलोरिना, कोलम्बिया।

6.6 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. वर्साय की सन्धि में द्वितीय महायुद्ध के बीज सन्निहित थे, व्याख्या कीजिए?
2. द्वितीय महायुद्ध के कारणों का परीक्षण करें?
3. द्वितीय महायुद्ध के प्रमुख परिणामों का उल्लेख करें?

6.7 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. द्वितीय विश्व युद्ध का प्रमुख कारण निम्नलिखित में कौन सा हैं?

   क- यूरोप के शक्ति सन्तुलन में परिवर्तन।

   ख- संयुक्त राष्ट्र संघ का उदय।

   ग- शीत युद्ध का प्रारम्भ।

   घ- स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण।

2. निम्नलिखित में से कौन द्वितीय विश्वयुद्ध का परिणाम नहीं है?

   क- युरोप के शक्ति सन्तुलन में परिवर्तन

   ख- संयुक्त राष्ट्र संघ का उदय

   ग- शीत युद्ध का प्रारम्भ

   घ- स्वेज नहर का राष्ट्रीयकरण

3. द्वितीय विश्व युद्ध में नस्लीय श्रेष्ठता की समर्थक पार्टी कौन सी है।

   क- साम्यवादी दल ख- रूढ़िवादी दल

   ग- नाजीवादी दल घ- फासीवादी दल।

4. निम्नलिखित में से कौन धुरी राष्ट्रों में सम्मिलित नहीं है?

   क- जर्मनी ख- इटली

   ग- जापान घ- फ्रांस

   उत्तर : 1-क, 2-ख 3- ग, 4- घ।

इकाई-7

शीत युद्ध का उद्‌भव और विकास

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 शीत युद्ध का उद्‌भव एवं इसके कारण

7.3 शीत युद्ध का विकास

7.3.1 शीत युद्ध का प्रथम चरण

7.3.2 शीत युद्ध का द्वितीय चरण

7.3.3 शीत युद्ध का तृतीय चरण

7.3.4 शीत युद्ध का चतुर्थ चरण

7.3.5 शीत युद्ध का पंचम चरण

7.3.6 शीत युद्ध का षष्ठ चरण

7.4 शीत युद्ध के साधन

7.5 शीत युद्ध का परिणाम

7.6 प्रमुख शब्दावली

7.7 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

7.8 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

7.9 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस इकाई में शीत युद्ध के उद्‌भव और विकास की चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

- शीत युद्ध के अर्थ एवं प्रकृति को समझ सकेंगे।
- शीत युद्ध के कारणों को जान सकेंगे।

- शीत युद्ध की व्यापकता एवं विस्तार का विश्लेषण कर पायेंगे।
- शीत युद्ध के साधनों को समझ सकेंगे।
- शीत युद्ध के परिणामों का आकलन कर सकेंगे।
- शीत युद्ध के पराभव को जान सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

अमेरिकी नेतृत्व में पूँजीवादी गुट एवं सोवियत संघ के नेतृत्व में समाजवादी गुट के मध्य विचारधारा के आधार पर होने वाले संघर्ष को शीत युद्ध कहते हैं। शीतयुद्ध वास्तविक एवं शस्त्र संघर्श का द्योतक नहीं है। अपितु यह दोनों गुटों के मध्य आपसी वैमनस्य और वैचारिक मतभेद को प्रदर्शित करता है। शीतयुद्ध ने द्वितीय महायुद्ध के बाद से 1991 में सोवित संघ के विघटन तक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक के प्रायः सभी पक्षों को प्रभावित किया है। शीतयुद्ध ने ही इस विश्व में 'तनाव के सन्तुलन' और 'अति मारकता' के युग को जन्म दिया है।

7.2 शीत युद्ध का उद्‌भव एवं इसके कारण

द्वितीय विश्वयुद्ध में फांसीवादी एवं नाजीवादी शक्तियों के विरूद्ध मित्र राष्ट्रों के गठबन्धन में अमेरिका एवं सोवियत संघ दोनों ने ही एक साथ भाग लिया था। किन्तु, पश्चिमी पूँजीवादी गुट ने वोल्शेविक क्रान्ति के प्रति आरम्भ से ही सशंकित दृष्टिकोण का परिचय दिया। जहाँ पश्चिमी पूजीवादी गुट को सर्वहारा क्रान्ति में पूँजीवाद के विनाश के बीज दिखाई पड़ते थे वहीं वोल्शेविक क्रान्ति का समग्र लक्ष्य पूरी दुनियाँ में समाजवाद को स्थापित करना था। इसके लिए पूँजीवाद का वैश्विक स्तर पर उन्मूलन आवश्यक था। इस तरह सोवियत संघ में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना शीतयुद्ध के आरम्भ का प्रारम्भिक बिन्दु है।

महायुद्ध काल में ही जब जर्मनी ने सोवियत संघ पर आक्रमण किया तब सोवियत संघ ने मित्र राष्ट्रों से जर्मनी के विरूद्ध युद्ध का दूसरा मोर्चा आरम्भ करने का आग्रह किया। किन्तु चर्चिल एवं रूजवेल्ट युद्ध के दूसरे मोर्चे को आरम्भ करने में अनावश्यक विलम्ब करते रहे। सोवियत नेताओं ने इस घटना की व्याख्या इस रूप में की कि मित्र नाजी जर्मनी के साथ-साथ समाजवादी सोवियत संघ को भी नष्ट करना चाहते हैं।

सोवियत संघ द्वारा याल्टा, बाल्कन एवं पोट्स डाम सन्धियों की अवहेलना करके पोलैण्ड, हंगरी, बुल्गारिया, रोमानियाँ एवं चेकोस्लोवाकिया में सोवियत समर्थक सरकारों की स्थापना ने भी शीत युद्ध को भड़काया। इन सभी देशों में उक्त संधियों के अनुसार लोकतान्त्रिक सरकारों की स्थापना होनी थी। किन्तु सोवियत संघ ने इस संदर्भ में मित्र राष्ट्रों का विरोध ही नहीं किया वरन समाजवादी सरकारों की स्थापना को प्रेरित भी किया। इन घटनाओं ने पश्चिमी पूँजीवादी शक्तियों को सोवियत संघ के विस्तारवादी नीति के प्रति सचेत कर दिया।

अमेरिका द्वारा अणु बम के विकास के कार्यक्रम को एवं अणु बम के तकनीक को सोवियत संघ से गुप्त रखने की नीति ने भी युद्ध कालीन मित्रता को हतोत्साहित किया और दोनों शक्तियों के मध्य वैमनस्य को दृढ़ किया। इस घटना को सोवियत संघ ने अपने प्रति विश्वासघात के रूप में देखा। फलतः सोवियत नीति निर्माताओं ने पूँजीवादी शक्तियों के प्रति अविश्वास से प्रेरित होकर प्रतिस्थापित आरम्भ किया।

पश्चिमी नेताओं के असंयत भाषण ने भी शीतयुद्ध की ज्वाला को भड़काने में अहम भूमिका निभाई। 18 अगस्त 1945 को अमेरीकी राज्य सचिव बर्नेज तथा ब्रिटिश विदेश मंत्री बेविन ने एक विज्ञप्ति में कहा कि हमें तानाशाही के एक स्वरूप के स्थान पर उसके दूसरे स्वरूप (नाजीवाद तब तक नष्ट हो चुका था, समाजवादी व्यवस्था ही दूसरे प्रकार की तानाशाही थी) के स्थापना को रोकना चाहिए। इससे भी अधिक कठोर एवं सोवियत संघ के प्रति दुराग्रह पूर्ण भाशण 5 मार्च 1946 को ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने फुल्टन नामक स्थान पर दिया। इस भाषण में चर्चिल ने सोवियत संघ के लौह आवरण के विरूद्ध स्वतंत्रता एवं इसाई सभ्यता की रक्षा के लिए आंग्ल-अमरीकी गठबन्धन की आवश्यकता पर बल दिया।

सोवियत संघ के द्वारा लंदन प्रोटोकाल का उल्लंघन करते हुए बर्लिन की नाकेबन्दी करने की घटना एवं सोवियत संघ द्वारा पश्चिमी देशों के प्रस्तावों के विरूद्ध राष्ट्रसंघ में बार-बार वीटो के प्रयोग ने भी दोनों गुटों में कटुता को बढावा दिया। अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमेन द्वारा युद्ध काल में सोवियत संघ को दी जाने वाली लैण्ड-लीज सहायता के रोकने के कारण भी पूँजीवादी शक्तियों के विरूद्ध सोवियत नेताओं के दृष्टिकोण में कटुता का भाव बढ़ा।

7.3 शीत युद्ध का विकास

शीत युद्ध के सम्पूर्ण इतिहास को विस्तृत रूप से समझने के लिए शीत युद्ध के सात दशक के इतिहास को छः चरणों में विभाजित करके समझा जा सकता है।

7.3.1 प्रथम चरण (1917-1945)

फ्रांसीसी विचारक आंद्रे फोन्तेन एवं अमेरिकी विद्वान हॉल ने सोवियत संघ में बोल्शेविक क्रांति के माध्यम से समाजवादी सरकार की स्थापना के साथ ही शीत युद्ध का प्रारम्भ स्वीकार किया है। यद्यपि इस अवधि में शीत युद्ध शब्द का प्रयोग नहीं हुआ। तथापि, सोवियत संघ द्वारा व्यापार के प्रस्ताव को 1920 में अमेरिका द्वारा शर्तों के साथ स्वीकृति देना एवं 1933 तक राजनयिक मान्यता न प्रदान करना आपसी मतभेद एवं अविश्वास को ही प्रदर्शित करता है। इसी प्रकार ब्रिटेन ने भी 1924 में ही सोवियत संघ से राजनयिक संबंध स्थापित किये। वह भी तब जब ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सरकार स्थापित हुई। इस अवधि में यदि शीत युद्ध में उष्णता नहीं आयी तो इसके दो ही प्रबल कारण हैं। प्रथम, नाजीवाद से रक्षा हेतु पूँजीवादी एवं समाजवादी शक्तियों में परस्पर एकजुटता की आवश्यकता एवं द्वितीय सोवियत संघ का निर्बल होना। वस्तुतः इस अवधि में तनाव एवं वैमनस्य की चिन्गारी को दूसरे तत्वों ने ढक रखा था।

7.3.2 द्वितीय चरण (1946-1953)

शीत युद्ध शब्द का प्रयोग इसी चरण में हुआ। वाल्टर लिपमैन ने इस शब्द का प्रथमतया अवधारणीकरण किया। सामान्य अर्थ में इस शब्द के प्रयोग का श्रेय जार्ज ओरवेल को भी जाता है। इस काल खण्ड में दोनों पक्षों के नेताओं ने एक दूसरे की विचारधारा एवं व्यवस्था पर दोषारोपण किया।

12 मार्च 1947 को अमेरिकी राष्ट्रपति ने साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए यह घोषणा की कि दुनियाँ में कहीं भी शांति को भंग करने वाला प्रत्यक्ष या परोक्ष आक्रामक कार्यवाही अमेरिकी सुरक्षा हेतु संकट मानी जायेगी। ट्रूमैन ने यूनान एवं टर्की को सोवियत खेमे

में जाने से रोकने के लिए इन देशों को आर्थिक सहायता की भी पहल की। अपने विदेश सचिव मार्शल के प्रस्ताव पर ट्रूमैन ने पश्चिमी यूरोप के आर्थिक सहायता की भी पहल की तथा पश्चिमी यूरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण हेतु विशाल आर्थिक सहायता का कार्यक्रम को संचालित किया। इस सहायता कार्यक्रम का उद्देश्य पश्चिमी यूरोप में साम्यवाद के प्रसार को रोकना था। इस सहायता को इस शर्त के साथ प्रदान किया जाता था कि संबंधित राष्ट्र अपने देश की शासन प्रणाली में साम्यवादियों को प्रविष्ट नहीं होने देंगे। इस योजना को 'साम्यवाद के अवरोध' की नीति के नाम से जाना जाता है।

21 सितम्बर 1949 को ब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका ने अपने अधीनस्थ पश्चिमी जर्मनी का एकीकरण करके संघीय जर्मन गणराज्य को स्थापित किया। यह पूँजीवादी पद्धति का समर्थक राष्ट्र बना। प्रतिक्रिया स्वरूप सोवियत संघ ने भी 7 अक्टूबर 1949 को अपने अधिकृत पूर्वी जर्मनी में जर्मन प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य की स्थापना की। यह साम्यवादी शासन व्यवस्था पर आधारित सोवियत गुट का सदस्य बना।

शीत युद्ध के द्वितीय चरण में ही अमेरिका के नेतृत्व में नाटो नामक सैनिक सन्धि का उदय 1949 में हुआ। इस सन्धि के परिनियमों के अनुसार यूरोप में या उत्तरी अमेरिका में किसी भी राष्ट्र पर हमले को सभी सदस्य देशों पर हमला मानने की बात कही गयी। यह सन्धि प्रत्यक्ष रूप से सोवियत विस्तारवाद के प्रति चेतावनी थी। इस काल में 1 अक्टूबर 1949 को चीन में माओ के नेतृत्व में साम्यवादी क्रान्ति ने सोवियत गुट की शक्ति में अप्रत्याशित वृद्धि कर दी। संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन की सदस्यता के प्रश्न पर अमेरिका एवं सोवियत संघ के मध्य लगातार मत-भेद बना रहा।

शीतयुद्ध के द्वितीय चरण में कोरिया संकट ने अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में दोनों गुटों के मध्य कटुता को अत्यधिक बढ़ा दिया। उत्तर कोरिया और दक्षिणी कोरिया का सशस्त्र संघर्ष वस्तुत पूँजीवादी गुट और साम्यवादी गुट का संघर्ष था। उत्तरी कोरिया चीन एवं सोवियत संघ की सहायता से एवं दक्षिण कोरिया अमेरिका के सहयोग से लड़ रहे थे। इसी अवधि में अमेरिका द्वारा जापान के साथ शांति संधि ने भी सोवियत संघ को आक्रामक नीति अपनाने हेतु प्रेरित किया।

7.3.3 तृतीय चरण (1953-1958)

इस अवधि में सोवियत संघ तथा अमेरिका के नेतृत्व में परिवर्तन आया। सोवियत संघ में स्टालिन के स्थान पर खुश्चेव तथा अमेरिका में ट्रूमैन के स्थान पर आईजनहॉवर सत्ता में आये। नेतृत्व परिवर्तन की इस घटना से प्रारम्भ में शीत युद्ध की उष्णता में कमी आने का अनुमान लगाया गया किन्तु यह स्थायी साबित नहीं हुआ। सोवियत संघ द्वारा 1953 में आणविक परीक्षण ने इस क्षेत्र में एकतरफा अमेरिका वर्चस्व को धराशायी कर दिया। 8 सितम्बर 1954 को दक्षिणी-पूर्वी एशिया में साम्यवाद के प्रसार को अवरूद्ध करने के लिए सीटो नामक सैनिक गठबन्धन का सूत्रपात हुआ। नाटो एवं सीटो जैसे सैनिक गठबन्धनों को देखते हुए सोवियत संघ द्वारा भी अपने समर्थक आठ सदस्य देशों के साथ 14 मई 1955 को वारसा पैक्ट नामक सैनिक गठबन्धन का निर्माण किया गया। वारसा पैक्ट ने भी सन्धि शर्तों में स्पष्ट उल्लेख किया कि इस संगठन के किसी भी देश पर हमला होने की स्थिति में संगठन के अन्य देश उसकी सहायता करेंगे।

स्वेज नहर के राष्ट्रीयकरण के कारण मिस्त्र पर फ्रांस, ब्रिटेन एवं इजराइल के हमले की सोवियत संघ ने तीव्र निन्दा की। इस अवधि में मध्यपूर्व के तेल संसाधनों पर प्रभुत्व के लिए भी सोवियत संघ एवं अमेरिका में तीव्र प्रतिस्पर्धा होती रही। किन्तु इस अवधि में जिस घटना ने शीत युद्ध की कटुता को अत्यधिक बढ़ा दिया वह था आइजन हॉवर सिद्धान्त। जून 1957 में इस सिद्धान्त की घोषणा की गयी। यह साम्यवाद के प्रति अमेरीकी उग्र विदेश नीति का प्रतीक बन गया। इस नीति के तहत सीनेट ने अमेरिकी राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया कि वह मध्यपूर्व के किसी भी दोष में साम्यवादी आक्रमण रोकने के लिए सेना भेजा जा सकता है।

7.3.4 चतुर्थ चरण (1959-1962)

सितम्बर 1959 में खुश्चेव की अमेरिका यात्रा और खुश्चेव द्वारा आइजनहॉवर को सोवियत संघ आने का निमन्त्रण दिये जाने से शीत युद्ध के बादल छटते से प्रतीत हुए। यह खुश्चेव द्वारा शान्तिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति को स्वीकारने का भी परिणाम था। दोनों शासनाध्यक्षों के बीच यह भी सहमति हुई कि 1960 में पेरिस में शीत युद्ध के तनाव को कम करने के लिए एक शिखर सम्मेलन का आयोजन किया जाना चाहिए। किन्तु इस आयोजन के पूर्व ही अमेरिका का एक विमान यू-2 सोवियत संघ का जासूरी करता हुआ पकड़ा गया। सोवियत नेताओं द्वारा की गई आपत्ति के प्रतिकार में राष्ट्रपति आइजनहॉवर ने जो बयान दिया वह शीत युद्ध की गर्मी को और भी बढ़ा दिया। उन्होंने कहा कि 'सोवियत संघ में सामरिक गतिविधियाँ बहुत ही गुप्त तरीके से होती है अतः किसी भी आकस्मिक आक्रमण को रोकने के लिए ऐसी जासूसी कार्यवाही उचित है और अमेरिका आगे भी ऐसा करता रहेगा।'

ऐसी स्थिति में पेरिस शांति सम्मेलन का असफल होना लाजिमी था और ऐसा ही हुआ। इस अवधि की और सम्पूर्ण शीत युद्ध के युग की सर्वाधिक त्राशद स्थिति 1962 में उत्पन्न हुई। 1958 में क्यूबा में फिदेल कास्त्रो के नेतृत्व में स्थापित होने वाली साम्यवादी सरकार को सोवियत संघ ने भारी मात्रा में सैनिक एवं आर्थिक सहायता प्रदान की। साथ ही क्यूबा में बड़े पैमाने पर सैनिक अड्डों के निर्माण एवं प्रक्षेपास्त्र तैनाती का मुहिम भी सोवियत संघ ने चलाया। इससे अमेरिकी सुरक्षा को खतरा उत्पन्न हो गया। फलतः अमेरिकी राष्ट्रपति कैनेडी ने क्यूबा के नाकेबन्दी की घोषणा की ताकि सोवियत संघ की सैनिक सहायता क्यूबा तक न पहुँच सके। यह सोवियत संघ के लिए स्पष्ट चुनौती थी और दुनियाँ तृतीय विश्वयुद्ध के मुहाने पर खड़ी थी। किन्तु सोवियत प्रधानमंत्री खुश्चेव समझादारी दिखाते हुए क्यूबा से सैनिक अड्डे उठा लेने का पहल किया। अमेरिकी राष्ट्रपति कैनेडी ने इस निर्णय को एक महान राजनेता का निर्णय बताया।

7.3.5 पंचम चरण (1963-1979)

शीतयुद्ध के इस चरण में क्यूबा संकट से उत्पन्न भयावहता को दोनों पक्ष स्वीकार करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इस अवधि में अनेक ऐसी घटनायें घटी जिनसे शीत युद्ध में शीतलता आने लगी। ऐसी घटनाओं में हाट लाइन समझौता, परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि, परमाणु अप्रसार सन्धि, बर्लिन समझौता, मास्को-बोन समझौता इत्यादि महत्वपूर्ण है। दोनों महाशक्तियों के सहयोग के इस दौर में दो ऐसी महत्वपूर्ण घटनाये भी हुई जिनसे दोनों महाशक्तियों में तनाव बढ़े। इनमें प्रथम है 1971 में भारत पाक युद्ध। इस युद्ध में भारत के साथ मित्रता सन्धि के कारण सोवियत संघ भारत सरकार का पक्षधर था और अमेरिका ने हिन्द महासागर में उपस्थित अपने नौ सैनिक बेड़े से पाकिस्तान को मदद करने की कोशिश की। शीत युद्ध के तनाव को इस

काल में जिस दूसरी महत्वपूर्ण घटना ने उग्रता प्रदान की वह था अफगानिस्तान में 1979 में सोवियत संघ द्वारा किया गया हस्तक्षेप। सोवियत प्रभाव को एवं उसके बढ़ते हुए दबाव को देखते हुए ही अमेरिकी सीनेट से 'स्टार वार' नामक महात्वाकाक्षी परियोजना की स्वीकृति मांगी थी। इस प्रकरण की नवशीत युद्ध के रूप में देखा जाता है।

7.3.6 शष्ठ चरण (1980-1990)

इस अवधि में अमेरिका ने नाटो के आधुनिकीकरण पर जोर दिया। 1983 में कोरिया के विमान को सोवियत संघ द्वारा मार गिराये जाने पर अमेरिकी कटु प्रतिक्रिया ने शीत युद्ध को पुनः गर्म कर दिया। 1987 में पहले सोवियत संघ और बाद में अमेरिका ने परमाणु परीक्षण करके अपने शक्ति को प्रदर्शित किया। किन्तु, इसी अवधि में सोवियत संघ की गिरती हुई अर्थव्यवस्था भी दुनियाँ के निगाह से छिपी नहीं रह सकी।

गोर्वाच्योव के द्वारा सोवियत संघ में राष्ट्रपति पद ग्रहण करने एवं उनके द्वारा आरम्भ किये गये 'ग्लास्तनोस्त' एवं 'पेरेस्त्रोइका' ने अन्ततः सोवियत संघ में एक नई लहर उत्पन्न किया। इस लहर ने स्वतन्त्रता एवं उदारवादी विचारों को सोवियत संघ में पनपने का मौका दिया। जिसकी अन्तिम परिणति सोवियत संघ के अवसान एवं सोवियत संघ के विखण्डन के साथ-साथ साम्यवादी जगत के विखंडन में हुई। सोवियत संघ के विघटन के साथ-साथ अन्तर्राष्ट्रीय मंच से शीत युद्ध का भी पटापेक्ष हो गया। आज सोवियत संघ का उत्तराधिकारी रूस उस जी-7 का सदस्य है जो पूँजीवादी विकसित राष्ट्रों का संगठन है। रूस के जी-7 में प्रवेश ने अब जी-7 को जी-8 के रूप में बदल दिया है।

7.4 शीत युद्ध के साधन

शीत युद्ध वर्चस्व की स्थापना के लिए होने वाला एक प्रचार युद्ध एवं शक्ति प्रदर्शन और शक्ति अर्जन का युद्ध था। इसमें दोनों गुट शक्ति प्रदर्शन और शक्ति अर्जन में लगे थे। इसमें दोनों पक्ष प्रत्यक्ष सशस्त्र संघर्ष से बचने की कोशिश करते रहे। क्योंकि दोनों ही पक्षों को युद्ध के परिणाम स्वरूप 'अतिमारकता के युग' में सम्पूर्ण मानवता के विनाश का भय भी था। यह युद्ध दुष्प्रचार के प्रत्येक साधनों से लड़ा गया। वायस ऑफ अमेरिका और रेडियो मास्को शीत युद्ध के काल में दुष्प्रचार के ही साधन बने हुए थे।

शीत युद्ध के साधन के रूप में शस्त्र प्रतिस्पर्धा एवं सैनिक गुटों के निर्माण की भी विशेष भूमिका है। नाटो, सीटो, सेन्टों, बगदाद पैक्ट, वारसा पैक्ट आदि एक दूसरे के विरूद्ध गठित सैनिक संगठन ही रहे हैं। शीत युद्ध के काल में परमाणु बम, विभिन्न प्रकार के बमवर्षक विमान, अन्तरमहाद्विपीय प्रक्षेपास्त्र, अत्याधुनिक तकनीकों से सुसज्जित पनडुब्बी, सैनिक जलपोतों का निर्माण दोनों ही पक्षों द्वारा व्यापक पैमाने पर किया गया।

शीत युद्ध के साधन के रूप में आर्थिक एवं सैनिक सहायता कार्यक्रमों की भी मुख्य भूमिका है। इस साधन के माध्यम से दोनों गुटों ने विभिन्न राष्ट्रों को या तो अपनी गुट में सम्मिलित करने का प्रयास किया या उन्हें तटस्थ बनाये रखा। इस प्रकार के सहायता कार्यक्रमों के माध्यम से भी दोनों ही गुटों ने अपनी क्षमता एवं प्रभाव को प्रदर्शित करने का प्रयास किया।

एक वैचारिक युद्ध होने के कारण शीत युद्ध का महत्वपूर्ण साधन कूटनीति भी रही है। शीत युद्ध में कूटनीतिक चालों के माध्यम से ही दोनों गुट एक दूसरे के प्रयास या पहल को

कमजोर करने में संलग्न रहते थे। संयुक्त राष्ट्र संघ में एक दूसरे के प्रस्तावों को वीटो करना, राजनयिक संबंध विच्छेद कर लेना या राजनयिक मान्यता प्रदान न करना ऐसे ही कूटनीतिक चालों का संकेत करती है।

7.5 शीत युद्ध का परिणाम

शीत युद्ध के परिणाम स्वरूप द्विध्रुवीय विश्वव्यवस्था का निर्माण हुआ। यह विश्व का पूर्व एवं पश्चिम में विभाजन था। इस विभाजन में पश्चिम पूँजीवादी पद्धति का और पूर्व साम्यवादी पद्धति का प्रतीक था। विश्व व्यवस्था के इस विभाजन ने शक्ति राजनीति के दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया।

शस्त्र प्रतिस्पर्धा पर होने वाले व्यय की अधिकता के कारण सम्पूर्ण शीत युद्ध के काल में मानवीय एवं विकास कार्यक्रमों की घोर उपेक्षा हुई। अर्थव्यवस्था के बड़े आकार एवं बाजार जनित प्रतिस्पर्धा के कारण अमेरिका तो इस दुष्प्रभाव से उतना प्रभावित नहीं हुआ। किन्तु, जनकल्याणकारी कार्यक्रमों की उपेक्षा एवं बन्द अर्थव्यवस्था ने सोवियत संघ के भीतर गहरे असन्तोष को जन्म दिया। इस असन्तोष ने आगे सोवियत संघ के साम्यवादी प्रणाली को ध्वस्त करने में अहम भूमिका भी निभाई।

शीत युद्ध के परिणाम स्वरूप सैन्य क्षेत्र में अनेक अनुसन्धान हुए। यद्यपि इन अनुसन्धानों का उद्देश्य नये संहारक हथियारों का निर्माण या पूर्व निर्मित हथियारों की मारकता में वृद्धि करना ही होता था किन्तु कालान्तर में इन तकनीकों का उपयोग सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए भी हुआ।

आतंक, भय एवं अविश्वास के वातावरण को भी शीत युद्ध ने बढ़ावा दिया। शीत युद्ध में दोनों ही गुटों को सदैव एक दूसरे के आक्रमण का भय बना रहता था। के0जी0बी0 (सोवियत गुप्तचर संस्था) एवं सी0आई0ए0 (अमेरिका गुप्तचर संस्था) निरन्तर एक दूसरे के गुप्त कार्यक्रमों एवं सैनिक प्रतिष्ठानों तथा निर्णयों की जानकारी प्राप्त करने के लिए जासूसी में संलग्न रहते थे। शीत युद्ध के काल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अविश्वास एवं धोखेबाजी की भरमार हो गई थी।

शीत युद्ध के परिणाम स्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ की भी घोर उपेक्षा हुई। इस उपेक्षा का कारण दोनों ही गुटों की परस्पर असहमति थी। असहमति के कारण अमेरिका एवं सोवियत संघ द्वारा एक दूसरे के प्रस्ताव को वीटो कर दिया जाता था। फलतः संयुक्त राष्ट्र की एवं विशेषकर सुरक्षा परिषद की कार्यवाही नहीं हो पाती थी। शीत युद्ध के काल में दोनों ही गटों द्वारा अनेक अवसर पर वीटो की अधिकार का प्रयोग किया गया।

शीत युद्ध ने आनुशंगिक रूप से गुट निरपेक्षता को जन्म देने में भी मुख्य भूमिका निभाई। नव स्वतंत्र राष्ट्रों को जिन्हें गुटीय राजनीति से अलग रहकर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा एवं विकास हेतु प्रयत्न करना था, उन राष्ट्रों ने गुटनिरपेक्ष नीति को अपनाया। इस तरह शीत युद्ध ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के उदय में भी अप्रत्यक्ष रूप से योगदान दिया।

7.6 प्रमुख शब्दावली

नवशीत युद्ध- अफगानिस्तान में सोवियत संघ के हस्तक्षेप से शिथिल होते हुए शीत युद्ध में पुनः उग्रता आ गयी। इसे नव शीत युद्ध का नाम दिया गया।

अति मारकता का युग- शीत युद्ध में शस्त्र प्रतिस्पर्धा के कारण शस्त्रों के जखीरे में ऐसी वृद्धि जिससे सम्पूर्ण मानवता को कई बार नष्ट किया जा सकता है।

आतंक का सन्तुलन- शीत युद्ध के काल में दोनों ही गुटों के द्वारा एक दूसरे को भयभीत करने के लिए निरन्तर अपनी सैन्य एवं आक्रमक क्षमता को इस तरह समायोजित करना ताकि अपना पलड़ा झुकने ना पाये।

स्टार वार- नवशीत युद्ध के बाद अमेरीका द्वारा मिसाइल निर्माण एवं उनकी तैनाती की ऐसी योजना जिसमें सोवियत संघ पर चारों ओर से हमला किया जा सके। साथ ही अमेरिका पर होने वाले मिसाइल हमले को उस तक पहुँचने से पूर्व ही नष्ट किया जा सके।

7.7 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

1. रोजनाउ जे एन (1961) इन्टरनेशन पॉलिटिक्स एण्ड फॉरेन पॉलिसी : ए रीडर इन रिसर्च एण्ड थ्योरी, फ्री प्रेस, न्यूयार्क।
2. चटर्जी, अनीक (2010) इन्टरनेशनल रिलेशन्स टूडे, पियर्सन, नई दिल्ली।
3. गोल्डस्टीन, जे.एस. (2003) इन्टरनेशनल रिलेशन्स, पियर्सन, नई दिल्ली।

7.8 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शीत युद्ध को परिभाषित कीजिए?
2. शीत युद्ध के प्रमुख कारणों का उल्लेख करें?
3. शीत युद्ध के किन्हीं तीन परिणामों को रेखांकित करें?

7.9 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शीत युद्ध निम्नलिखित में से क्या सम्मिलित नहीं है?
   क- प्रत्यक्ष युद्ध ख- प्रचार युद्ध
   ग- आर्थिक नाकेबन्दी घ- शस्त्र प्रतिस्पर्धा
2. नव शीत युद्ध को जन्म देने वाली प्रमुख घटना कौन सी है?
   क- क्यूबा संकट ख- अफगान संकट
   ग- फुलटन भाषण घ- कोरिया संकट
3. शीत युद्ध की किस घटना को सर्वाधिक तनावपूर्ण माना जाता है।
   क- मार्शल योजना ख- ट्रूमेन योजना
   ग- क्यूबा संकट घ- स्टारवार योजना
4. शीत युद्ध में निम्नलिखित में से किस प्रचार संख्या का योगदान नहीं रहा है?
   क- वायस ऑफ अमेरिका ख- रेडियो मास्को
   ग- रेडियो डोविविली घ- आकाश वाणी

   उत्तर : 1- क, 2-ख, 3-ग, 4-घ।

इकाई-8

बोल्शेविक क्रान्ति

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 बोल्शेविक क्रान्ति के कारण

8.2.1 रूस की आर्थिक स्थिति और मार्क्सवाद का प्रभाव

8.2.2 1905 की क्रान्ति का प्रभाव

8.2.3 बौद्धिक विचारों का प्रभाव

8.2.4 जारशाही के विरूद्ध आक्रोश

8.2.5 प्रथम विश्व युद्ध जनित स्थिति

8.2.6 रासपुतिन की अराजकता

8.2.7 लेनिन का नेतृत्व

8.3 बोल्शेविक क्रान्ति का प्रभाव

8.4 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

8.5 महत्वपूर्ण शब्दावली

8.6 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

8.7 अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

8.0 उद्देश्य

इस इकाई में बोल्शेविक क्रान्ति का परिचय दिया गया है। इकाई में बोल्शेविक क्रान्ति के कारण एवं इसके परिणाम की चर्चा की गई है। इस इकाई का

8.1 प्रस्तावना

- विद्यार्थियों को बोल्शेविक क्रान्ति के महत्व को समझाना है।
- क्रान्ति के कारण से विद्यार्थियों को परिचित कराना है।
- क्रान्ति के परिणाम से विद्यार्थियों को अवगत कराना है।

8.1 प्रस्तावना

दुनिया के सर्वकालिक महान क्रान्तियां में बोल्शेविक क्रान्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। यह क्रान्ति रूस में 1917 में सम्पन्न हुई। बोल्शेविक क्रान्ति को मार्क्सवादी क्रान्ति के नाम से भी जाना जाता है यह क्रान्ति दुनियाँ की पहली सर्वहारा क्रान्ति थी।

इस क्रान्ति ने कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों को साकार करने की दिशा में एक व्यापक और सशक्त पहल की। लेकिन के नेत्व में सम्पन्न यह क्रान्ति विश्व के मेहनतकश लोगों को आशा का एक पैगाम दिया। साथ ही इस क्रान्ति ने मेहनतकश लोगों को पूँजीवादी शोषण से मुक्ति हेतु एक मार्ग भी सुझाया। इस क्रान्ति ने विचार धारा की प्रेरणा से जहाँ रूसियों में सारे भेद-भाव भुलाकर एकता की बुनियाद रखी जिसके बल पर वे पश्चिम के पूँजीवाद द्वारा तीन सौ वर्षो में की गई प्रगति को महज तीस चालीस साल में अर्जित कर लिया, वहीं इस क्रान्ति ने पूँजीवादी खेमें को हिलाकर भी रख दिया। यह क्रान्ति मात्र जारशाही के धाराशायी होने का ही सबब नहीं था बल्कि यह एक वैकल्पिक दृष्टि वैकल्पिक विश्व व्यवस्था, वैकल्पिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रणामी का भी पर्याय था।

8.2 बोल्शेविक कान्ति के कारण

बोल्शेविकक्रान्ति के मूल में रूस की जर्जर अर्थव्यवस्था भ्रष्टनौकरशाही, स्वेच्छाचारी शासन, जापान से पराजित होने का आक्रोश, मार्क्सवादी विचाधारा का प्रभाव, प्रथम विश्वयुद्ध की त्रासदी, पश्चिमी विकसित राष्ट्रों के विकास से ली गयी प्रेरणा-रूस का अति विशाल आकार इत्यादि अनेक कारण है। यह क्रान्ति रूस की अनेक पूर्ववर्ती क्रान्तियों से ली गयी प्रेरणा का भी परिणाम है। आज जिसे बोल्शेविक क्रान्ति के नाम से जाना जाता है वह मार्च 1917 में प्रेट्रोगाड से भड़की क्रान्ति ने तीन शताब्दियों से चली आ रही रोमनो0/राजवंश के निरंकुश शासन की समाप्ति की। उदारवादी नेता जार्जल्बाव के नेतृत्व में एक उत्तरदायी अस्थायी सरकार की स्थापना के साथ जारशाही का अंत हुआ। यह अस्थायी सरकार बुजुर्वा नीति पर चलने वाली सरकार थी। रूस की अराजक परिस्थितियों और प्रथम विश्वयुद्ध के विध्वंसक परिणाम ने इस सरकार के प्रति भी असंतोष को भड़का दिया। मत्रिमंडल में बदलाव करके न्यायमंत्री करेन्सकी को युद्ध मंत्री बनाया गया ताकि वह युद्ध का सफल संचालन करके रूसी जनता के भय और आक्रोश को कम कर सके। किन्तु एक समाजवादी होने पर भी वह युद्ध के अन्त या शान्ति स्थापना के सन्दर्भ में प्रगति नहीं कर पाया। फलतः बोल्शेविको के नेतृव मार्च क्रान्ति के ठीक नौ महीने बाद रूस में दूसरी क्रान्ति हुई। की करेन्सकी सत्ता छोड़कर भाग गया और सत्ता लेनिन के हाथ में आ गयी। जहाँ मार्च की क्रान्ति में हिंसक झड़पे हुई थी वहीं नवम्बर की क्रान्ति में कोई रक्तपात नहीं हुआ ऐसा भी कहा जाता है कि 1917 में रूस की क्रान्ति दो कान्तियों नहीं थी बल्कि एक ही क्रान्ति दो चरणों में सम्पन्न हुई। बोल्शेविक क्रान्ति के प्रमुख कारणों का विवरण निम्नवत प्रस्तुत है।

8.2.1 रूस की आर्थिक स्थिति और मार्क्सवाद का प्रभाव

रूस के विशाल भू-भाग में कृषि योग्य जमीन का अंश लगभग बीस प्रतिशत ही था जो प्रायः यूरोपीय रूस के मध्य एवं दक्षिणी हिस्से में है। रूस का उत्तरी क्षेत्र में शीत कटिबंध में आता है और दक्षिणी भाग में टैंगा के सदाहार वन है। रूस की कृषि योग्य भूमि पर भी सामंतों

का अधिकार था जिन्हें भोग विलाश में अत्यधिक रूची थी। उपज का बड़ा भाग भूस्वामियों और राज्यअधिकारियों के पास चला जाता था। किसान और खेतिहर मजदूर बहुत कगाली की हालत में जी रहे थे। औद्योगिक क्षेत्र में भी रूस ने प्रगति नही की थी। कुटीर उद्योगों में या तो स्थानीय या राजधानी हेतु आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन हो पाता था। रूस का आयात उसके निर्यात की अपेक्षा बहुत अधिक था। फलतः रूस पश्चिमी यूरोप पर बहुत हर तक निर्भर था। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में रूस में औद्योगिकरण की शुरूआत अवश्य हुई किन्तु इस समय मजदूरों के अत्यन्त कम वेतन एवं उनके हितों की उपेक्षा एवं दमन के परिणाम स्वरूप उपेक्षित औद्योगिक विकास नहीं हो रहा था बल्कि मजदूरों में असंतोश तीव्र गति से बढ़ रहा था।

यद्यपि रूस में औद्योगिकरण के अभाव में मजदूरों की संख्या अन्य वर्गो की अपेक्षा कम थी। किन्तु शोषित किसानों को मिलाकर वे उस बड़ी जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते थे जिन्हें कार्ल मार्क्स ने क्रान्ति का संवाहक माना था। रूस में मार्क्स के विचारों को फैलाने का कार्य 1983 के आस पास ही प्लेखनाव ने किया। यद्यपि निरंकुश जारशाही में यह एक असम्भव कार्य था। प्लेखनाव को रूस छोड़कर भागना पड़ा और वह स्विटजरलैण्ड में रहते हुए रूस में मार्क्स विचारों को फैलाता रहा इसके लिए उसने मार्क्स की रचनाओं का रूसी भाषा में अनुवाद किया। प्लेखनाव के प्रयत्नों से रूस में मार्क्स विचार लोकप्रिय होने लगा और लोगों ने साम्यवादी विचारों के प्रचार-प्रसार हेतु गुप्त संगठनों का भी निर्माण किया। और वे सर्वहारा क्रान्ति का स्वप्न देखने लगे।

बोल्शेविक क्रान्ति पर 1905 की क्रान्ति का व्यापक प्रभाव है। 1905 की क्रान्ति मजदूरों किसानों एवं बुद्धिजिवियों तथा विभिन्न राष्ट्रीयताओं की सम्मिलित समस्या से उभरी थी। इस क्रान्ति ने रूस में बहुदलीय प्रणाली एवं संवैधानिक राजतन्त्र की प्राप्ति की दिशा में महत्वपूर्ण पहल किया था। इस क्रान्ति ने रूसी संस्कृति को सम्पूर्ण साम्राज्य पर आरोपित करने के दृष्पिरिणामों एवं किसानों तथा मजदूरों के हितों की उपेक्षा से उत्पन्न दुर्दशा को उजागर कर दिया था। 1917 की क्रान्ति के लिए आवश्यक पृष्ठ भूमि के निर्माण में 1905 की क्रान्ति महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि 1905 की क्रान्ति ने रूसी जनता को अपनी संगठित शक्ति का आभाष दे दिया था और वह शासन के दम की सीमा को भी समझने लगी थी। 1905 की क्रान्ति की ही तरह 1917 की क्रान्ति में भी प्रारम्भिक चरण में उत्तरदवादी तत्वों का ही बाहुल्य था। इसी तरह 1905 की ही तरह 1917 की क्रान्ति में विभिन्न हितों एवं स्वार्थों के लोगों ने संगठित नेतृत्व के साथ-साथ असंगठित किन्तु स्वतः स्फूर्त प्रेरणा से भाग लिया।

8.2.2 1905 की क्रान्ति का प्रभाव

बोल्शेविक क्रान्ति पर 1905 की क्रान्ति का व्यापक प्रभाव है। 1905 की क्रान्ति मजूदरों किसानों एवं बुद्धिजीवियों तथा विभिन्न राष्ट्रीयताओं की सम्मिलित समस्या से उभरी थी। इस क्रान्ति ने रूस में बहुदलीय प्रणाली एवं संवैधानिक राजतन्त्र की प्राप्ति की दिशा में महत्वपूर्ण पहल किया था। इस क्रान्ति ने रूसी संस्कृति को सम्पूर्ण साम्राज्य पर आरोपित करने के दृष्पिरिणामों एवं किसानों तथा मजदूरों के हितों की उपेक्षा से उत्पन्न दुर्दशा को उजागर कर दिया था। 1917 की क्रान्ति के लिए आवश्यक पृष्ठ भूमि के निर्माण में 1905 की क्रान्ति महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि 1905 की क्रान्ति ने रूसी जनता को अपनी संगठित शक्ति का आभाष दे दिया था और वह शासन के दम की सीमा को भी समझने लगी थी। 1905 की क्रान्ति की ही तरह 1917 की क्रान्ति में भी प्रारम्भिक चरण में उत्तरवादी तत्वों का ही बाहुल्य था। इसी तरह

1905 की ही तरह 1917 की क्रान्ति में विभिन्न हितों एवं स्वार्थों के लोगों ने संगठित नेतृत्व के साथ-साथ असंगठित किन्तु स्वतः स्फूर्त प्रेरणा से भाग लिया।

8.2.3 बौद्धिक विचारों का प्रभाव

1917 की क्रान्ति में बौद्धिक जगत के हल चल का भी महत्वपूर्ण प्रभाव है। यह प्रभाव गंभीर एवं सशक्त रूप से लेनिन के प्रयत्नों से उत्पन्न हुआ। किन्तु टाल्सटाय, तुर्गनेव, दोस्तोइविस्की जैसे अनेक ऐसे नाम है जिसने रूसी जनता को स्वतन्त्रता, समानता और न्याय की पश्चिमी धारणाओं और उसके वैकल्पिक सिद्धान्त मार्क्सवाद से परिचित कराया। रूसी लोगो में क्रान्ति की लम्बी परम्परा रही है। इन नवीन विचारों ने क्रान्ति की सम्भावनाओं एवं क्रान्ति के मार्ग को नई दिशा प्रदान की। मार्क्सवादी विचारों की रोशनी में और 1905 के अनुभव से रूसी जनता अब यह समझ सकती थी कि प्रति क्रियावादी शासन की पुनर्स्थापना क्रान्ति के बाद भी हो सकती है जैसा कि 1905 में क्रान्ति के बाद जार निकोलस ने किया था। इसी कारण 1917 की क्रान्ति में प्रतिवादी शक्तियों के विनाश का एक लम्बा क्रम जारी रहा।

8.2.4 जारशाही के विरूद्ध आक्रोश

जारवंश के अनुत्तरदायी शासन से रूसी जनता में असंतोश बहुत बढ़ गया था। यह असंतोश एक लम्बे अंतराल से बढ़ता चला आ रहा था। 1858 और 1860 के बीच में जारशाही के विरूद्ध किसानों ने दो सौ से अधिक विद्रोह किया और 1860 के दशक के बाद इस तरह के विद्रोहों की संख्या दो हजार से भी अधिक रही है। जारशाही के अतर्गत चलने वाले बंधुवा मजदूरी प्रथा, कृषि एवं औद्योगिक मजदूरों का शोषण, आर्थिक स्थिति से निरन्तर रूस का विपन्न होते जाना जारशाही के विरूद्ध आक्रोश के प्रमुख कारण माने जाते हैं। इस समय राजधानी के इर्द-गिर्द ही विकास की गति दिखाई पड़ती थी। जबकि पूरा रूसी साम्राज्य मध्ययुगीन सामन्तवादी पद्धति से ही शासित था। 1917 की क्रान्ति में इस प्रकार के अनुत्तरदारी एवं निरंकुश शासन को उखाड़ फेंकने की योजना मुख्य रूस से कार्य कर रही थी।

जारशाही को 1905 में जापान से पराजय का दंश झेलना पड़ा। इस पराजय ने रूसियों के उस भ्रम को भी तोड़ दिया कि वे एक महान साम्राज्य के नागरिक है। इस भ्रम के टूटने से रूसियों के द्वारा क्रान्ति में भाग लेना आसान हो गया।

8.2.5 प्रथम विश्व युद्ध जनित स्थिति

प्रथम विश्वयुद्ध में रूस के उलझ जाने के बाद रूस की स्थिति लगातार बिगड़ती चली गयी। एक ओर तो इस युद्ध ने रूस की पहले से ही जर्जर अर्थव्यवस्था पर भारी आर्थिक बोझ बढ़ा दिया दूसरे इसने रूसी साम्राज्य के आतरिक नियत्रण पर सैन्य प्रभाव को भी कम कर दिया। प्रारम्भ में तो रूसी सेना ने इस युद्ध में बड़ी कुशलता से भाग लिया किन्तु उनके सामन कोई बड़ा लक्ष्य नहीं था। मित्र राष्ट्रों ने जिस स्वशासन के सिद्धान्त को अपना लक्ष्य बनाया था वह भी जारशाही के अतर्गत रूस में सम्भव नहीं था। फलत युद्ध के उत्तरार्द्ध में रूसी सेना में शिथिलता आने लगी। रूसी सेना के पास पर्याप्त रसद एवं अस्त्र शस्त्रों की कमी होने लगी थी। फलतः सेना में भी आक्रोश बढ़ने लगा था। 1917 के आते आते रूसी सेना के पराजय की खबरें भी आने लगी थी। इस स्थिति में जहाँ सेना राजद्रोह पर उतारू हो रही थी वहीं आम जनता युद्ध को बंद करने एवं अपने शोषण को समाप्त करने हेतु दबाव बढ़ाने लगी थी। आम जनता को यह

विश्वास होने लगा था कि इस समय यदि क्रान्ति की गई तो सेना भी उसका साथ दे सकती है और ऐसा हुआ भी।

8.2.6 सस पुतिन की अराजकता

एक तो पीटर महान के बाद रूस निरन्तर अराजकता के दौर से गुजर रहा था, दूसरे जार शासन में नौकरशाही अत्यन्त भ्रष्ट हो चुकी थी। ऐसा में राजपरिवार पर एक रहस्यवादी भिक्षुक ग्रेगोरी सस पुतिन का प्रभाव अत्यन्त बढ गया। यह भिक्षुक चमत्कारी शक्तियों का प्रदर्शन करके लोगों को अभिभूत कर लेता था। जारीना इस व्यक्ति के प्रभाव में आ चुकी थी। ससपुतिन का प्रभाव इतना बढ़ गया था कि वह नियुक्ति पदोन्नति और प्रशासन के अन्य कार्यों में हस्तक्षेप करने लगा था। इस व्यक्ति द्वारा शासन में हस्तक्षेप के कारण भी लोगों में असंतोष बढ़ता जा रहा था। ससपुतिन के हंस्तक्षेप ने रूसी शासन के मध्युगीन पतनोमुख अराजकता में अंधविश्वास का समावेश करके उसे और भी मरणासन्न बना दिया।

8.2.7 लेनिन का नेतृत्व

रूस में क्रान्ति हेतु दो तरह की शक्तियाँ कार्य कर रही थी। एक दल जो गेन्सेनिक के नाम से सक्रिय था। रूस में भी फ्रांसीसी क्रान्ति की तरह एक उदारवादी शासन की स्थापना हेतु क्रान्ति की पहल कर रहा था। दूसरा दल बोल्शेनिक था जो रूस में मार्क्सवादी पद्धति पर क्रान्ति का पहल कर रहा था। यदि मार्च क्रान्ति में मेन्सेविकों का पक्ष मजबूत की क्रान्ति में बोल्शेविकों एवं लेनिन का योगदान महत्वपूर्ण था। लेनिन एक कुशल संगठन कर्त्ता, प्रखर वक्ता और विचारक था। उसने मार्क्स के इस विचार को कि सर्वहारा क्रान्ति पूँजीवादी अवस्था में ही होगी रूस की परिस्थितियों के अनुसार बदला। लेनिन ने प्रतिपादित किया कि साम्राज्यवाद पूँजीवाद की उच्चतम अवस्था और और वह इस अवस्था में पहुँच चुका है फलतः क्रान्ति हेतु उपयुक्त अवसर उपलब्ध है। उसने औद्योगिक रूप से पिछड़े रूस मे प्रथम विश्वयुद्ध द्वारा उत्पन्न की गई परिस्थितियों में क्रान्ति के बीज खोज निकाले। यद्यपि उसे कई बार रूस छोड़कर भागना पड़ा किन्तु नवम्बर क्रान्ति के समय रूस में उसने क्रान्ति की स्थितियों की निर्देशित किया और क्रान्तिकारियों को प्ररेणा प्रदान करके वोल्शेविक क्रान्ति का सफल नायक बना।

8.3 बोल्शेविक क्रान्ति का प्रभाव

बोल्शेविक क्रान्ति का रूस में ही नहीं अपितु विश्वभर में अमिट प्रभाव है। इस क्रान्ति ने सर्वहारा राज्य की स्थापना में पहला कदम बढाया और कालान्तर में इसकी प्रेरणा से दुनियाँ की दो तिहाई आबादी से भी अधिक जनता सर्वहारा क्रान्ति के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार कर ली। इस क्रान्ति ने उजागर किया बल्कि उसके विकल्प के रूप में समाजवादी शासन व्यवस्था और आर्थिक स्वतंत्रता को साकार रूप प्रदान किया। बोल्शेविक क्रान्ति ने जाति, धर्म, सम्प्रदाय भाषा आदि के विभाजन को मिटाकर सभी शोषितों को एक प्रगतिशील विचारधारा और एक झंडे के नीचे एकत्रित किया। बोल्शेविक क्रान्ति ने रूप में जारशाही और उसके शोषण का अन्त ही नहीं किया बल्कि लेनिन के नेतृत्व में रूस में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पुननिर्माण को जन्म भी दिया। इस क्रान्ति के बाद पश्चिमी ताकतों ने प्रतिक्रियावादी शक्तियों को उभारने का कार्य किया। किन्तु त्रात्सकी एवं लेनिन के कुशल पेतृत्व में लाल सेना ने गृहयुद्ध पर विजय प्राप्त कर लिया। बोल्शेनिक क्रान्ति के परिणाम

स्वरूप सोवियतों के गणतंत्र का उदय हुआ जो साम्यवादी दल के अधिपत्य में तीव्र आर्थिक, सैनिक एवं सामाजिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हुआ। फलतः दो दशको के भीतर ही सोवियत संघ की गणना विश्व की महाशक्ति के रूप में होने लगी।

बोल्शेविक क्रान्ति के परिणामस्वरूप रूस में सहकारी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, मजदूरों का उद्योगों पर नियंत्रण स्थापित हुआ। साथ ही कृषि एवं उद्योग में भारी निवेश को बढ़ावा दिया गया और वैज्ञानिक प्रणालियों के प्रयोग से कृषि उत्पादन एवं औद्योगिक विकास को बढ़ावा मिला। सोवियत संघ में पंचवर्षीय योजनाओं का प्रयोग आरम्भ हुआ और नियोजित विकास की नीति के अंतर्गत प्रबंधन प्रारम्भ हुआ। इस क्रान्ति के पश्चात् सामन्तों की भूमिका सरकार द्वारा अधिग्रहण कर लिया गया, सम्पतिशाली वर्ग के सम्पति के अधिकार का उम्मूलन किया गया और शासन के हर स्तर पर सैनिकों मजदूरों एवं किसानों के सोवियत को शासन को अधिकार प्रदान कर दिया गया।

बोल्शेविक क्रान्ति के जहाँ दुनियाँ के करोड़ों शोषित एवं त्रस्त लोगों को सह दिखाया और उनमें आशा की लहर पैदा की वही उसने अनेक दुष्परिणामों को भी जन्म दिया। बोल्शेविक क्रान्ति के परिणामस्वरूप दुनियाँ समाजवादी और पूँजीवादी खेमे में बट गयी। कालान्तर में इसने दोनों गुटों में तीव्र वैचारिक संघर्ष एक शस्त्र प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया। इस प्रतिस्पर्धा ने इतनी भयावह रूप धारण कर लिया था कि तृतीय विश्व युद्ध की आशंका सदैव बनी रहती थी। दोनों ही गुटों के द्वारा एक दूसरे के विनाश के लिए मानवीय विकास की अपेक्षा मानव के नाश हेतु अत्यधिक व्यय किया जा रहा था।

सोवियत संघ में बोल्शेविक क्रान्ति ने एक दलीय तानाशाही को जन्म दिया और इससे सोवियत जनता की राजनीतिक आजादी क्षीण हो गयी। साम्यवादी शासन ने आर्थिक आजादी के नाम पर दलीय तानाशाही में सृद्धि की। फलतः बोल्शेविक क्रान्ति को दुनियाँ में साम्यवादी दल के आधिपत्य का श्रीगणेश करने वाला क्रान्ति भी माना जाता है। इस क्रान्ति ने सोवियत संघ में प्रतिस्पर्धात्मक विकास की नीति को समाप्त तो जरूर किया किन्तु प्रतिस्पर्धात्मक विकास की उपेक्षा के कारण राज्यनियंत्रित उद्योग भारी घाटे में आ गये। इसी प्रकार बोल्शेविकवाद के प्रभाव में विभिन्न जातीय समूहो ने अपने सामाजिक पहवान के परम्परागत आधार को भूलाने का प्रयास भी किया। किन्तु बोल्शेविक वाद के प्रभाव के घटने और सोवियत अर्थव्यवस्था के निरन्तर गिरते जाने के बाद जातीय पहचान के स्वर पुनः प्रासंगिक हो गये।

बोल्शेविक क्रान्ति के पक्ष विपक्ष में चर्चा के उपरान्त यह कहना अत्यन्त समीचीन होगा कि इस क्रान्ति ने दुनियाँ में दोधारी तलवार की तरह कार्य किया। एक और यह शीत युद्ध के उद्भव का कारण बना तो दूसरी और यह सोवियत संघ की शक्ति संतुलन में भूमिका के कारण युद्धों को नियंत्रित भी किया। बोल्शेविक प्रभाव में सोवियत संघ महाशक्ति बना और बोल्शेविक प्रभाव में ही वह विघटित भी हो गया।

8.4 महत्वपूर्ण शब्दावली

- सर्वहारा मार्क्स की रचनाओं में सर्वहारा से आशय ऐसे शोषित समुदाय से है जो पूँजीवादी व्यवस्था के विरूद्ध क्रान्ति का बिगुल बजाता है।
- बुर्जुवा मार्क्स की रचनाओं में उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व रखने वाला समुदाय जो सर्वहारा का शोषण करता है।

- बोल्शेविकवाद बोल्शेविक क्रान्ति के मूल्यों यथा समानता, उद्योगों पर श्रमिकों का नियन्त्रण व्यक्तिगत पूँजी के अधिकार का उन्मूलन इत्यादि पर बल देना एवं उससे प्रेरणा प्राप्त करना।

8.5 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

- वर्मा लाल बहादुर (2013) यूरोप का इतिहास प्रकाश संस्थान, नई दिल्ली।
- हॉव्सबाम एरिक (2009) अतिरिको का युग, संवाद प्रकाशन, नई दिल्ली।
- जे. एल. गैडिज (1997) वी नाउ नो रीथिकिंग कोल्ड वार हिस्ट्री ऑक्सफार्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन।

8.6 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. बोल्शेविक क्रान्ति किन कारणों से अभूतपूर्व मानी जाती है?
2. बोल्शेविक क्रान्ति के प्रेरक तत्वों का उल्लेख करें?
3. बोल्शेविक क्रान्ति में लेनिन के योगदान का परीक्षण करें?
4. बोल्शेविक क्रान्ति के परिणाम की व्याख्या करें?

8.7 अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1. विश्व की प्रथम समाजवादी क्रान्ति कौन सी है?

   क- बोल्शेविक क्रान्ति ख- रक्तहीन क्रान्ति

   ग- फ्रांस की राज्य क्रान्ति घ- अमेरिका क्रान्ति

2. निम्नलिखित में से कौन बोल्शेविक क्रान्ति का परिणाम नही है?

   क- एक दलीय आधिपत्य ख- जर्मन का विभाजन

   ग- सामन्ती उत्पादन प्रणाली का अन्त घ- उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीकरण

3. बोल्शेविक क्रान्ति के वैचारिक दर्शन का आधार क्या है?

   क- रूसो का दर्शन ख- प्लेटो का दर्शन

   ग- कार्ल मार्क्स का दर्शन घ- टॉलस्टाय का दर्शन

4. निम्नलिखित में से बोल्शेविक क्रान्ति का कारण नही है।

   क- 1905 की रूसी क्रान्ति ख- जार की तानाशाही

   ग- लेनिन का नेतृत्व घ- ईस्ट इंडिया कंपनी का दम

   उत्तर : 1-क, 2- ख 3-ग 4-घ

इकाई-9

शस्त्रीकरण एवं निशस्त्रीकरण

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 शस्त्रीकरण अर्थ एवं कारण

9.3 शस्त्रीकरण के दुष्परिणाम

9.4 निशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियन्त्रण

9.5 निशस्त्रीकरण के प्रयास

9.6 निःशस्त्रीकरण के मार्ग में प्रमुख बाधायें

9.7 महत्वपूर्ण शब्दावली

9.8 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

9.9 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

9.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

9.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में शस्त्रीकरण एवं निशस्त्रीकरण की परिभाषिक विवेचना इनके कारण एवं निशस्त्रीकरण के प्रमुख प्रयासों की चर्चा की गई हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप -

- शस्त्रीकरण एवं निशस्त्रीकरण के पारिभाषिक अर्थ को समझ सकेंगे।
- शस्त्रीकरण एवं निशस्त्रीकरण के प्रेरक तत्वों की व्याख्या कर पायेंगे।
- निशस्त्रीकरण के प्रमुख प्रयासों से अवगत होंगे।
- शस्त्रीकरण एवं निशस्त्रीकरण के उपादेयता की समीक्षा कर पायेंगे।

9.1 प्रस्तावना

प्रतिरक्षा हेतु शक्ति का अर्जन जहाँ आवश्यक हैं, वहीं अर्जित शक्ति के दुरूपयोग को रोकने हेतु सतत प्रयास भी आवश्यक है। राष्ट्र राज्यों के उदय के बहुत पहले से ही साम्राज्यवादी युग एवं राजतन्त्रों में भी शक्ति अर्जन के प्रयासों से विश्व इतिहास भरा पड़ा है। जहाँ ग्रीक काल में प्लेटों नागरिकों के लिए आवश्यक सैन्य प्रशिक्षण का सुझाव रखता है वहीं कौटिल्य भी राज्य की प्रतिरक्षा को सुदृढ़ करने हेतु विषद चर्चा करते हुए अनेक प्रस्ताव रखता है। आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में यथार्थवाद के अन्तर्गत विशेषकर मारगेन्थाउ के चिन्तन में 'शक्ति' अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र बिन्दु है। राष्ट्रों की शक्ति ही उनके हितों की पूर्ति का

सबसे बड़ा आधार है। चूँकि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के कर्ता राष्ट्र-राज्य संप्रभुता सम्पन्न है और उनका कोई नियन्त्रक नहीं है, अतः अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था एक अराजकता की व्यवस्था बन जाती है। इसमें शक्ति की प्राप्ति और उसका रक्षण तथा संवर्धन राष्ट्रों का प्रमुख हित बन जाता है। शस्त्रीकरण की शुरूआत इसी नीति से होती है। किन्तु दो महायुद्धों ने मानव जाति को यह भी सिखाया है कि शस्त्रीकरण का परिणाम अन्ततः विनाशकारी होता है। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में निशस्त्रीकरण के भी प्रयास निरन्तर होते रहे है। आज भी जहाँ शस्त्रों के विकास, निर्माण एवं विपणन पर दुनियाँ में प्रतिदिन अरबों डॉलर खर्च किये जा रहे है वही निशस्त्रीकरण के प्रयास भी होते ही रहते हैं।

9.2 शस्त्रीकरण अर्थ एवं आवश्यकता

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शस्त्रीकरण का तात्पर्य है राष्ट्र-राज्यों के द्वारा सैन्य क्षमता में वृद्धि हेतु हथियारों की उपलब्धता को निरन्तर बढाना। शस्त्रीकरण का उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में प्रतिरक्षात्मक शक्ति को बढ़ाना होता है किन्तु यही शक्ति कब आक्रामक रूप ग्रहण कर लेगी यह सुनिश्चित नही होता है। कभी-कभी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शस्त्रीकरण का घोषित लक्ष्य अपनी आक्रामक शक्ति में वृद्धि करना भी होता है। ऐसा प्रायः जब शत्रुता या गुटबन्दी पूर्णतया स्पष्ट हो। वस्तुतः शस्त्रीकरण में प्रतिरक्षात्मक एवं आक्रामक शक्ति को बढ़ाना साथ-साथ पाये जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति संतुलन की धारणा का सम्बन्ध शस्त्रीकरण से हैं। प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व का यूरोप एवं शीत युद्ध का सम्पूर्ण युग शक्ति संतुलन से ही संचालित हो रहा था, जिसमें शस्त्रों की प्राप्ति राष्ट्रों का एक प्रमुख लक्ष्य था। शस्त्रीकरण सदैव अनेक कारणों की क्रियाशीलता का परिणाम होती है, जिसमें परस्पर अविश्वास एवं भय मुख्य कारण होते हैं। वर्साय सन्धि की प्रतिक्रिया स्वरूप जर्मनी की शस्त्रीकरण में आक्रोश, प्रतिक्रिया एवं बदले की भावना को भी देखा जा सकता है। विस्तारवादी नीति का प्रयोग करने वाले राष्ट्र भी शस्त्रीकरण का प्रयोग करते हैं। चीन के सस्त्रीकरण में इस तत्व को स्पष्टता से देखा जा सकता है। सम्प्रति अमेरिका विश्वशान्ति के संरक्षक के रूप में अपने स्वघोषित भूमिका के नाम पर शस्त्रीकरण का हिमायती है। भारत सरकार के द्वारा अपने शस्त्रीकरण को चीन एवं पाकिस्तान के विरूद्ध प्रतिरक्षात्मक शक्ति संतुलन हेतु औचित्यपूर्ण बताया जाता है।

शस्त्रीकरण 'प्रदर्शन प्रभाव' के कारण भी अपनी जड़े जमाता है। आज के संचार युग में जब जन संचार माध्यमों से युद्ध के अत्याधुनिक तकनीक का प्रदर्शन किया जाता है तब ऐसे आयुधों के बाजार का भी निर्माण होता है। सेना के मनोबल को ऊँचा बनाये रखने के लिए एवं उन्हें अत्याधुनिक तकनीक से परिचित कराने के लिए भी शस्त्रीकरण का ही सहारा लेना पड़ता है। वस्तुतः आज के युग में प्रत्येक राष्ट्र अपनी क्षमता एवं आवश्यकता के अनुसार किसी न किसी प्रकार के शस्त्रीकरण का सहारा अवश्य लेता हैं।

9.3 शस्त्रीकरण के दुष्परिणाम

शस्त्रीकरण जहाँ राष्ट्रों के सुरक्षा का एक बड़ा माध्यम है वही शस्त्रीकरण के अनेक दुष्परिणाम भी हैं। दो महायुद्धों की विभिषिका के पीछे शस्त्रीकरण की अहम भूमिका रही है। विगत वर्षों में लोकतन्त्र के विरोधी तानाशाहों ने सीरिया, लिबिया, मिस्त्र ईराक, अफगानिस्तान आदि में शस्त्रीकरण के माध्यम से अपनी ही जनता में भय उत्पन्न करने का भी कार्य किया है।

शस्त्रीकरण संरचनात्मक और प्रच्छन्न हिंसा को भी जन्म देता है। शस्त्रीकरण के परिणामस्वरूप शस्त्र उत्पादन, क्रय एवं शस्त्र सम्बन्धी अनुसंधान हेतु विशाल पैमाने पर किये जाने वाले व्यय अन्ततः विकासात्मक कार्यक्रमों की उपेक्षा से ही सम्भव हो पाता है। अतः शस्त्रीकरण मानवीय विकास हेतु आवश्यक परिस्थितियों के निर्माण के मार्ग में बाधक ही है।

शस्त्रों के उत्पादन एवं परीक्षण के क्रम में बड़े पैमाने पर पर्यावरण का क्षरण होता है। गैर परम्परागत एवं परम्परागत दोनों ही प्रकार के हथियारों के निर्माण से पर्यावरण को क्षति पहुँचती है। आणविक हथियारों के परीक्षण एवं उत्पादन तथा प्रक्षेपास्त्रों के परीक्षण एवं उत्पादन से पर्यावरण को होने वाली हानि जग जाहिर है। रासायनिक एवं जैविक हथियारों के भंडारण में भी पर्यावरण सुरक्षा के मानकों का बड़े पैमाने पर उल्लंघन होता है। इसी प्रकार आणविक हथियारों के भंडारण से भी रेडियो धर्मिता का खतरा बना रहता है।

शस्त्रीकरण राष्ट्रों में परस्पर अविश्वास, भय एवं असुरक्षा की भावना को जन्म देता है। जिसके परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय पहल शान्ति सौहार्द एवं विकास के कुंठित हो जाते हैं। शस्त्रीकरण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गुप्त-राजनय को बढावा देता है, जिसकी परिणति विश्व इतिहास में कभी सुखद नहीं रही है।

9.4 निःशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियन्त्रण

परिभाषिक दृष्टि से निःशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियन्त्रण शस्त्रों पर प्रतिबन्ध के दो अलग-अलग आयामों को अभिव्यक्त करते हैं। निःशस्त्रीकरण शस्त्रों के आत्यन्त्रिक उन्मूलन या समाप्ति से संबंधित है। साथ ही निःशस्त्रीकरण भूतलक्षी है। यह निर्मित शस्त्रों की समाप्ति से सम्बन्धित है। यह भविष्य में अर्जित किये जाने वाले शस्त्रों पर लागू नहीं होता है। इसके विपरीत शस्त्र नियंत्रण शस्त्रों की पूर्ण समाप्ति नहीं है। शस्त्र नियन्त्रण शस्त्रों की सीमा को तय करती है। यह भूतलक्षी और भविष्योन्मुखी दोनों हैं। अपने भूतलक्षी स्वरूप में शस्त्र नियन्त्रण पहले से निर्मित शस्त्रों में कटौती करने की क्रिया है। भविष्योन्मुखी स्वरूप में शस्त्र नियन्त्रण किन्हीं विशेष प्रकार के शस्त्रों के उत्पादन और भण्डारण पर रोक लगाता है। अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति एवं विकास की दृष्टि से निःशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियन्त्रण दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। निःशस्त्रीकरण के अनेक प्रयास हुए हैं। इन प्रयासों को निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

9.5 निःशस्त्रीकरण के प्रमुख प्रयास

प्रथम महायुद्ध के बाद ही निःशस्त्रीकरण के अनेक प्रयास प्रारम्भ हो गये। पेरिस शान्ति सम्मेलन का भी इस दिशा में महात्वपूर्ण योगदान है। राष्ट्रसंघ की धारा आठ में भी निःशस्त्रीकरण हेतु दिशा-निर्देश है। प्रथम महायुद्ध के बाद निःशस्त्रीकरण की दिशा में वाशिंगटन सम्मेलन 1921, जेनेवा सम्मेलन 1927, लन्दन नौ सैनिक सम्मेलन 1930 का महत्वपूर्ण स्थान है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद भी संयुक्त राष्ट्रसंघ के भीतर एवं बाहर निःशस्त्रीकरण के अनेक प्रयास हुए। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के धारा दो में इस हेतु दिशा-निर्देश दिए गए हैं। इस दिशा में पहल करते हुए संयुक्त राष्ट्र संघ की पहली महासभा ने संयुक्त राष्ट्र परमाणु उर्जा आयोग का गठन किया। इस आयोग का मुख्य कार्य परमाणु अस्त्रों का निरीक्षण करना एवं परमाणु उर्जा के शान्तिपूर्ण प्रयोग को बढ़ावा देना है। फरवरी 1947 में सुरक्षा परिशद ने पारम्परिक हथियार

आयोग का गठन किया और इसे परम्परागत हथियारों के नियन्त्रण का कार्य सौंपा गया। जनवरी 1952 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने संयुक्त राष्ट्र निःशस्त्रीकरण आयोग का गठन किया। इस आयोग को परम्परागत एवं गैर परम्परागत दोनों ही प्रकार के हथियारों में कटौती हेतु पहल करने का अधिकार प्रदान किया गया। प्रारम्भ में यह दस राष्ट्रीय आयोग था 1961 में इस आयोग में आठ गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों को सम्मिलित करके इसके जनाधार एवं प्रयास की व्यापकता को बढ़ाया गया।

निःशस्त्रीकरण की दिशा में 1963 में सम्पन्न आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि का महत्वपूर्ण स्थान है। इस सन्धि के द्वारा भूगर्भ परीक्षण को छोड़कर अन्य स्थानों पर आणविक परीक्षण पर रोक लगा दिया गया। इस सन्धि में पाँच धारायें है। भारत सरकार ने भी इस सन्धि पर हस्ताक्षर किया है। 1966 में निःशस्त्रीकरण के मार्ग में मील का पत्थर स्थापित करने हुए अमेरिका, ब्रिटेन तथा सोवियत संघ ने ''बाह्य आकाश सन्धि'' पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि के पक्षकारों ने बाह्य आकाश में आणविक शस्त्रों को भेजने पर पाबन्धी की घोषणा की।

1968 में परमाणु अप्रसार सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये। 112 में से 110 सदस्यों ने इस सन्धि पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धि में परमाणु अस्त्र विहीन राष्ट्रों को सदैव परमाणु शक्ति विहीन राष्ट्र बने रहने की व्यवस्था है। यद्यपि यह परमाणु शक्ति के सैनिक उपयोग को सीमित रखने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, किन्तु यह परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों के ''परमाणु विशेषाधिकार'' की रक्षा करता है।

1971 में परमाणु युद्ध समुद्र तल सन्धि पर हस्ताक्षर किया गया। इस सन्धि में ब्रिटेन, मास्को तथा वाशिंगटन ने भाग लिया। सन्धि की शर्तों में यह व्यवस्था की गई कि प्रादेशिक समुद्र (19 किमी) के अतिरिक्त समुद्र में परमाणिक अस्त्रों की तैनाती नहीं की जायेगी। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने भी इस सन्धि को स्वीकृति प्रदान कर दी है। शस्त्र परिसीमन की दिशा में सोवियत संघ एवं अमेरिका के मध्य साल्ट-1, साल्ट-2 एवं स्टार्ट-1 एवं स्टार्ट-2 जैसी वार्ताओं एवं सन्धियों का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

रासायनिक हथियारों पर प्रतिबन्ध की दिशा में अप्रैल 1993 में प्रस्तावित ''रासायनिक हथियार निषेध'' का महत्वपूर्ण स्थान है। यह सन्धि 160 देशों की सहमति से 1997 में लागू हो गयी है। इस सन्धि में रासायनिक हथियारों के निर्माण हेतु अनुसन्धान, उनके उत्पादन, भंडारण एवं विपणन पर प्रतिबन्ध की व्यवस्था की गई है। हस्ताक्षर करने वाले देशों से यह भी अपेक्षा की गयी है कि वे एक से पन्द्रह वर्ष के मध्य अपने समस्त रासायनिक हथियारों को नष्ट कर देंगे।

मध्यम दूरी प्रक्षेपास्त्रों को सीमित करने की दिशा में 1987 में अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन एवं सोवियत राष्ट्रपति मिरवाइल गोर्वाच्योव के बीच सन्धि हुई। इस सन्धि के द्वारा दोना ही राष्ट्रों ने मध्यम एवं कम दूरी के प्रक्षेपास्त्रों को कम करने की दिशा में सहमति प्रदान की। इसी प्रकार वारसा एवं नाटों सदस्यों के 34 राष्ट्राध्यक्षों के मध्य 1990 में एक सन्धि हुई। इस सन्धि की शर्तों के तहत सदस्य राष्ट्रों ने अपनी परम्परागत सैन्य क्षमता में कटौती हेतु सहमति प्रदान की। अमेरिका एवं रूस में भी मई 2002 में निःशस्त्रीकरण हेतु सहमति हुई। दोनों राष्ट्रों ने सन् 2012 तक सम्मिलित रूप से साढ़े चार हजार परमाणु अस्त्रों को विनष्ट करने का निश्चय किया है।

निःशस्त्रीकरण की दिशा में व्यापक आणविक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि की भी व्यापक चर्चा हुई है। यह सन्धि प्रारूप के रूप में 1993 में अस्तित्व में आयी तब भारत भी इसका सह प्रस्तावक था। किन्तु 1995 में भारत इस सन्धि से अपने आप को अलग कर लिया। भारत का तर्क है कि इस सन्धि में निःशस्त्रीकरण की कोई कार्य योजना नहीं है, साथ ही यह प्रस्ताव

दुनियाँ को परमाणु शस्त्र सम्पन्न एवं परमाणु शस्त्र रहित वर्गों में बांट देता है। यह सन्धि परमाणु शस्त्र सम्पन्न राष्ट्रों के विशेषाधिकार का संरक्षण करता है।

9.6 निःशस्त्रीकरण के मार्ग में प्रमुख बाधायें

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् निःशस्त्रीकरण हेतु सैकड़ों प्रयास हो चुके हैं, किन्तु इस दिशा में अभी भी समुचित पहल बाकी है। आज भी परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों के पास इस विश्व को सम्पूर्ण रूप से कई बार नष्ट करने की क्षमता है। निःशस्त्रीकरण के प्रयासों को निम्नलिखित कारणों से सफलता नहीं मिल पाती है।

प्रथम, शस्त्रीकरण राष्ट्रों की सुरक्षा का आज भी सबसे बड़ा माध्यम है। आक्रमण को रोकने के लिए आज भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कोई सक्षम एवं प्रभावशाली संस्था नहीं है। ऐसी किसी संस्था के अभाव के कारण राष्ट्र अपनी सुरक्षा हेतु शस्त्रीकरण को अपनाने हेतु बाध्य है।

द्वितीय, राष्ट्रों के मध्य राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, जातीय विवाद आज भी शेष हैं। ऐसे विवाद युद्ध को भी जन्म देते हैं और युद्ध में विजय के लिए शस्त्रों की आवश्यकता होती है। अतः विवादों के अस्तित्ववान रहने पर राष्ट्रों को शस्त्रीकरण से विरत कर पाना सम्भव नहीं है।

तृतीय, शस्त्र उद्योग अभी भी अनेक राष्ट्रों की अर्थ व्यवस्था में मुख्य भूमिका निभाते हैं। इन राष्ट्रों का हित शस्त्रों के विपणन में है। ऐसे हितों के रहते हुए पूर्ण रूप से निःशस्त्रीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना दुरुह है।

चतुर्थ, आज भी इस विश्व में जनसंख्या के अनुसार संसाधनों को विकेन्द्रीकता नहीं हो पाया है। गरीब राष्ट्रों में जहाँ दुनिया की 80 प्रतिशत आबादी है उनके पास बीस प्रतिशत के आस-पास ही संसाधन है। ऐसी स्थिति में विश्व व्यवस्था एवं अमीर देशों के प्रति गरीब देशों का आक्रोश स्वाभाविक है। अतः गरीब राष्ट्रों पर दबाव एवं प्रभाव बनाये रखने के लिए अमीर राष्ट्रों का शस्त्रीकरण स्वाभाविक है। प्रतिक्रिया स्वरूप गरीब राष्ट्रों द्वारा शस्त्र प्राप्ति के प्रयास का बढ़ना भी स्वाभाविक है।

पंचम, सम्प्रति आतंकवाद के विरूद्ध एवं तानाशाही प्रवृत्तियों के विरूद्ध शस्त्रीकरण को एक नया रूप प्राप्त हुआ है। नाटों सदस्य देशों का विस्तार एवं इनके द्वारा सैन्य क्षमता में वृद्धि के प्रयास इन्ही तर्कों के आधार पर हो रहा है।

वस्तुतः सम्प्रभुता आधारित राष्ट्र-राज्य प्रणाली के विद्यमान स्वरूप में जहाँ विशेषाधिकारों के संरक्षण की प्रवृत्ति अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की विशेषता बन गयी हो, निःशस्त्रीकरण के लक्ष्य को पूर्णतः प्राप्त नहीं किया जा सकता है। युद्ध के प्राचीन तकनीक से राष्ट्र जहाँ विमुक्त होने का प्रयास करते हैं, वहीं युद्ध के अत्यधिक परिष्कृत तकनीक उन्हें आकर्षित भी करती हैं।

9.7 महत्वपूर्ण शब्दावली

- अन्तरमहाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र : अधिकतम दूरी तक मार करने वाली मिसाइल जिसका बेधक क्षमता एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप तक हो।

- न्यूट्रान बम : ऐसा आणविक बम जी जीव को तो मारता है किन्तु परिसम्पत्तियों को नुकसान नहीं पहुंचता है।
- सब क्रिटिवल परीक्षण : परमाणु विस्फोट की कम्प्यूटर आधारित प्रणाली जिसमें वास्तविक विस्फोट की आवश्यकता नहीं होती है। बल्कि कम्प्यूटर आधारित संरूपण से विस्फोट किये जाते हैं।

9.8 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

- जे हर्त्ज (1958), इन्टरनेशनल पॉलिटिक्स इन द एटॉमिक एज, कोलम्बिया यूनिवसिर्टी प्रेस, न्यूयार्क।
- आर. मेनन (2004), वेपन्स ऑफ मास डिस्ट्रक्टशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लन्दन।
- सी. डी. फरग्यूसन एवं अन्य (2005), द फोर फेसेज ऑफ न्यूक्लियर टेरेरिज्म, राउटलेज, न्यूयार्क।
- एन. वुड्स (1996), एक्सप्लेनिंग इन्टरनेशनल रिलेशन सिन्स 1945, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क।

9.9 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. एम. टी. सी. आर. कब अस्तित्व में आया?

   (क) 1987 (ख) 1990 (ग) 1992 (घ) 1985

2. पी. टी. बी. टी. कब आस्तित्व में आया?

   (क) 1958 (ख) 1963 (ग) 1967 (घ) 1968

3. जैविक हथियारों पर प्रतिबन्ध से कौन संधि संबंधित है?

   (क) पेरिस प्रोटोकॉल (ख) वाशिंगटन प्रोटोकॉल (ग) जेनेवा प्रोटोकॉल (घ) मास्को कन्वेन्शन

4. हेग कोड ऑफ कन्डक्ट किसके संबंधित है?

   (क) रासायनिक हथियार नियन्त्रण (ख) परमाणु अप्रसार (ग) जैविक हथियार नियन्त्रण (घ) प्रक्षेपास्त्र नियन्त्रण

   उत्तर : 1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ

9.10 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. निःशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियन्त्रण के अर्थ को स्पष्ट कीजिए।
2. प्रमुख निःशस्त्रीकरण प्रयासों का उल्लेख करें।
3. शस्त्रीकरण हेतु कौन-कौन सी प्रेरणा मुख्य होती हैं, विवेचन करें?

MAPS-119
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

खण्ड – 4

तीसरी दुनिया का उद्भव

इकाई – 10 **101**

गुटनिरपेक्षता : उत्पत्ति, भूमिका और प्रासंगिकता

इकाई – 11 **109**

उपनिवेशवाद एवं नव–उपनिवेशवाद

इकाई – 12 **117**

तीसरी दुनिया के देशों की सुरक्षा एवं समस्याएं

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. एम. पी. सिंह – सदस्य**

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, 34 उत्तरांचल अपार्टमेंट, 5, आईपी एक्सटेंशन पटपड़गंज, नई दिल्ली

(2) **प्रो. एस.पी. एम त्रिपाठी – सदस्य**

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

(3) **प्रो.एल.आर.गुर्जर – सदस्य**

प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान

(4) **डॉ.दीपशिखा श्रीवास्तव – सचिव**

शैक्षणिक परामर्शदाता ,राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज

लेखक

1. **प्रो0 संजय श्रीवास्तव** — **प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान,** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय **(इकाई–04, 05, 15)**
2. **डॉ0 विश्वनाथ मिश्रा** — **असि0 प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान** आर0 महिला पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई– 06, 07, 08, 09, 10, 11, 12)**
3. **डॉ0 स्वाती सुचरिता नन्दा** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई–01, 02, 03, 21, 22, 23)**
4. **डॉ0 अर्चना सुदेश मैथ्यू** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** पी0जी0 कालेज छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश **(इकाई–13, 14, 16, 17, 18)**
5. **डॉ दीपशिखा श्रीवास्तव** — **शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान** यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज **(इकाई– 19, 20)**

संपादक / परिमापक

डॉ. नागेश्वर प्रसाद शुक्ला — प्राचार्य गन्ना उत्पादक पी0जी0 कालेज, बहेड़ी, बरेली

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव, — शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

(मुद्रित)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN- 978-93-83328-37-6

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई-10

गुटनिरपेक्षता : उत्पत्ति, भूमिका और प्रासंगिकता

ईकाई रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 गुटनिरपेक्षता : अर्थ एवं परिभाषा

10.2 गुटनिरपेक्षता की उत्पत्ति के कारण

10.2.1 शीतयुद्ध

10.2.2 नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों की स्वतन्त्र विदेश नीति के प्रति प्रतिबद्धता

10.2.3 साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध

10.2.4 नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों में तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकता

10.2.5 वैश्विक सामाजिक आन्दोलन हेतु संगङ्गिति प्रयत्नों की आवश्यकता

10.3 गुटनिरपेक्षता की भूमिका

10.4 गुटनिरपेक्षता औचित्य एवं प्रासंगिकता

10.5 प्रमुख शब्दावली

10.6 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

10.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

10.8 लघु उत्तरीय प्रश्न

10.9 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

10.0 उद्देश्य

इस ईकाई में गुटनिरपेक्षता के अर्थ उसके उत्पत्ति के कारणों और गुटनिरपेक्षता की भूमिका एवं प्रासंगिकता की चर्चा की गई है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

- गुटनिरपेक्षता के सही अर्थ को समझ सकेंगे।

- गुटनिरपेक्षता को जन्म देने वाले कारकों को जान पायेंगे।
- गुटनिरपेक्षता की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में योगदान का विश्लेषण कर सकेंगे
- गुटनिरपेक्षता के औचित्य एवं प्रासंगिकता का आकलन कर पायेंगे

10.1 गुटनिरपेक्षता अर्थ एवं परिभाषा

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गुटनिरपेक्षता का औपचारिक प्रारम्भ 1961 ई. में हुआ। इस वर्श युगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में का एक शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ जिसमें गुटनिरपेक्षता के उद्देश्यों औचित्य एवं सांगठनिक रूपरेखा की औपचारिक घोषणा की गई। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों की सदस्य संख्या 1961 के प्रथम शिखर सम्मेलन में जहाँ 25 थी, वही चौदहवे शिखर सम्मेलन तक इसके सदस्यों की संख्या बढ़कर 118 हो गयी है। 1961 में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों का प्रथम शिखर सम्मेलन वस्तुतः 1955 में बाण्डुंग में सम्पन्न हुए अफ्रो-एशियाई राष्ट्रों के सम्मेलन में पहचानी गई चुनौतियों के प्रत्युत्तर में ही संगठित एवं सम्पन्न हुआ है। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के संगठन को प्रारम्भिक दौरे में भारत के जवाहर लाल नेहरू, मिस्त्र के नासिरा, घाना के एनक्रुमा एवं युगोरलापिया के टीटो ने मार्ग दर्शन प्रदान किया।

गुटनिरपेक्षता को प्रायः तटस्थता एवं असंल्गनता जैसी नीतियों का समानार्थी समझने की भूल की जाती है। जबकि, गुटनिरपेक्षता का उद्देश्य न तो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रति तटस्थ रहना है न ही उससे अपने को विलग रखना है। बल्कि, गुटनिरपेक्षता सतत् सक्रियता की नीति हैं जो गुण-दोष विवेचना के आधार पर अन्तराष्ट्रीय राजनीति में सहभागिता की वकालत करता है। वस्तुतः गुटनिपक्षता की सदस्यता के पाँच आधार स्वीकार किए गये हैं। जो इस प्रकार है - (1) सदस्य देश स्वतन्त्र विदेश नीति का पालन करता हो (2) सदस्य देश उपनिवेशवाद विरोध के प्रति प्रतिबद्ध हो (3) सदस्य देश किसी सैनिक गङ्गबन्धन का सदस्य न हो (4) सदस्य देश का महाशक्तियों के साथ द्विपक्षीय समझौता न हो एवं (5) सदस्य देश किसी महाशक्ति को अपने भू-क्षेत्र पर सैनिक अड्डा बनाने की अनुमति न देता हो।

गुटनिरपेक्षता के अर्थ के समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि गुटनिरपेक्षता में दो पहलू समाविष्ट हैं। प्रथम-सांयोगिक, जो इसे शीतयुद्ध से अलग रहने की प्रेरणा देता है और इसी अर्थ में यह तटस्थता की ओर झुका हुआ प्रतीत होता है। द्वितीय-समसामयिक, जो इसे महायुद्धोत्तर विश्व में उपनिवेशवाद विरोध, शक्ति राजनीति का विरोध, विश्वशान्ति हेतु पहल, मानवीय कल्याण के वृद्धि हेतु सामूहिक पहल, नव प्राप्त स्वतन्त्रता की रक्षा एवं अन्तराष्ट्रीय राजनीति के लोकतांत्रीकरण की ओर ले जाता है। गुटनिरपेक्षता की परिभाषा में इन दोनों ही पहलुओं को समाविष्ट करने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से गुटनिरपेक्षता को स्वतन्त्र विदेश नीति के पालन करने वाले राष्ट्रों के वैश्विक सामाजिक आन्दोलन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

10.2 गुटनिरपेक्षता की उत्पत्ति के कारण

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की उत्पत्ति की मौलिक मान्यतायें नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों के उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय संघर्ष में निहित रहे है। द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति के बाद भी अन्तराष्ट्रीय परिदृश्य से एक राष्ट्र के द्वारा दूसरे राष्ट्र के शोषण हेतु अनेक कारक गतिमान थे।

उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद ने नव-उपनिवेशवाद और नव-साम्राज्यवाद का स्वरूप ग्रहण कर लिया था। शीतयुद्ध का जन्म, गुटीय राजनीति और शस्त्र प्रतिस्पर्धा ने जहाँ तृतीय महायुद्ध हेतु पृष्ठभूमि तैयार कर दिया था वहीं इस प्रतिस्पर्धा से दूर रहे बिना नव-स्वतन्ता राष्ट्रों का अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा कर पाना भी सम्भव नहीं था। विश्वशान्ति, लोकतन्त्र एवं आर्थिक विकास एवं पुननिर्माण हेतु गङ्गित अन्तराष्ट्रीय संस्थाओं में भी विचारधारात्मक संघर्ष एवं उससे जुड़े निहित स्वार्थ पनप रहे थे। इन परिस्थितियों में एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिक के राष्ट्रों ने गुटनिरपेक्ष नीति को अपनाते हुए एक नये अन्तराष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात किया। इस आन्दोलन ने रंगभेद विरोध, शीतयुद्ध विरोध एवं विश्वशान्ति तथा बिना शर्त अन्तराष्ट्रीय सहयोग का सूत्रपात किया। गुट निरपेक्ष आन्दोलन की उत्पत्ति के प्रमुख कारकों को निम्नलिखित रूप से दर्शाया जा सकता है।

10.2.1 शीतयुद्ध

गुटनिरपेक्षता की नीति को जन्म देने में शीतयुद्ध एक अहम् कारक है। किन्तु यह तात्कालिक एवं सांयोगिक कारक ही हैं। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विचारधारा के आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय जगत पूँजीवादी एवं समाजवादी खेमे में विभक्त हो गया। दोनों ही गुटों के द्वारा न केवल अलग-अलग विश्वदृष्टि के आधार पर अपने लिये विशेष सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक जीवन प्रणाली को अपनाया गया, बल्कि एक दूसरे पर अपनी श्रेष्ठता स्थापित करने का भी प्रयास किया गया। इस प्रयास ने नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों को भी अपने गुट में आबद्ध करने का व्यापक प्रलोभन दिया। ट्रुमैन योजना, मार्शल योजना ऐसी ही प्रलोभनकारी नीतियों के द्योतक हैं। अन्तराष्ट्रीय मुद्राकोष के ऋण एव नीतियो के समायोजन के नाम पर विश्व बैंक के अनुदान किसी न किसी प्रकार के दबाव को भी प्रदर्शित करते रहे है। ऐसी स्थिति में गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने अपने को दोनों ही गुटों के संघर्ष से पृथक रखने का निर्णय लिया। शीतयुद्ध की गुटीय राजनीति से पृथकता के माध्यम से ऐसे राष्ट्र अपने को शस्त्र प्रतिस्पर्धा में उलझने से बचाना चाहते थे। ऐसे राष्ट्रों के लिये शीतयुद्ध में सहभागिता का तात्पर्य था एक गुट से शत्रुता एवं एक गुट की अधीनता। अतः शीतयुद्ध में सहभागिता को गुटनिरपेक्ष ने किसी भी दृष्टि से उपादेय नहीं समझा और उससे अलग रहने का निर्णय लिया।

10.2.2 नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों की स्वतन्त्र विदेश नीति के प्रति प्रतिबद्धता

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् औपनिवेशिक दासता से मुक्त हुए राष्ट्रों के समक्ष स्वतन्त्र विदेशनीति के पालन के मार्ग में भी शीतयुद्ध एक महत्वपूर्ण बाधक तत्व था। शक्ति गुटों की राजनीति में भाग लेने पर ऐसे राष्ट्रों के द्वारा स्वतन्त्र विदेशनीति का पालन कर पाना सम्भव नहीं था। क्योंकि, शक्ति गुटों की राजनीति में भागीदारी का अर्थ था या तो अमेरिकी विदेश नीति का अन्ध समर्थन करना या सोवियत विदेश नीति के साथ अपने भाग्य को जोड़ लेना। इस स्थिति में नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों द्वारा अपने आप को उसी उपनिवेशवादी-साम्राज्यवादी नीति से जोड लिया जाता जिसके वे लम्बे स्वतन्त्रता संघर्ष के दौर में विरोध करते रहे थे। स्वतन्त्र विदेश नीति के अभाव में नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों द्वारा अपनी स्वतन्त्रता को भी स्थायी रूप से दीर्घ अवधि तक बनाये रखना सम्भव नहीं था। प्रकारान्तर से स्वतन्त्र विदेशनीति के अभाव का दुष्परिणाम आर्थिक एवं राजनीतिक नीतियों के निर्माण की स्वतन्त्रता पर भी पड़ना स्वाभाविक था। ऐसी स्थिति में स्वतन्त्र विदेश नीति का विकल्प तभी खुला रह सकता था जब गुटनिरपेक्ष नीति का पालन किया जाय। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रो ने इसी विकल्प को अपनाया और वे अपनी आवश्यकता के अनुसार या

गुण दोष विवेचना के आधार पर सोवियत या अमेरिकी पक्ष के समर्थन या विरोध का विकल्प खुला रख सके। यही नहीं, बल्कि गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने गुटनिरपेक्ष विदेशनीति की अवधारणा का भी सूत्रपात किया।

10.2.3 साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों में से अधिकांश राष्ट्रों को साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का कटु अनुभव रहा है। महायुद्धोत्तर विश्व में पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा विचारधारा के आधार पर वर्चस्व स्थापित करने की नई मुहिम प्रारम्भ हो गयी थी। यह शोषण एवं वर्चस्व की स्थापना का अप्रत्यक्ष तरीका था जिसे प्रायः नव साम्राज्यवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के नाम से जाना जाता है। रंगभेद, नस्लभेद, कठपुतली सरकारों की स्थापना, सहायता एवं अनुदान के माध्यम से अपनी नीतियों को थोपना, विश्वशान्ति एवं लोकतन्त्र के नाम पर हस्तक्षेप करना ऐसे ही नीतियों का उदाहरण है। नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों ने किसी भी राष्ट्र के द्वारा विश्व में कही भी साम्राज्यवादी एवं उपनिवेशवादी नीतियों के प्रयोग का विरोध करने का निर्णय लिया। इसमें सैनिक संगठनों के निर्माण एवं शस्त्र प्रतिस्पर्धा की नीति का विरोध भी सम्मिलित है। वस्तुतः गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने महायुद्ध के बाद यूरोप केन्द्रित अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का विरोध किया और किसी भी प्रकार के राजनीतिक एवं आर्थिक एकरूपता के आरोपण के प्रयासों का विरोध किया। इन राष्ट्रों ने अपने लिये अन्तराष्ट्रीय राजनीति में प्रभावी एवं महत्वपूर्ण भूमिका की मांग की। यह भूमिका उन्हें परवलम्बी होने की अपेक्षा आत्मनिर्भर होने पर ही प्राप्त हो सकती थी।

10.2.4 नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों में तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकता

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों में तीव्र आर्थिक विकास की आवश्यकता थी। इसकी पूर्ति हेतु उन्हें दोनों ही गुटों से सहयोग की आवश्यकता थी किसी भी एक गुट में सम्मिलित होने से दूसरे गुट से सहयोग की सम्भावना क्षीण हो सकती थी। इस स्थिति से गुटनिरपेक्ष नीति के द्वारा ही बचा जा सकता था। तीव्र आर्थिक विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए शस्त्र प्रतिस्पर्धा और अनुत्पादक रौनिक व्यय से बचना भी आवश्यक था ताकि अधिक से अधिक निवेश विकासात्मक कार्यों में किया जा सके और इन दोनों ही लक्ष्यों की प्राप्ति गुटीय राजनीति से पृथक रहने पर ही सम्भव था। इसी प्रकार नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों को विकास हेतु निजी पूंजी, राज्य एकाधिकारी पूँजी एवं पराराष्ट्रीय पूँजी के सम्मिलित एवं प्रभावकारी नियोजित प्रयोग की आवश्यकता थी। इस लक्ष्य की प्राप्ति पूंजीवादी या समाजवादी विचारधारा के प्रति अन्धविश्वास रखकर सम्भव नहीं था। इसके लिये पूँजीवादी एवं समाजवादी प्रणाली के गुणों को समाविष्ट करके मिश्रित अर्थव्यवस्था की नीति को अपनाना आवश्यक था, जो गुटनिरपेक्ष रहने पर सहजता से सम्भव था। पूँजी की ही भांति तकनीक, सेवा एवं उत्पाद के संबंध में भी गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों को नियन्त्रित खुलेपन की आवश्यकता थी और किसी भी पृष्ठभूमि का निर्माण गुटनिरपेक्ष होने पर अधिक सरलता से सम्भव था।

10.2.5 वैश्विक सामाजिक आन्दोलन हेतु संगठित प्रयत्नों की आवश्यकता

द्वितीय महायुद्ध के बाद लोकतान्त्रिक मूल्यों की स्थापना की प्रक्रिया तीव्र अवश्य हुई किन्तु शीतयुद्ध के प्रकरण ने इसे उलझा दिया। ऐसी स्थिति में रंगभेद की समाप्ति, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के लोकतान्त्रीकरण, विश्व व्यापार के संरक्षणवादी नीतियों का प्रतिकार, संयुक्तराष्ट्र

संघ के सशक्तीकरण, महिला एवं बाल विकास जैसे प्रश्न पृष्ठभूमि में चले गये थे। इसी प्रकार मादक द्रव्यों के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर प्रतिबन्ध, पर्यावरण संरक्षण, तकनीकी एवं शैक्षणिक सहयोग जैसे मुद्दे भी मुख्य-धारा अन्तराष्ट्रीय राजनीति से ओझल होते जा रहे थे। वैश्विक राजनीति में ऐसे मुद्दों को लेकर संघर्ष करने वाली किसी अन्तराष्ट्रीय संस्था का अभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा था। गुटनिरपेक्ष संगठन ने इस दिशा में पहल करते हुए एक वैश्विक सामाजिक आन्दोलन हेतु न केवल संगठनात्मक ढाँचा तैयार किया बल्कि इस दिशा में ठोस पहल भी किया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने शीतयुद्ध की राजनीति से पृथक रहते हुए वैश्विक कल्याण की दृष्टि से विश्व राजनीति को दिशा प्रदान करने की जो तात्कालिक आवश्यकता थी उस आवश्यकता को समझा और एक वैकल्पिक योजना प्रदान किया।

10.3 गुटनिरपेक्षता की भूमिका

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की अनेक मोर्चे पर उल्लेखनीय भूमिका रही है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की भूमिका को निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है।

विदेशनीति के क्षेत्र में गुटनिरपेक्षता ने नवोदित राष्ट्रों के समक्ष स्वतन्त्र विदेशनीति का एक प्रतिमान प्रस्तुत किया। इस प्रतिमान को अपनाकर नवोदित राष्ट्र अमेरिका एवं सोवियत संघ के उपग्रह बनने से अपने को बचा सकें। इस दिशा में गुटनिरपेक्षता की सफलता का आकलन इस बात से किया जा सकता है कि इसके सदस्यों की संख्या बेलग्रेड सम्मेलन 1961 में जहाँ पचीस भी वही इसके चौदहवें शिखर सम्मेलन 2006 में सदस्यों की संख्या बढ़कर 118 तक पहुँच चुका है।

शस्त्र प्रतिस्पर्धा को सीमित रखने में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने दो तरीके से योगदान दिया है। प्रथम इन राष्ट्रों ने शीतयुद्ध की राजनीति से अपने को पृथक रखकर शस्त्र प्रतिस्पर्धा में भाग नहीं लिया। द्वितीय गुटनिपेक्षता के मंच से निःशस्त्रीकरण एवं शस्त्र नियन्त्रण की निरन्तर मांग की गई और इस दिशा में एक अन्तर्राष्ट्रीय जनमत निर्माण करने का कार्य किया गया। इस मंच ने जो दबाव बनाया वह कारगर भी हुआ और आंशिक परीक्षण प्रतिबन्ध सन्धि से आरम्भ करके दोनों महाशक्तियों ने 'साल्ट' एवं 'स्टार्ट' तक जो प्रगति की उसमें गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के दबाव को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना हेतु गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने काहिरा, कोलम्बो एवं अल्जीयर्स सम्मेलन में मांग की थी। अल्जीयर्स सम्मेलन में यह मांग अत्यन्त मुखर स्वर में उभरी। 1914 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस हेतु महासभा का छठा विशेष अधिवेशन भी आहूत किया। इस अधिवेशन में नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था स्थापित करने की जो घोषणा हुई और इसके लिये जो कार्य योजना पारित हुआ वह वास्तव में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के पहल का ही परिणाम था। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने नई अनतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के लोकतान्त्रीकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में विकसित राष्ट्रों के संरक्षणवादी नीतियों के विरोधी रहे है।

संयुक्त राष्ट्र संघ को शीतयुद्ध का अखाड़ा न बनने देने में भी गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों की अहम् भूमिका रही है। शीतयुद्ध के प्रति तटस्थतावादी दृष्टिकोण एवं महासभा में आनी संख्या बल के कारण सुरक्षा परिषद में महाशक्तियों के टकराहट के प्रभाव से महासभा को गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने सदैव बचाया है। सुरक्षा परिषद शीतयुद्ध के काल में जब 'वीटो' शक्ति के दुरूपयोग से

पंगु हुई जा रही थी तब गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने ही महासभा में स्वस्थ बहस एवं वैश्विक कल्याण हेतु संवाद के माध्यम से इस संख्या को राष्ट्र संघ की भांति विफल हाने से बचाया है।

दक्षिण-दक्षिण संवाद का पहल भी गुटनिरपेक्ष संगठन से ही हुआ। यह पहल गरीब एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य सहयोग हेतु एक महत्वपूर्ण कदम रहा है। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने आपस में तकनीकी एवं आर्थिक सहायता कोष की स्थापना जीन बैंक की स्थापना ऐसे ही सहयोग के प्रतीक है।

गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने अन्तराष्ट्रीय स्तर पर मादक पदार्थों के तस्करी के उन्मूलन एवं आतंकवाद को निर्मूल करने की दिशा में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने आंतकवाद के प्रति दोहरी नीति अपनाने हेतु पश्चिमी राष्ट्रों के दृष्टिकोण का सदैव विरोध किया है। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने राज्य प्रायोजित आतंकवाद एवं समूह प्रायोजित आंतकवाद में विभेद न करके सभी प्रकार के आतंकवाद को अन्तराष्ट्रीय शन्ति हेतु बाधक माना है।

10.4 गुटनिरपेक्षता औचित्य एवं प्रासंगिकता

सोवियत संघ के विघटन एवं शीतयुद्ध के पराभव के साथ-साथ अन्तराष्ट्रीय राजनीति में गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता को लेकर बहस प्रारम्भ हो गयी है। यह कहा जाने लगा है कि अन्तराष्ट्रीय राजनीति से शक्ति गुटों की राजनीति का अवसान हो गया है, अतः गुटों से निरपेक्ष रहने की गुटनिरपेक्षता नीति भी अप्रासंगिक हो गयी है। वस्तुतः यह तर्क गुटनिरपेक्षता की अधूरी एवं भ्रामक समझ पर आधारित है। शीतयुद्ध के कारण शक्ति गुटों की राजनीति से पृथक रहना गुट निरपेक्षता का एक सामायिक एवं सायोगिक कारण था। यह गुटनिरपेक्षता की उत्पत्ति का एक मान कारण नहीं था। गुटनिरपेक्षता की उत्पत्ति नव-उपनिवेशवाद एवं नव-साम्राज्यवाद के विरोध के लिये हुआ था। नव उपनिवेशवाद एवं नव-साम्राज्यवाद आज के अन्तराष्ट्रीय राजनीति में भी प्रक्षन्न रूप से उपस्थित है अतः इसके निवारण के लिये गुटनिरपेक्षता आज भी प्रासंगिक है। निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत गुटनिरपेक्षता की प्रासंगिकता को उजागर किया जा सकता है।

गुटनिरपेक्षता की प्राथमिकता इस तथ्य में निहित है कि अन्तरिक्ष अनुसन्धान, महरे समुद्र के अनुसंधान, शान्पिूर्ण कार्यों हेतु परमाणु तकनीक के विकास, आनुवांशिक अभियांत्रिकी इत्यादि के क्षेत्र में गरीब राष्ट्र अभी भी विकसित राष्ट्रों से काफी पिछडे हुए है। इस क्षेत्र में अन्तराष्ट्रीय राजनीति में विकसित राष्ट्रों का वर्यस्व कायम है और वे गरीब राष्ट्रों से सामान्यतः इन उपलब्धियों को साझा नहीं करते हैं। भारत एवं ब्राजील जैसे राष्ट्रों ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति की है और वे अपने गुटनिपेक्ष सहयागियों को अनुसंधान एवं विकास के नवीन उपलब्धियों से प्रेरित कर रहे है। एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में अमेरिकी प्रसारवादी नीति के प्रति विश्व जनमत को प्रेरित करने हेतु भी एक अन्तराष्ट्रीय मंच की आवश्यकता है और वर्तमान समय में इस हेतु गुटनिरपेक्षता के मंच से बडा और प्रभावी अन्य कोई दूसरा मंच इस दिशा में सक्रिय नहीं है। अमेरीकी द्वारा इराक में इस्तक्षेप का मामला हो या अफगानिस्तान में, गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने सदैव लोकतान्त्रिका व्यवस्था की बहाली और शान्ति स्थापना हेतु प्रभावशाली तरीके से आवाज उठाया है।

शीत युद्धोत्तर काल में 'विश्व व्यापार सगठन' के स्थापना मांत्र से ही नई अन्तराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना न तो हुई है और न ही सम्भव है। अभी भी संरचनात्मक सुधार की शर्तो के साथ विश्व बैंक द्वारा दिये जाने वाले अनुदान विकसित राष्ट्रों के एजेन्डे को थोपने का ही कार्य करते है। अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष के ऋण शर्तों में भी ऐसी ही व्यवस्था होती है। इन

संस्थाओं के लोकतान्त्रीकण के अभाव में और अन्तराष्ट्रीय व्यापार में संरक्षणवादी नीतियों के रहते नई अन्तराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना सम्भव नहीं हो सकती है। गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने इस हेतु अपने संघर्ष को जारी रखा है। यह तथ्य भी गुट निरपेक्षता की प्रासंगिकता को उजागर करता है।

सम्पोष्य विकास एवं पर्यावरण संरक्षण की दिशा में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने आरम्भ से ही पहल किया है। पृथ्वी कोष की स्थापना और पर्यावरण सरक्षण हेतु पृथ्वी सम्मेलनों के आयोजन हेतु पृष्ठभूमि निर्माण में भी गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस क्षेत्र में भी विकसित राष्ट्रों द्वारा अपने निहित स्वार्थों को प्रश्रय दिये जाने के कारण वास्तविक धरातल पर ठोस प्रगति नही हुई है। इस दिशा निरन्तर कार्य करते रहना गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों के औचित्य एवं प्रासंगिकता को प्रमाणित करती है। शीतयुद्धोत्तर विश्व के नृजातीय संघर्ष एवं आतंकवादी संगठनों की बढ़ती हुई गतिविधियाँ विश्व शान्ति के मार्ग में प्रमुख चुनौती बन गयी है। नृजातीय संघर्षों के समाधान एवं आतंकवाद के विरूद्ध वैश्विक संघर्ष हेतु गुटनिरपेक्षता एक उपयुक्त मंच है। नृजातीय संघर्षों को सीमा पार से मिलने वाले सहयोग को रोकने एवं आतंकवाद हेतु अपनी जमीन का प्रयोग न होने देने का संकल्प जहाँ एक ओर नृजातीय संघर्षों को सीमित कर सकता है वही आतंकवादी के उन्मूलन का पर्याय बन सकता है। वस्तुतः गुटनिरपेक्षता के अभ्यूदय के साथ-साथ जितने मांग इस मंच से उठते रहे हैं और जितनी प्रत्याशाओं को इसने जगाया है, उन सबके पूरा होने तक गुटनिरपेक्षता प्रासंगिक है।

10.5 प्रमुख शब्दावली

- **अप्रतिबद्धता** - किन्हीं दो शक्तियों से समान दूरी रखते हुए उनमें से किसी एक के साथ प्रतिबद्ध न होना।
- **तटस्थता** - किसी देश की वह कानूनी एवं राजनीतिक स्थिति जिसमें वह युद्ध के दौरान किसी भी पक्ष से संल्गन नहीं होता।
- **एकपक्षवाद** - किसी सिद्धान्त के पालन के प्रति वह निष्ठा जिसमें राष्ट्र यह नहीं देखता कि अन्य राष्ट्र वैसा ही कर रहे हैं या नहीं।
- **साल्ट** - SALT का संक्षिप्त प्रारूप जिसका पूर्ण रूप हैं सामरिक शस्त्र परिसीमन वार्ताएं।

10.6 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

- राजन, एम0एस0 (1994) नॉन एलाइनमेन्ट एण्ड द नॉन एलाइन मोमेन्ट इन द प्रजेन्ट वर्ल्ड ऑर्डर, हरआनन्द प्रकाशन, नई दिल्ली।
- ए0 अप्पादोराई (181), द डॉमेस्टिक रूट्स ऑफ इण्डियान फॉरेन पॉलिसी 1942-1972, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस नई दिल्ली।
- ए0 डब्लयू0 सिंघम् (1986), नान एलाइन्मेन्ट इन द एज ऑफ एलाइन्मेन्ट, लारेन्स हिल एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क।
- वी0 पी0 दत्त (1999), इण्डियन फॉरेन पॉलिसी इन ए चेन्जिंग वर्ल्ड, विकास पब्लिसिंग हॉउस, नई दिल्ली।

➢ के0 पी0 मिश्रा एवं के0 आर0 नारायणन (1999), नान एलाइनमेन्ट इन कन्टम्प्रेरी इन्टरनेशनल रिलेसन्स, विकास पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली।

10.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. गुटनिरपेक्षता के उदय के कारणों को बताइये?
2. गुटनिरपेक्षता आज भी क्यों प्रासंगिक है?
3. गुटनिरपेक्षता के योगदान को रेखांकित कीजिए?

10.8 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. गुट निरपेक्षता को परिभाषित करें?
2. किन्हीं चार एशियाई गुट निरक्षेप राष्ट्रों का नाम बताइए?
3. गुटनिरपेक्षता एवं तटस्थता में दो अन्तर बताइए?
4. गुटनिरपेक्षता के उदय के दो कारणों का उल्लेख करे?

10.9 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. काहिरा सम्मेलन में कितने राष्ट्रों ने भाग लिया?

   क - 46 ख - 26 ग - 36 घ - 56

2. हवाना शिखर सम्मेलन में किस गुटनिरपेक्ष राष्ट्र ने अपना नाम इस संगठन से वापस ले लिया?

   क - पकिस्तान ख - जकार्ता ग - डरबन घ - यूगोस्लाविया

3. न्यू मिलेनियम डिक्लियरेशन का संबंध किस सम्मेलन से है?

   क - कार्टेजिना ख - जकार्ता ग - डरबन घ - लुसाका।

4. गुट-निरपेक्षता के संबंध में क्या सत्य है?

   क - यह संयुक्त राष्ट्र संघ के बाद विश्व का दूसरा सबसे बड़ा संगठन है।

   ख - यह मादक द्रव्य एवं आंतकवाद के गठजोड़ को समाप्त करना चाहते है।

   ग - यह हर तीन वर्ष बाद शिखर सम्मेलन का आयोजन करता है।

   घ - उपयुक्त सभी

   उत्तरः 1 - क, 2 - ख, 3 - ग, 4 - घ

इकाई-11

उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद

इकाई रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 पारिभाषिक विवेचना

11.2 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के प्ररेक तत्व

11.3 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के साधन

11.4 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के लाभ

11.5 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के दुष्परिणाम

11.6 उपनिवेशवाद नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया

11.7 प्रमुख शब्दावली

11.8 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

11.9 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

11.10 लघु उत्तरीय प्रश्न

11.11 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद की चर्चा की गई हैं। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

- उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के पारिभाषिक अर्थ को समझ सकेंगे।
- उपनिवेशवाद के प्रेरक तत्वों एवं उपनिवेशवाद के विभिन्न स्वरूपों को समझ सकेंगे।
- उपनिवेशवाद के लाभ एवं दृष्परिणाम को समझ सकेंगे।
- वर्तमान अन्तराष्ट्रीय राजनीति में नव-उपनिवेशवादी प्रवृत्तियों की पहचान कर सकेंगे।
- नव-उपनिवेशवादी प्रवृत्तियों के विरूद्ध विकासशील राष्ट्रों की विवषता एवं रणनीति का मूल्यांकन कर सकेंगे।

11.1 पारिभाषिक विवेचन

एक राज्य या भौगोलिक क्षेत्र की जनता के द्वारा दूसरे राज्य या भौगोलिक क्षेत्र का राजनीतिक अधिपत्य के माध्यम से शोषण करना उपनिवेशवाद है। जे0ए0 हान्सन साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद को पर्यायवाची मानते है। जबकि, ई0एफ0 पैनरोज ने उपनिवेशवाद एवं साम्राज्यवाद में अन्तर किया है। वस्तुतः साम्राज्यवाद में एक शक्तिशाली राष्ट्र नए भू-प्रदेश को पूर्णतः अपने आधिपत्य में ले लेता है और उसके पृथक अस्तित्व की पहचान मिट जाती है। इसके विपरित अपनिवेशवाद के अन्तर्गत जो नया भू-क्षेत्र शक्तिशाली राष्ट्र के आधिपत्य में आता है, उसका शक्तिशाली राष्ट्र ये पृथक पहचान बना रहता है। उपनिवेशवाद में राष्ट्रीयता के उन्नयन के अवसर क्षीण रूप में ही सही किन्तु उपलब्ध होते है। किन्तु साम्राज्यवाद में पूर्ण सात्मीकरण या विलयन के कारण राष्ट्रयता के उभार के पक्ष प्रायः नहीं होते है।

द्वितीय महायुद्ध के समापन के साथ-साथ विश्व मानचित्र पर बड़े पैमाने पर उपनिवेशवाद का भी अवसान हुआ। फ्रांस, ब्रिटेन, पुर्तगाल, इटली, जर्मनी आदि औपनिवेशिक शक्तियों को बड़े पैमाने पर अपने-अपने उपनिवेशों को छोड़ना पड़ा। किन्तु इसी युग में शोषण के एक नये तरीके के रूप में नव-उपनिवेशवाद का उदय हुआ। नव-उपनिवेशवाद एक शक्तिशाली राष्ट्र के द्वारा कमजोर राष्ट्र का उस पर राजनीतिक आधिपत्य स्थापित किये बिना शोषण का माध्यम है। उपनिवेशवाद में जहाँ शोषण का स्वरूप प्रत्यक्ष होता हैं, वही नव-उपनिवेशवाद में शोषण का स्वरूप अप्रत्यक्ष होता है। उपनिवेशवाद पराश्रितता को जन्म देता है। उपनिवेशवाद में शक्तिशाली राष्ट्र के हस्तक्षेप के कारण द्वारा कमजोर राष्ट्र के सम्प्रभुता की स्वतन्त्रता तो बनी रहती है किन्तु यथार्थ में आर्थिक निर्भरता के कारण उसकी स्वतन्त्र निर्णय की क्षमता क्षीण हो जाती है

11.2 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के प्रेरक तत्व

उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद दोनों ही राष्ट्रीय हित की पूर्ति के माध्यम रहे है। यद्यपि, अन्तराष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय हितों की पूर्ति के लिये इन माध्यमों के प्रयोग का विकल्प शक्तिशाली राष्ट्रों के पास ही होता है। अन्तराष्ट्रीय राजनीति के इतिहास का विश्लेषण यह बताता है कि आद्यौगिकरण के पश्चात् राष्ट्रीय हितों की पूर्ति हेतु उपनिवेशवाद के विकल्प का पश्चिमी शक्तियों ने खुला प्रयोग किया। महायुद्ध के पश्चात् प्रायः उन्हीं पश्चिमी ताकतों के द्वारा नव-उपनिवेशवाद का प्रयोग किया जा रहा है। यद्यपि प्रत्येक शक्तिशाली राष्ट्र आज के युग में कमजोर राष्ट्रों के प्रति किसी न किसी प्रकार से नव-उपनिवेशवादी साधनों का प्रयोग करता हुआ भी दिखाई पड़ता है।

उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के अनेक प्रेरक तत्व है। इन प्रेरकों की प्रकृति एक जैसी नहीं रही है और देश-काल सापेक्ष है। तथापि, इतना अवश्य स्पष्ट है कि उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद हेतु अनेक प्रेरकों की उपस्थिति एक साथ पायी जाती है। इनकी विवेचना निम्नलिखित रूप से की जा सकती है।

औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् अधिशेष उत्पादन की खपत के लिये औद्योगिक राष्ट्रों को नये बाजारों की आवश्यकता उत्पन्न हुई। इसने नये बाजारों की उपलब्धता हेतु उपनिवेश बनाने की प्रकृति को जन्म दिया। उपनिवेशों के माध्यम से औपनिवेशिक राष्ट्र को जहाँ अपने उत्पादित वस्तु हेतु एक बाजार उपलब्ध हो जाता है, वहीं उपनिवेशित राष्ट्र के प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग भी औपनिवेशिक राष्ट्र के लिये सुलभ हो जाता है। ब्रिटेन और भारत के संबंधों को इसी

समीकरण के अन्तर्गत समझा जा सकता है। औपनिवेशिक काल में लंका शायर और यार्क शायर में निर्मित वस्तुओं से जहाँ भारतीय बाजार पटा हुआ था वहीं भारत से कच्चे माल की आपूर्ति ब्रिटेन को बड़े पैमाने पर होती थी। सस्ते श्रम की उपलब्धता हेतु भी उपनिवेश कारगर सिद्ध होते है। अंग्रेजों के द्वारा भारतीय मजदूरों को दक्षिण अफ्रीका या मेडागास्कर या पूर्व एशिया के देशों में ले जाया जाना इसी तथ्य को इंगित करता है। मातृदेश के धर्म के प्रचार हेतु भी उपनिवेश प्रभावी सिद्ध होते है। दक्षिण अफ्रीका, लैटिन अमेरिका एवं एशिया के देशों में औपनिवेशिक शक्तियों के द्वारा वृहद् स्तर पर ईसाईयत के प्रचार-प्रसार का अभियान इस तथ्य का उदाहरण माना जाता है। बड़े पैमाने पर साम्राज्य विस्तार हेतु सैन्य शक्ति के रूप में मानवीय शक्ति की उपलब्धता भी उपनिवेशवाद द्वारा हो जाती है। विश्व भर में ब्रिटेन के साम्राज्य के विस्तार एवं उसकी रक्षा में भारतीय सैनिकों को बड़े स्तर पर लगाया गया था।

उपनिवेशवाद के प्रेरक तत्वों में उग्र राष्ट्रीयता की भावना, नस्लीय श्रेष्ठता का अहंकार आदि भी महत्वपूर्ण है। जर्मनी एवं इटली के औपनिवेशिक विस्तार के पीछे प्रकट रूप से इस प्रकार की भावनाओं को देख जा सकता है। शक्ति में वृद्धि की लालसा भी उपनिवेश बनाने की प्रेरणा को जन्म देता है।

11.3 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के साधन

शासन सत्ता पर आधिपत्य स्थापित करना उपनिवेशवाद का प्रत्यक्ष साधन है। किन्तु उपनिवेश को अपने आधिपत्य में बनाये रखने के लिए विजिए प्रदेश में औपनिवेशिक देश की ही शिक्षा, संस्कृति, भाषा, धर्म, उत्पादन प्रणाली आदि को लागू करने का प्रयास किया जाता है। जिससे उपनिवेशित राष्ट्र की संस्कृति, सभ्यता आदि का उन्मूलन हो जाय। इसके विपरीत नव-उपनिवेशवाद के साधन भिन्न होते हैं। नव-उपनिवेशवाद में विकसित राष्ट्र-अल्पविकसित या विकासशील राष्ट्र को पूँजी, तकनीक, कौशल आदि के सन्दर्भ में परावलम्बी बना देते हैं। नव-उपनिवेशवाद के साधनों में प्रत्यक्ष पूँजी निवेश, अनुदान, आर्थिक विकास के प्रोत्साहन के नाम पर नीतिगत समायोजन प्रमुख है। बहुराष्ट्रीय निगम भी नव-उपनिवेशवाद को प्रोत्साहन देने वाले माध्यम हैं। पश्चिमी संस्कृति एवं जीवन शैली तथा पश्चिमी शिक्षा आदि के प्रसार की नीतियाँ और इनसे जुड़ी योजनायें भी नव-उपनिवेशवाद को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। नव-उपनिवेशवाद के अन्तराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के आड़ में कार्यान्वित होते हुए देखा जा सकता है। इस दृष्टि से विश्व बैंक, अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष आदि भी नव-उपनिवेशवाद के वाहक रहे हैं। इसी कारण विकास शील राष्ट्रों ने इन संस्थाओं के लोकतान्त्रीकरण हेतु समय-समय पर आवाज उठाया है।

नव-उपनिवेशवाद के साधनों में शस्त्रों की आपूर्ति एवं लोकतन्त्र या विश्वशान्ति की रक्षा के नाम पर हस्तक्षेप का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। समकालीन अन्तराष्ट्रीय राजनीति में उर्जा, संचार, अन्तरिक्ष प्राद्यौगिकी आदि के क्षेत्र में गरीब राष्ट्रों की अमीर राष्ट्रों पर निर्भरता भी नव-उपनिवेशवाद के ही स्वरूप हैं।

11.4 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के लाभ

लोकतान्त्रिक चेतना एवं स्वतन्त्रता समानता तथा न्याय जैसी अवधारणाओं की लोकप्रियता के आज के अन्तराष्ट्रीय राजनीति में उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद को आलोचना की दृष्टि से देखा जाता है। किन्तु एक लम्बे समय तक उपनिवेशवाद को सभ्य जातियों

के पवित्र कर्तव्य के रूप में भी देखा जाता था। इस दृष्टि से उपनिवेशवाद ने एशिया, अफ्रीका एवं लैटिन अमेरिका के देशों में सभ्यता का प्रचार-प्रसार किया। यद्यपि, इस दृष्टिकोण में जातीय अहंकार एवं नस्लीय श्रेष्ठता के बीज भी छिपे हुए हैं क्योंकि, पश्चिम की जातियों ने अपनी सभ्यता एवं नस्ल को श्रेष्ठ समझकर ही उसके प्रसार एवं आरोपण का प्रयास किया। तथापि, उपनिवेशवाद के निम्नलिखित सकारात्मक प्रभावों को भी रेखांकित किया जा सकता है।

उपनिवेशवाद ने औद्योगिक क्रान्ति के लाभों से विश्व को परिचित कराया। इसके साथ ही पश्चिम के शिक्षा एवं साहित्य से भी शेष विश्व को परिचित कराने में उपनिवेशवाद का महत्वपूर्ण योगदान है। स्वतन्त्रता, समानता, न्याय, लोकतन्त्र और राष्ट्रवाद जिस रूप में आज विश्व के विभिन्न देशों में प्रचलित है, उनका आधुनिक काल में जन्म यूरोप में ही हुआ है और उपनिवेशवाद के माध्यम से इन मूल्यों का विस्तार हुआ है। इसी प्रकार विधि के शासन का सिद्धान्त एवं मानवाधिकार की अवधारणा को भी उपनिवेशवाद के माध्यम से प्रचार-प्रसार मिला है। चिकित्सा की एलोपैथिक पद्धति और आधुनिक विज्ञान तथा धर्मनिरपेक्षता की धारणा भी उपनिवेशवाद के साथ ही साथ पश्चिम से शेष विश्व में आया है।

उपनिवेशवाद ने दुनियाँ के विभिन्न अलग-थलग पड़ी हुई संस्कृतियों को भी परस्पर अन्तःक्रिया हेतु अवसर उपलब्ध कराया है। इसने नवीन व्यापारिक मार्गों के खोज को भी प्रोत्साहित किया। उपनिवेशवाद के समान ही नव-उपनिवेशवाद को भी कुछ सकारात्मक पहलू है। अल्पविकसित एवं गरीब राष्ट्रों को विदेशी पूँजी तकनीक एवं कौशल को उपलब्ध कराने में नव-उपनिवेशवादी प्रवृत्तियों का योगदान हैं।

11.5 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के दुष्परिणाम

उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद ने अन्तराष्ट्रीय राजनीति को केन्द्र एवं परिधि में विभाजित कर दिया है। इन नीतियों को अपनाये जाने के परिणाम स्वरूप आज दुनियाँ के लगभग 80 लोगों को विश्व के कुल 20 संसाधनों पर ही जीवन निर्वाह करना पड़ता है, जबकि शेष 20 लोगों के द्वारा 80 संसाधनों का उपयोग किया जा रहा है।

उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद ने राष्ट्रीय सम्प्रभुता को मात्र सैद्धान्तिक धारणा बनाकर रख दिया है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता और समानता भी व्यावहारिक धरातल पर अत्यन्त सीमित हो गये हैं। सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा, आर्थिक विकास की योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन, प्रतिरक्षा प्रबंधन एवं विकास जैसे राष्ट्रीय महत्व के निर्णय भी औपनिवेशिक शाक्तियों द्वारा नियन्त्रित और निर्देशित हो रहे हैं।

औपनिवेशिक शक्तियों के द्वारा अल्पविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में जातीय, साम्प्रदायिक, धार्मिक विद्वेश की भावनाओं को भी प्रश्रय दिया जाता है। इन प्रवृत्तियों द्वारा विस्फोटक रूप ग्रहण करने पर औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा सैन्य हस्तक्षेप भी किया जाता है। इराक, अफगानिस्तान, लीबिया, सीरिया इत्यादि राष्ट्रों में अमेरिका के द्वारा किया जाने वाला हस्तक्षेप ऐसे ही समीकरण से उत्पन्न हुए दृष्टान्त हैं।

उपनिवेशवाद के परिणाम स्वरूप दो विश्वयुद्ध और उसमें भयावह नरसंहार से दुनियाँ अच्छी तरह परिचित है। नव-उपनिवेशवाद के दुष्परिणाम के रूप में शस्त्रों की प्रतिस्पर्धा भी सर्व विदित है। प्रायः सभी नव-औपनिवेशिक राष्ट्रों की अर्थ व्यवस्था में शस्त्र उद्योग का मुख्य योगदान है। अतः ऐसे राष्ट्र दुनियाँ में संघर्ष की स्थिति को बनाये रखना चाहते हैं ताकि उन्हें शस्त्रों की

आपूर्ति के माध्यम से भारी मुनाफा प्राप्त हो। आज भी विश्व भर में पश्चिमी ताकतों के सैकड़ो सैनिक उड्डे विद्यमान हैं, जिनके माध्यम से वे क्षेत्र विशेष में नियन्त्रण स्थापित करते है।

उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद ने गरीब राष्ट्रों को स्वावलम्बी बनने से रोक दिया है। विदेशी पूंजी, तकनीक एवं विदेशी कौशल पर निर्भरता ने गरीब राष्ट्रों को परावलम्बी बना दिया है। बहुराष्ट्रीय निगमों के लाभांश के रूप में गरीब राष्ट्रों से सम्पदा का एवं धन का अपवाह निरन्तर विकसित राष्ट्रों को हो रहा है। पूँजीगत संयत्रों के लिये जहाँ गरीब राष्ट्र अमीर राष्ट्रों के मोहताज बनते जा रहे हैं, वहीं गरीब राष्ट्रों के सस्ते श्रम का लाभ विकसित राष्ट्र उठा रहे हैं।

उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के दुष्परिणाम स्वरूप पश्चिमी सभ्यता एवं उपभोगवाद की प्रवृत्तियों को भी प्रोत्साहन मिला है। इससे दुनियाँ भर में एकरूपता के आरोपण को बढ़ावा मिला है और सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विविधताओं का लोप हो रहा है। नव उपनिवेशवाद के कथित तौर पर लोकतन्त्र को बढ़ावा दिया है, किन्तु यथार्थ यह है कि विगत दशकों में प्रक्रियात्मक लोकतन्त्र को भले ही बढ़ावा मिला हो परन्तु मूल्यात्मक लोकतन्त्र का हास हुआ है।

11.6 उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया

औपनिवेशिक शोषण के प्रतिक्रिया स्वरूप महायुद्ध के पूर्व गुलाम राष्ट्रों में राजनीतिक चेतना के प्रतिक्रियात्मक उत्थान ने राष्ट्रवाद की भावना को जन्म दिया। महायुद्ध के पश्चात् गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रादूर्भाव में भी नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया की अहम् भूमिका रही है। गरीब राष्ट्रों के इस अनुभव ने कि विकसित राष्ट्र अपने वर्चस्व से समझौता नहीं करेंगे उन्हें अंकटाड के निर्माण एवं दक्षिण-दक्षिण सहयोग के लिये प्रेरित किया। गैट वार्ताओं की विफलता एवं अन्तराष्ट्रीय संस्थाओं के लोकतान्त्रीकरण की मांग के पीछे भी नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया की उल्लेखनीय भूमिका रही है। जी-15 के निर्माण के पीछे भी यह भावना कार्य कर रही है कि गरीब राष्ट्रों को एकजुट होकर नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्ष करना होगा।

नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध गरीब एवं विकासशील राष्ट्रों की उपयुक्त एकजुटता यद्यपित पूर्ण रूप से प्रभावी नहीं रही हैं, तथापि इसने नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध विश्व-लोकमत के निर्माण मे अवश्य योगदान दिया है। नव-उपनिवेशवाद के विरूद्ध सांस्कृतिक प्रतिक्रियायें भी अन्तराष्ट्रीय राजनीति में देखने को मिलती हैं। किन्तु इन प्रतिक्रियाओं को स्वरूप विमर्शीय है और इनका संरचनात्मक आधार तथा प्रभाव अभी स्वरूप ग्रहण करने की दिशा में है। इन प्रक्रियाओं में उत्तर-औपनिवेशिक चिन्तन, युरोप केन्द्रितावाद की आलोचना, नारीवाद आदि प्रमुख है।

11.7 प्रमुख शब्दावली

ओरियेन्टलिज्म : पश्चिमी जगत के द्वारा अपने पूर्वाग्रहों के अनुरूप पूर्व को समझने एवं विश्लेषित करने के लिये विकसित की गई ज्ञानविद्या। एडवर्ड सईद ने इसी शीर्षक से एक प्रभावशाली ग्रन्थ भी लिखा है।

अंकटाड - यह शब्द न्छब्जजक का हिन्दी संस्कारण है। यह शब्द यूनाइटेड नेशन्स कान्फ्रेन्स ऑन ट्रेड एण्ड डेवलपमेंट का लघु रूप है। 30 दिसम्बर 1964 को संयुक्त राष्ट्र संघ के एक स्थायी अंग के रूप में अंकटाड की स्थापना हुई। इस संगठन का उद्देश्य अन्तराष्ट्रीय

व्यापार में गरीब एवं विकासशील राष्ट्रों के हितों का प्रतिनिधित्व करना और उनके व्यापार असन्तुलन को कम करना है।

जी-15- यह विकासशील राष्ट्रों का एक संगठन है। इसका निर्माण गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के बेलग्रेड शिखर सम्मेलन (1989) के प्रयासों से हुआ। यह संगठन विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य सार्थक संवाद हेतु कार्य करता है और विकासशील राष्ट्रों के मध्य आपसी सहयोग को बढ़ावा देने हेतु कार्य करता है।

11.8 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

- ए0 लिंकलेटर (1992), द कोश्चन ऑफ द नेक्स्ट स्टेज इन इन्टर नेशनल रिलेशन्स थियोरीः ए क्रिटिकल थियोरिटिकल प्वाइन्ट ऑफव्यू, मैकमिलन, लन्दन।
- सी0 वेबर (1995) सिमुलेटिंग सावरेन्टीः इन्टरवेंशन, द स्टेट एण्ड सिमबोलिक एक्सचेन्ज, कैम्ब्रिज यूनिवरसिटी प्रेस, कैम्ब्रिज।
- जे0 इस्टिंगज (2002), ग्लोबलाजेशन एण्ड इट्स डिसकटेन्टस, डबल्यू नौर्टन एण्ड कम्पनी, न्यूयाक।
- सी0 के0 विल्बर एवं के0 पी0 जेम्सन, सं0 (1992), पॉलिटिकल इकोनामी ऑफ डेवलपमेन्ट एण्ड अण्डर डेवलपमेन्ट, मैग्राहिल कॉलेज, न्यूयार्क।

11.9 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. उपनिवेशवाद एवं नव-उपनिवेशवाद के मध्य अन्तर स्पष्ट करें?
2. नव-उपनिवेशवाद के विभिन्न साधनों को समझाइये?
3. नव-उपनिवेशवाद के दुष्परिणामों को रेखांकित करें?
4. उपनिवेशवाद का स्वरूप राजनीतिक है, जबकि नव-उपनिवेशवाद का स्वरूप आर्थिक है। इस कथन की समीक्षा कीजिए?

11.10 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. औपनिवेशिक शोषण के दो कारणों का उल्लेख करें।
2. रंगभेद पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
3. अश्वेत आन्दोलन के दो उपलब्धियों का उल्लेख करें।
4. दक्षिण-दक्षिण संवाद की दो उपलब्धियों का रेखांकन करें।

11.11 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पियर्सन रिपोर्ट किस वर्ष प्रकाशित हुआ?

   क- 1969 ख- 1970 ग- 1968 घ-1971

2. विश्व निर्भरता सिद्धान्त का विकास किसने किया?

   क- मार्टन काप्लान ख- इमैनुएल वॉलरस्टीन ग- फ्रेडरिक लिस्ट

   घ- राबर्ट रीक

3. इन डिफेन्स ऑफ ग्लोबलाइजेशन के लेखक कौन हैं?

   क- अमर्त्यन सेन ख- वाल्डेन बेलो ग- जगदीश भगवती

   घ- डेविड हेल्ड

4. नव-उपनिवेशवाद के साधन हैं?

   क- वैश्विक आर्थिक संगठन ख- संचार माध्यम

   ग- वैश्विक कारपोरेट उद्यम घ- उपयुर्क्त सभी

   उत्तरः 1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ।

इकाई-12

तीसरी दुनिया के देशों की सुरक्षा एवं समस्याएं

इकाई रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 तीसरी दुनियों के देशों की सुरक्षा समस्या का स्वरूप

12.2 सुरक्षा की परम्परागत समस्याएँ

12.3 सुरक्षा की गैर परम्परागत समस्याएँ

12.4 तीसरी दुनियाँ के सुरक्षा समस्या के समाधन के प्रमुख प्रयास

12.5 प्रमुख शब्दावली

12.6 महत्वपर्ण सहायक ग्रन्थ

12.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

12.8 लघु उत्तरीय प्रश्न

12.9 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में तीसरी दुनियाँ की सुरक्षा समस्या उसके स्वरूप एवं सुरक्षा समस्या के समाधान के प्रमुख प्रयासों का उल्लेख किया गया है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप,

- तीसरी दुनियाँ की सुरक्षा समस्या के निहितार्थ को समझ पायेंगे।
- तीसरी दुनियाँ की सुरक्षा समस्या के विविध रूपों को जान पायेंगे।
- सुरक्षा की परम्परागत एवं गैर परम्परागत धारणा को समझते हुए तीसरी दुनियाँ के सुरक्षा समस्या का आकलन कर पायेंगे।
- तीसरी दुनियाँ के सुरक्षा के प्रश्न के समाधान के प्रयासों की विवेचना कर पायेंगे।
- समग्र रूप से तीसरी दुनियाँ की स्थिति का मूल्यांकन कर पायेंगे।

12.1 तीसरी दुनियों के देशों की सुरक्षा समस्या का स्वरूप

तीसरी दुनियाँ शब्द की प्रासंगिकता समकालीन अन्तराष्ट्रीय राजनीति से घटती जा रही है। इसका कारण दूसरी दुनियाँ का अवसान है। जब दूसरी दुनियाँ रही है नहीं तब तीसरी

दुनियाँ शब्द का प्रयोग अप्रासंगिक है। वस्तुतः महायुद्धोत्तर काल में विकसित एवं उदारवादी, पूँजीवादी राष्ट्रों को प्रथम दुनियाँ कहा गया। सोवियत गुट के समाजवादी राष्ट्रों को द्वितीय दुनियाँ का नाम दिया गया और अल्प विकसित, गरीब गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों को तीसरी दुनियाँ का नाम प्राप्त हुआ।

तीसरी दुनियाँ के देशों की सुरक्षा समस्या का स्वरूप अत्यन्त जटिल है। द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् स्वतन्त्र होने वाले इन राष्ट्रों के समक्ष सुरक्षा के आन्तरिक एवं बाहय चुनौतियों का अम्बार लगा रहा है। इन राष्ट्रों को जहाँ एक ओर अपनी स्वतन्त्रता एवं सम्प्रभुता की रक्षा एक बड़ी चुनौती थी वहीं राज निर्माण एवं राष्ट्र निर्माण की चुनौती भी एक महत्वपूर्ण समस्या है। तीसरी दुनियाँ की सुरक्षा चुनौतियों को निम्नलिखित दो संवर्गों में विभाजित करके समझा जा सकता है।

12.2 सुरक्षा की परम्परागत चुनौतियों

महायुद्ध के तत्काल बाद स्वतन्त्र हुए तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों के समक्ष अपनी भौगौलिक अक्षुणता को बनाये रखना एक महत्वपूर्ण चुनौती थी। इस चुनौती के दो रूप रहे हैं। प्रथम पड़ोसी राष्ट्रों के साथ सीमा विवाद-इस श्रेणी में भारत एवं पाकिस्तान जैसे राष्ट्रों का उदाहरण लिया जा सकता है। द्वितीय, किसी विस्तारवादी राष्ट्र के नीतियों से उत्पन्न सीमा सुरक्षा का प्रश्न इस श्रेणी मे चीन एवं भारत तथा चीन की विस्तारवादी नीति से अक्रान्त पूर्वी एशियाई राष्ट्रों का उदाहरण लिया जा सकता है। सीमाओं की सुरक्षा के लिये बड़े पैमाने पर प्रतिरक्षा भार का वहन भी इन उभरती हुई अर्थ व्यवस्थाओं के समक्ष चुनौती के रूप में ही प्रस्तुत हुई है।

शीतयुद्ध के कारण दोनो प्रतिस्पर्धी गुटों की विस्तारवादी नीति के दुष्चक्र से अपने को बचाना भी तीसरे विश्व के लिए एक अहम् चुनौती रही है। शक्ति गुटों की राजनीति में उलझने का स्वाभाविक परिणाम अपने सम्प्रभुता को गिरवी रखना था। किन्तु जहाँ गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने इस दिशा में सकारात्मक पहल किया और सैनिक गुटों से अपने विकासशील राष्ट्रों ने अपना उचित बचाव नहीं किया।

राष्ट्र निर्माण एवं राष्ट्रीय एकता के लक्ष्य को प्राप्त करना भी तीसरी दुनियाँ के समक्ष जटिल चुनौती रही है। प्रायः इन सभी राष्ट्रों में जातीय, सांस्कृतिक, भाषायी, धार्मिक विविधता बड़े स्तर पर विद्यमान है। ऐसी स्थिति में इन नव-स्वतन्त्र राष्ट्रों में समाज के सभी वर्गो तक सामाजिक, आर्थिक विकास के लाभों को पहुँचाना एवं सभी समूहों को राष्ट्र की मुख्यधारा में शामिल करना कठिन कार्य था। उक्त लक्ष्य की प्राप्ति के लिये विधि के शासन एवं संविधानवाद की स्थापना, विकास कार्यों के समुचित प्रबन्धन एवं राजनीतिक सहभागिता में वृद्धि के प्रयत्न रणनीतिक कदम तो अवश्य थे किन्तु इसके लिए अपेक्षित पृष्ठभूमि का अभाव तीसरी दुनियाँ में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

राजनीतिक स्थायीत्व का अभाव और योग्य नेतृत्व के अभाव ने भी तीसरी दुनियाँ की सुरक्षा चुनौती को सदैव प्रभावित किया है। जातिगत एवं वंशगत नेतृत्व लोकतान्त्रिक चेतना के उभार के साथ-साथ अपने आपको समायोजित नहीं कर सका। जिसके परिणाम स्वरूप नेतृत्व ने तीसरी दुनियाँ के अनेक राष्ट्रों में हिंसा का सहारा लिया। श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल आदि राष्ट्रों में इसी समीकरण ने सुरक्षा चुनौती के प्रश्न को खड़ा किया। लैटिन अमेरिकी देशों में भी राजनीतिक स्थायित्व का अभाव एवं योग्य नेतृत्व का अभाव एक प्रमुख चुनौती के रूप में उपस्थित है। लिबिया इराक, अफगानिस्तान जैसे राष्ट्रों में भी इस तत्व को देखा जा सकता है।

प्राकृतिक संसाधनों के समुचित दोहन एवं प्रबन्धन हेतु पर्याप्त पूँजी, तकनीक एवं श्रम कौशल की समुचित उपलब्धता के अभाव के कारण भी तीसरी दुनियाँ के राष्ट्र सुरक्षित नहीं है। पूँजी एवं तकनीक हेतु विकसित राष्ट्रों पर निर्भरता जहाँ इनके स्वतन्त्र निर्णय की क्षमता को सीमित करती है, वहीं इनके अभाव में विकास को गति दे पाना सम्भव नहीं होता है। समुचित आर्थिक विकास के अभाव में जन असंतोष एवं विडोर की सम्भावना सदैव बनी रहती है और यही तीसरी दुनियाँ की नियति बनी हुई है।

तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों की सुरक्षा का प्रश्न जातीय संघर्ष एवं साम्प्रदायिक तनाव जैसे विभाजनकारी शक्तियों से भी प्रभावित रहा है। श्रीलंका में सिंहली एवं तमिल का संघर्ष, इराक में कूर्दों का प्रश्न ऐसे ही विभाजनकारी शक्तियों के उदाहरण है। धार्मिक आधार पर भारत का विभाज अन्तराष्ट्रीय राजनीति के सबसे त्रासद विभाजनों में सम्मिलित है। अफ्रीकी देशों के जातीय संघर्ष में विगत दशकों में लाखें लोगों को अपने जीवन की कुर्बानी देनी पड़ी है।

12.3 सुरक्षा की गैर परम्परागत चुनौतियाँ

तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों को समकालीन विश्व में सुरक्षा की कुछ ऐसी चुनौतियों से दो-चार होना पड़ रहा हैं जो प्रत्यक्ष आक्रमण एवं सम्प्रभुता के प्रत्यक्ष हनन जैसा नहीं है। ऐसी चुनौतियों को गैर परम्परागत के सुरक्षा चुनौती के रूप में देखा जा रहा है। ऐसी चुनौतियों में नव-उपनिवेशवाद एवं नव-साम्राज्यवाद का महत्वपूर्ण स्थान है। नव-उपनिवेशवाद एवं नव-साम्राज्यवाद विकासशील राष्ट्रों के शोषण एवं उन पर नियन्त्रण स्थापित करने की विकसित राष्ट्रों की वह नीतियाँ हैं जिसे वे परम्परागत उपनिवेशवाद के अवसान के बाद से अपना रहे है। यह ऐसी नीतियाँ जिनके द्वारा विकसित राष्ट्र तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों को परावलम्बी बना रहे हैं। यह परवलम्बन अत्यन्त जटिल प्रकृति की है। यह पूँजी तकनीक एवं श्रम कौशल की पश्चिमी श्रेष्ठता के समर्थन की प्रकृति से आरम्भ होता है और अन्ततः उनका अनुगामी बनकर रह जाता है। संचार माध्यमों पर वर्चस्व के प्रभाव से पश्चिमी जगत ने अपनी तकनीकी श्रेष्ठता और आर्थिक विकास के प्रतिमान की श्रेष्ठता के समर्थन हेतु मानसिकता का निर्माण किया है। इस मानसिकता के आलोक में पहले तो तीसरी दुनियाँ के राष्ट्र विकास के पश्चिमी प्रतिमान को अपनाते हैं और बाद में पश्चिमी पूँजी, तकनीक एवं श्रम कौशल के प्राप्त करने के लिए पश्चिमी राष्ट्रों के दिशा-निर्देश का पालन करने के लिये बाध्य हो जाते है।

परा राष्ट्रीय पूँजी, अन्तराष्ट्रीय वित्तीय संस्थायें, गुणवत्ता एवं मानक निर्धारित करने हेतु गठित अन्तराष्ट्रीय संस्थायें ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा विकसित राष्ट्र तीसरी दुनियाँ के देशों में हस्तक्षेप करते हैं। फलतः तीसरी दुनियां के राष्ट्र स्वतन्त्र होते हुए भी आर्थिक निर्णय के क्षेत्र में परावलम्बी बन जाते हैं।

तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों की संस्कृति एवं भाषा भी अक्षुण नहीं रह गयी है। विदेशी पूँजी अपने साथ विदेशी संस्कृति भी लेकर आती हैं। इसी प्रकार प्रिंट एवं इलेक्ट्रानिक मीडिया पर विकसित देशों की पकड़ ने भी पाश्चात्य संस्कृति एवं उपभोक्तावादी मनोवृत्ति के सतत् प्रसार के प्रयास में लगी हुई है। जिसके परिणाम स्वरूप गरीब राष्ट्रों की संस्कृति एवं भाषा की जीवन क्षीण होती जा रही है।

तीसरी दुनियाँ की सुरक्षा के मार्ग में पर्यावरण के क्षरण से उत्पन्न चुनौती आज एक बड़ी चुनौती बन गयी है। तीव्र आर्थिक विकास की चुनौती के समाधान हेतु परम्परागत तकनीक या अर्ध उन्नत तकनीक का प्रयोग इन देशों की विवषता है। किन्तु, ऐसे तकनीक पर्यावरण प्रदुषण

को जन्म देने के लिये उत्तरदायी होते है। पर्यावरण संरक्षण आधारित मानकों का उत्पादन में समुचित प्रयोग न कर पाने के कारण इन देशों का निर्यात भी दुष्प्रभावित होता है। वास्तव में पर्यावरण संरक्षण की चुनौती के साथ तीव्र आर्थिक विकास की चुनौती में समायोजन इन देशों द्वारा अभी भी नहीं बैठाया जा सका है।

अरब के बसन्त ने तीसरी दुनियाँ की सुरक्षा चुनौती के एक नये पहलू को अन्तराष्ट्रीय पटल पर ला खड़ा किया है। वह है समावेशी राजनीति एवं समावेशी विकास के अभाव से उत्पन्न चुनौती। इन देशों में मुख्य धारा राजनीति एवं आर्थिक विकास के प्रयोग ने बड़े पैमाने पर बहिष्करण को जन्म दिया है। बहिष्कृत समूहों में व्याप्त असन्तोष आज तीसरी दुनियाँ की महत्वपूर्ण सुरक्षा चुनौती बन गई है। यह एक ऐसी सुरक्षा चुनौती हैं जिसका समाधान बल के प्रयोग पर निर्भर नहीं करता हैं बल्कि सुशासन एवं लोकतन्त्रान्त्रिक अधिकारों एवे अवसरों का समुचित उपलब्धता ही इसका समाधान हैं। किन्तु वंशवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद एवं संसाधनों के अभाव एवं उनके समुचित प्रबन्धन के अभाव के कारण यह अत्यन्त जटिल है।

आतंकवाद की चुनौती भी तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों के लिए एक गम्भीर समस्या है। धार्मिक एवं जातीय कट्टरता के साथ-साथ विकास का अभाव आतंकवाद के पनपने का अवसर उपलब्ध कराते हैं और यह अवसर तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों में बड़ी मात्रा में विद्यमान है। पाकिस्तान, अफगानिस्तान, इराक, लीबिया, जैसे देशों में इन्हीं समीकरणों के बीच आतंकवाद का प्रचार-प्रसार हुआ है। आतंकवाद मात्र उस देश के लिये ही चुनौती नहीं होती जिसके विरूद्ध इसका प्रयोग किया जाता है, बल्कि उस देश के लिये भी होती है जिस देश में यह फल-फूल रहा होता है। भारत के विरूद्ध पाकिस्तान द्वारा आतंकी गतिविधियों का समर्थन आज स्वयं पाकिस्तान के लिये ही आत्मधाती बना हुआ है। आतंकवाद का व्यवसाय नशीले पदार्थों एवं प्रतिबन्धित हथियारों की तस्करी के बल पर अपनी जड़े फैलाता हैं। यह दोनों ही तीसरी दुनियाँ के युवाओं को दिग्भ्रमित करने का कार्य करते है।

12.4 तीसरी दुनियाँ के सुरक्षा समस्या के समाधान के प्रमुख प्रयास

तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों ने अपनी समस्या को समझते हुए इस दिशा में कुछ ठोस पहल भी दिया है। ऐसे प्रयासों मे उदारवादी लोकतन्त्र की स्थापना, समावेशी विकास एवं सम्पोष्य विकास हेतु पहल मुख्य है। परम्परागत सुरक्षा की चुनौतियों के समाधान हेतु प्रतिरक्षा संसाधनों के विकास एवं सुरक्षा बलों के आधुनिकी कला की दिशा में प्रायः सभी विकासशील राष्ट्र प्रयत्नशील है।

विकसित राष्ट्रों के शोषण से बचाव हेतु भी तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के भीतर और बाहर अनेक प्रयत्न किये हैं। इन प्रयत्नों में अकराड एवं जी-77, जी-21 एवं क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण है। सार्क एवं आशियान के माध्यम से एशियाई राष्ट्र सहयोग एवं समग्र विकास के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील हैं। इसी प्रकार लाफ्टा लैटिन अमेरिकी देशों में आर्थिक सहयोग को बढ़ावा दे रहा है। ओपेक के माध्यम से मध्यपूर्व के राष्ट्र अपनी तेल सम्प्रभुता का उपयोग कर रहे है।

गुटनिरपेक्षता का मंच भी तीसरी दुनियाँ के शब्दों को नव-उपनिवेशवाद एवं नव-साम्राज्यवाद के प्रतिरोध एवं आपसी सहयोग के माध्यम से सुरक्षा चुनौतियों को समाधान का विकल्प उपलब्ध कराता है। इस मंच के माध्यम से अन्तराष्ट्रीय संस्थाओं के लोकतान्त्रीकरण की माँग भी सदैव होती रही है जो वस्तुतः तीसरी दुनियाँ के अधिकारों की सुरक्षा की ही माँग है।

इस मंच ने आतंकवाद के विरूद्ध तीसरी दुनियाँ की एकजुटता के लिये घोषणा पत्र जारी किया है और इस दिशा में प्रयासशील है।

तथापि, आज भी तीसरी दुनियाँ के राष्ट्र विकसित राष्ट्रों के हस्तक्षेप एवं आन्तरिक कमजोरियों के कारण असुरक्षित बने हुए हैं। सोवियत संघ के विघटन के बाद तीसरी दुनियाँ के राष्ट्रों के समक्ष सौदेबाजी का विकल्प अत्यन्त सीमित हो गया है। एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था में विकासशील राष्ट्रों की सुरक्षा का प्रश्न एक सर्वाधिक ज्वलन्त अन्तराष्ट्रीय प्रश्न बन गया है।

12.5 प्रमुख शब्दावली

- अरब को बंसत - अरब जगत में लोकतन्त्र की बहाली के लिये जन चेतना के उभार को व्यक्त करने लिये इस शब्द का प्रयोग हो रहा है।

- चमेली क्रान्ति - ट्यूनिशिया में लोकतन्त्र की स्थापना हेतु जन आन्दोलन को एवं उसके द्वारा लोकतन्त्र की बहाली को चमेली क्रान्ति का नाम दिया गया है।

- सम्पोष्य विकास - पर्यावरण संरक्षण की धारणा के साथ आर्थिक विकास का समायोजन। सतत विकास एवं हरित विकास का भी इसी अर्थ में प्रयोग होता है।

- समावेशी विकास - विकास की योजना एवं प्रक्रिया से कोई समूह वंचित न रह जाय, बल्कि सभी को विकास का लाभ मिल सके। इस धारणा को समावेशी विकास कहा जाता है।

12.6 महत्वपूर्ण सहायक ग्रन्थ

- हर्ल ए एवं एन वुडस् (सं0), (1999), इनइक्वालिटी, ग्लोबलाइजेशन एण्ड वर्ल्ड पालिटिक्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड।

- स्वानसन, टी.एम. सं. (1998) द इकोनामिक्स एन्ड इकोलॉजी ऑफ बायोडायवरसिटी डिक्लाइनः द फोर्सेज ड्राइविंग ग्लोबल चेन्ज, कैम्ब्रिज यूनिवरसिटी प्रेस, न्यूयार्क।

- एन वुडस (1996), एक्सप्लेनिंग इन्टर नेशनल रिलेशन्स सिन्स 1945, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नयूयार्क।

12.7 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. तीसरी दुनियाँ के सुरक्षा समस्या पर एक निबंध लिखें?
2. तीसरी दुनियाँ के गैर परम्परागत सुरक्षा खतरों का विश्लेषण कीजिए?
3. तीसरी दुनियाँ के सुरक्षा खतरों के समाधान हेतु सुझाव दीजिए?
4. क्या विकास का दुष्चक्र विकासशील राष्ट्रों के लिए समस्या बन गया है। अपने उत्तर के पक्ष में तर्क प्रस्तुत कीजिए?

12.8 लघु उत्तरीय प्रश्न

1. एशियाई क्षेत्रीय आर्थिक संगठनों में से किन्हीं दो का नाम बताइये?
2. तीसरी दुनियाँ के किन्हीं दो नरजातीय संघर्षों का उल्लेख करें।
3. फ्रीडम एट मिडनाइट के लेखक का नाम बताइयें?
4. गुट निरक्षेप संगठन में सम्मिलित किन्हीं दो नवप्रवेशी राज्यों का नाम बताइयें।

12.9 अति लघु उत्तरीय प्रश्न

1. द्वितीय महायुद्ध के पश्चात पश्चत तीसरी दुनिया के उद्‌भव को किसने प्रत्यक्ष प्रभावित किया।

   क- औपनिवेशिक शक्तियों का पराभाव ख- आर्थिक समृद्धि

   ग- धार्मिक एकता घ- उपयुर्क्त में से कोई नहीं

2. चमेली क्रान्ति का संबंध किस देश से है?

   क- पाकिस्तान ख- ट्यूनिशिय ग- घाना घ- मिस्र

3. मिजो विद्रोही कहाँ सक्रिया हैं?

   क- बांग्लादेश ख- भुटान ग- भारत घ- श्रीलंका

4. मधेशी आन्दोलन का संबंध किस देश से है?

   क- श्रीलंका ख- पकिस्तान ग- मालदीव घ- नेपाल

   उत्तरः 1-क, 2-ख, 3-ग, 4-घ।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

खण्ड – 5

शीतयुद्ध का अन्त और उसके भावी दृष्टिकोण

इकाई – 13 **125**

बदलती विश्व व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण

इकाई – 14 **133**

उत्तर दक्षिण दृष्टिकोण संवाद

इकाई – 15 **143**

विश्व व्यवस्था का बहुध्रुवीयकरण

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. एम. पी. सिंह – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, 34 उत्तरांचल अपार्टमेंट, 5, आईपी एक्सटेंशन पटपड़गंज, नई दिल्ली

(2) **प्रो. एस.पी. एम त्रिपाठी – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

(3) **प्रो.एल.आर.गुर्जर – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान

(4) **डॉ.दीपशिखा श्रीवास्तव – सचिव**
शैक्षणिक परामर्शदाता ,राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज

लेखक

1. **प्रो0 संजय श्रीवास्तव** — **प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान,** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय **(इकाई–04, 05, 15)**
2. **डॉ0 विश्वनाथ मिश्रा** — **असि0 प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान** आर0 महिला पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई– 06, 07, 08, 09, 10, 11, 12)**
3. **डॉ0 स्वाती सुचरिता नन्दा** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई–01, 02, 03, 21, 22, 23)**
4. **डॉ0 अर्चना सुदेश मैथ्यू** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** पी0जी0 कालेज छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश **(इकाई–13, 14, 16, 17, 18)**
5. **डॉ दीपशिखा श्रीवास्तव** — **शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान** यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज **(इकाई– 19, 20)**

संपादक / परिमापक

डॉ. नागेश्वर प्रसाद शुक्ला — प्राचार्य गन्ना उत्पादक पी0जी0 कालेज, बहेड़ी, बरेली

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव, — शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

(मुद्रित)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN- 978-93-83328-37-6

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई-13

बदलती विश्व व्यवस्था सम्बन्धी दृष्टिकोण

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 नयी विश्व व्यवस्था : अभिप्राय एवं नवीन प्रवृत्तियाँ

13.2.1 अभिप्राय

13.2.2 नूतन प्रवृत्तियाँ

13.3 विविध दृष्टिकोण

13.3.1 यथार्थवादी दृष्टिकोण

13.3.2 उदारवादी दृष्टिकोण

13.3.3 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

13.4 विभिन्न देशों के दृष्टिकोण

13.4.1 अमेरिकी दृष्टिकोण

13.4.2 रूसी दृष्टिकोण

13.4.3 चीनी दृष्टिकोण

13.4.4 यूरोपीय दृष्टिकोण

13.4.5 विकासशील देशों का दृष्टिकोण

13.5 सारांश

13.6 शब्दावली

13.7 बोध प्रश्न

13.8 संदर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई में शीतयुद्ध के पश्चात् बदलती विश्व व्यवस्था के स्वरूप और सम्बन्ध पर विचार किया गया है।

1. इसका उद्देश्य नई विश्व व्यवस्था के अर्थ और वैश्विक नवीन प्रकृतियों को समझना है।
2. इस सम्बन्ध में विकसित विविध दृष्टिकोण पर प्रकाश डालना जिससे नई विश्व व्यवस्था का निरूपण किया जा सके।

13.1 प्रस्तावना

खाड़ी युद्ध की समाप्ति के पश्चात् अमेरिका के तात्कालिक राष्ट्रपति जार्ज बुश ने सबसे पहले नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की बात की थी और इसके बाद नई विश्व व्यवस्था चर्चा और अध्ययन का प्रमुख बिन्दु बन गया। इसी समय अमेरिकी विद्वान फ्रान्सिस फुकुयामा के 1989 के लेख इतिहास का अन्त ने नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को सैद्धान्तिक आधार प्रदान कर दिया। साम्यवादी हार के पश्चात् उदार लोकतंत्र की स्थापना के साथ नये युग का सूत्रपात मान लिया गया।

13.2 नई विश्व व्यवस्था अभिप्राय एवं नूतन प्रवृत्तियाँ

13.2.1 अभिप्राय

नई विश्व व्यवस्था से हमारा अभिप्राय क्या है? विश्व व्यवस्था की संरचना यू.एन.ओ. यथावत् है। पुरानी व्यवस्थावाद का उन्मूलन नहीं हुआ है। फिर भी हम इसे नई विश्व व्यवस्था कह रहे हैं। इससे भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है। किन्तु इसे नई विश्व व्यवस्था कह रहे हैं। इससे भ्रम उत्पन्न होगा स्वाभाविक है। किन्तु इसे नई विश्वव्यवस्था किस अभिप्राय में लेते हैं? यह जानना आवश्यक है। साम्यवादी व्यवस्थाओं के पतन के पूर्व विश्व दो खेमों में बंटा था। एक का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा था और दूसरे खेमें का नेतृत्व सोवियत रूस कर रहा था। इनमें पारस्परिक वैचारिक विरोध एवं वर्चस्व हेतु संघर्ष था। इससे जो तनाव, अशांति की स्थिति बनती थी उसे ही शीत युद्ध कहा गया। सोवियत संघ के पतन के साथ ही साम्यवादी विचारधारा को करारा झटका लगा और उसकी लौ धीमी हो गयी। अमेरिका का वर्चस्व तथा पूँजीवादी उदारवादी लोकतंत्र की विचारधारा को तेजी से प्रसार का अवसर प्राप्त हो गया। इससे अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं राजनीति के समीकरण तथा अंतर्वस्तु के बदलाव परिलक्षित हुए और यह अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं राजनीति के लिए नई बात थी। यही नूतनता ही नई विश्व व्यवस्था का निरूपण करती है। इसमें नूतनव्यता प्रमुख रूप से जो नूतनता आयी हैं वे हैं विश्व व्यवस्था का द्विध्रुवीय का समाप्त हो जान, शीत युद्ध की समाप्ति, अमेरिकी वर्चस्व की स्थापना, राजनीतिक कारको के स्थान पर आर्थिक कारकों का महत्व बढ़ जान, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में संप्रभु राज्यों के साथ राज्येत्तर संस्थाओं का उभरकर आना आदि।

13.2.2 नूतन प्रवृत्तियाँ

विश्व व्यवस्था में आयी नूतनता के कारण विश्व व्यवस्था के चरित्र में काफी बदलाव आया है। इससे उसे अपने को नये-सिरे से अनुकूलित करना पड़ रहा है। बदलती विश्व व्यवस्था की प्रकृति को समझने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी इन नूतन प्रवृत्तियों के विषय में जानकारी ले लें। इससे नई विश्व व्यवस्था के निरूपण में भी सहायता प्राप्त होगी। इन उभरती नवीन प्रवृत्तियों को निम्न रूप से स्पष्ट किया जा सकता है -

1. **उदारीकरण को बढ़ावाः-** सोवियत संघ के बिखरने के बाद खुली और उदारवादी अर्थव्यवस्था के समर्थक खुलकर सामने आ गये। मुक्त व्यापार, खुली प्रतिस्पर्धा, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों का बढ़ता प्रभुत्व और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के विस्तार ने उदारवादी लोकतंत्र को ही विकास का एकमात्र रास्ता घोषित कर दिया। अब नागरिक नहीं

उपभोक्ता महत्वपूर्ण हो गये है, वैश्विक एकीकरण और एकरूपता पर बल दिया जाने लगा है और समाजवादी लोकतंत्र के स्थान पर बाजारवादी लोकतंत्र को स्थापित करने के प्रयास तेज हो गये हैं। इसे ही उदारीकरण की संज्ञा प्राप्त हुई है। विकास के लिए उदारीकरण को आवश्यक माना जा रहा है। इसके तहत लाईं जैसे राज्य की समाप्ति, आयात-निर्यात नियमों में ढील, निजी क्षेत्र को बढ़ावा तथा प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण का उदय आदि तत्व गतिशील रहते हैं।

2. **सूचना और संचार क्रांतिः-** विज्ञान और तकनीक के विकास ने दुनिया को छोटा कर दिया है। आज नेटवर्क सोसायटी या सूचना समाज महत्वपूर्ण हो गया है, हर हाथ में मोबाइल मानो अनिवार्य आवश्यकता है। टी.वी. कम्प्यूटर के जरिये सूचना और संचार क्रांति ने मिनटों में दुनिया के किसी भी कोने तक पहुँचना संभव कर दिया है। नई विश्व व्यवस्था में सूचना और संचार माध्यमों पर प्रभुत्व ही शक्ति का परिचायक है और इन माध्यमों पर राष्ट्रों का नहीं बल्कि चार बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ का 90 प्रतिशत सूचना प्रवाह पर नियंत्रण है। इसे कुछ लोग सांस्कृतिक उप निवेशवाद के खतरे के रूप में भी देखते हैं।

3. **एक ध्रुवीय विश्वः-** आज अमेरिका ही शक्ति का केन्द्र बन गया है, इसे ही एक ध्रुवीकरण कहा जाता है। खाड़ी युद्ध हो या इराक पर लगाम लगाना हो या सीरिया में हस्तक्षेप अमेरिका का प्रभुत्व हर जगह है। अमेरिका न केवल सर्वश्रेष्ठ सैनिक शक्ति सम्पन्न है वरन् दुनिया की सर्वशक्तिशाली अर्थव्यवस्था भी है। विश्व बैंक की 2007 की रिपोर्ट के अनुसार विश्व की GDP में अमेरिका का 22.5 प्रतिशत भाग है, इसी के चलते विश्व बैंक हो या संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका का प्रभुत्व हर जगह है। कुछ लोगों का ऐसा भी विचार है कि विश्व एक ध्रुवीय नहीं है। विश्व बहुध्रुवीय हो गया है।

4. **बहुध्रुवीय विश्वः-** आज अमेरिका के वर्चस्व को चुनौती देता चीन तेजी से उभर रहा है। ऐसा अनुमान है कि एक दशक में चीनी अर्थव्यवस्था अमेरिका को पीछे छोड़ सकती है। यूरोपीय संघ की आर्थिक सफलता और एक जुटता ने उसे भी शक्ति का केन्द्र बना दिया है। जापान की तकनीकी श्रेष्ठता उसे सशक्त बना रही है, और विश्व एक ध्रुवीय से बहुध्रुवीयकरण की ओर बढ़ रहा है।

5. **विश्व व्यापार संगठन का बढ़ता प्रभुत्वः-** वर्तमान में WTO के सदस्य राज्यों की संख्या 160 हो गई है। अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का संचालक WTO ही है। यह संस्था न सिर्फ प्रभावशाली है, बल्कि कानूनी दृष्टि से भी सशक्त है। बहुपक्षीय समझौते और उनसे जुड़े कानूनी प्रभावों के चलते नई विश्व व्यवस्था के साधन के रूप भी विश्व व्यापार संगठन सबसे प्रभावी है।

6. **नवीन अन्तर्राष्ट्रीय मुद्देः** - नई विश्व व्यवस्था के मुद्दे भी नवीन है। आज लोकतंत्र बनाम साम्यवाद, निःशस्त्रीकरण, गुटनिरपेक्षता आदि पुराने मुद्दों के स्थान पर मानवाधिकार, पर्यावरण, विश्व व्यापार, सीमापार आतंकवाद नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की माँग, आर्थिक गुटबंदी आदि विषय महत्वपूर्ण हो गये है।

इस प्रकार इन प्रवृत्तियों ने विश्व व्यवस्था के व्यवहार में तीव्रगति से बदलाव किया है। इस बदलाव को ही हम नई विश्व व्यवस्था के नाम से जानते हैं।

13.3 विविध दृष्टिकोण

नई विश्व व्यवस्था को लेकर काफी मतभेद है। लोग अपने-अपने दृष्टिकोण से इस पर प्रकाश डालते हैं। इससे कई दृष्टिकोण अस्तित्व में आये। इसे हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं - विचारधारा के आधार पर और राष्ट्रों की अपनी सोच के आधार पर। विचारधाराओं के आधार पर प्रमुख दृष्टिकोण निम्नवत् है :

13.3.1 यथार्थवादी दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण नयी विश्व व्यवस्था को स्वीकार नहीं करता। साथ ही यथार्थवादी दृष्टि नयी विश्व व्यवस्था की मुख्य विशेषता न्याय को भी नहीं मानता बल्कि यह इसे राज्यों के मध्य सत्ता वितरण में परिवर्तन को मानता है। यथार्थवादियों के अनुसार सोवियत संघ के विघटन से सत्ता समीकरण बदले है। सोवियत संघ ने लम्बे समय तक अमेरिका जापान पर काफी हद तक नियंत्रण करने में सफल रहा था। अमेरिका द्वारा अफगानिस्तान और इराक पर आक्रमण की स्थितियाँ भिन्न होती यदि सोवियत संघ का बिखराव नहीं हुआ होता। महाशक्ति होता। किन्तु अब सत्ता के केन्द्रीयकरण ने न्याय की परिभाषा ही बदल दी है।

13.3.2 उदारवादी दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण द्वारा नयी विश्व व्यवस्था को साम्यवाद की हार और उदार पूँजीवाद की जीत के रूप में देखा जा सकता है। अमेरिकी विचारक फ्रांसिस फुकुयामा के अनुसार उदार पूँजीवाद का अब कोई प्रतिस्पर्धा नहीं रहा। विश्व एकीकृत विश्व व्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। नयी विश्व व्यवस्था में उदार पूँजीवाद ही विकास का एकमात्र मार्ग है। यद्यपि उदार पूँजीवाद के विरोधी भी हैं पर वे बिखरे हुए हैं, जैसे नव माओवाद्, इस्लामिक कट्टरवाद आदि पर अभी उन्हें उदार पूँजीवाद से प्रतियोगिता करने में काफी समय लगेगा।

13.3.3 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

सोवियत संघ के बिखराव के बाद भी विश्व में मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अनेक समर्थक है। इनका मानना है कि उदार लोकतंत्र पुनः दुनिया में जो अमीरी-गरीबी के मध्य जो खाई उत्पन्न कर रहा है तथा उदारीकरण और बाजारीकरण के बढ़ते दुष्परिणामों से मुक्त कराने में मार्क्सवाद ही सक्षम है। अतः अब पुनः मार्क्सवादियों को एकजुट होकर अपनी ताकत बढ़ाने, समाजवादी विकृत्तियों को दूर करने और दुनिया के सामने सशक्त विकल्प के रूप में आने का समय है। वे मार्क्सवाद या साम्यवाद की समाप्ति की घोषणा को एक सिरे से अस्वीकार करते हैं। वे आशावादी है कि पूँजीवादी शोषण और आर्थिक असमानता पुनः मार्क्सवादियों के लिए अवसर प्रदान करेगी।

13.4 विभिन्न देशों के दृष्टिकोण

अभी हमने सैद्धान्तिक विचारधारा के आधार पर विभिन्न दृष्टिकोणों को देखा। अब विश्व के महत्वपूर्ण देशों की सरकारों की दृष्टि के आधार पर नई विश्व व्यवस्था का विवेचन निम्नवत् है

13.4.1 अमेरिकी दृष्टिकोण

अमेरिका स्वयं को दुनिया का सर्वाधिक प्रभावशाली और शक्तिशाली राष्ट्र मानता है। अतः विश्व के नेतृत्व की जिम्मेदारी भी अमेरिका की ही है। लोकतंत्र की रक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय शांति व्यवस्था बनाये रखने वैश्वीकरण की प्रक्रिया तेज करने जैसे उद्देश्यों को पूरा करना अमेरिका आवश्यक मानता है। उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए दूसरे देशों में हस्तक्षेप को भी वह गलत नहीं मानता। विश्व में परमाणु सम्पन्न देशों में वृद्धि न हो, परमाणु बम निर्माण में लगे नये देशों पर प्रतिबन्ध रखना, इराक में संयुक्त राष्ट्र संघ के विरोध के बाद भी हस्तक्षेप करना, अफगानिस्तान में हस्तक्षेप, सीरिया विवाद आदि अनेक अमेरिकी हस्तक्षेप के उदाहरण है, यूरोप जो कि उसका प्रतिद्वन्द्वी हो सकता है, वर्तमान में उसी के पक्ष में है। अतः अमेरिका स्वयं को सर्वशक्तिमान और निर्भय मानता है। यह एक ध्रुवीय व्यवस्था स्थायी नहीं है। इसका अंदेशा भी अमेरिका को है। चीन को प्रतिद्वन्द्वी के तौर पर देखा जा रहा है। यद्यपि अभी अमेरिका और यूरोपीय संघ में आपसी रिश्ते प्रगाढ़ है और अब तक अमेरिका के सुर में सुर मिलाने का काम ही यूरोपीय देश करते रहे हैं। लेकिन अमेरिकी रूस के मतभेद अभी भी सामने आते हैं साथ ही चीन से निपटने के लिए अमेरिका का रवैया भारत के प्रति नम्र और उदार हुआ है, ताकि नई विश्व व्यवस्था में अमेरिका की प्रभुता बनी रहे।

13.4.2 रूसी दृष्टिकोण

शीत युद्ध के दौरान साम्यवादी पताका लिये सोवियत संघ विश्व की दो महाशक्तियों में से एक था। विभाजन के बाद इसे रूस कहा जाने लगा है। रूस घरेलू समस्याओं जैसे आर्थिक विकास, स्वतंत्र हुए नये राष्ट्रों के बीच मतभेद तथा विवादों को निपटाने जैसी समस्या से ग्रसित है। रूस ने यद्यपि खुली अर्थव्यवस्था, निजीकरण और वैश्वीकरण के नये परिवर्तनों के साथ समझौता कर लिया है, साम्यवादी व्यवस्था में जिसका वह घोर विरोधी था फिर भी वैश्विक आर्थिक प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए उसने राष्ट्रीय हित को ध्यान में रखकर अमेरिका, यूरोप और आर्थिक संगठनों जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन आदि से तालमेल बिठानें और उनका विश्वास अर्जित करने का प्रयास कर रहा है। विश्व भले ही रूस को महाशक्ति न माने रूस सदैव स्वयं को महाशक्ति मानता है। अभी अपने विश्व आर्थिक विकास और राजनीतिक, सामाजिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये रूस ने स्वयं को विश्व की समस्याओं से दूर कर लिया है, शस्त्रों की होड़ छोड़कर वह राष्ट्रीय सुधारों में लगा है। इस हेतु अमेरिका, जापान, यूरोप सभी से अपने रिश्ते सुधार रहा है। इसलिए नई विश्व व्यवस्था को लेकर रूस के स्वर मुखर नहीं है, वह सभी परिवर्तनों पर दृष्टि रख रहा है, लेकिन अभी वह किसी भी तरह की प्रतिक्रिया देना नहीं चाहता है।

13.4.3 चीनी दृष्टिकोण

रूस के विघटन के बाद साम्यवादी शक्ति का केन्द्र चीन है। चीन सबसे तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था है। लेकिन नयी विश्व व्यवस्था को लेकर चीन के विचार अलग हैं, चीन का मानना है कि सोवियत संघ के बिखराव से विश्व में व्यापक परिवर्तन हुआ है। कुछ पुरानी समस्याएँ खत्म हुई है, और नये परिवर्तन हो रहे हैं। पर अमेरिका के प्रभुत्व और एक ध्रुवीय विश्व को चीन अस्वीकार करता है। चीन का मानना है कि हम संक्रमण काल में है। दौड़ अभी समाप्त नहीं हुई है। यूरोप में जातीय संघर्ष, वैश्विक आर्थिक मंदी, अमीर-गरीब देशों के मध्य मतभेद बढ़ रहे

हैं, ऐसे में एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था को स्वीकार करना जोखिम भरा है, दुनिया बहुध्रुवीयकरण की ओर बढ़ रही है। चीन, जापान, यूरोपीय संघ, अमेरिकी प्रभुत्व को चुनौती देने में सक्षम है और चीनी दृष्टिकोण के अनुसार बहुध्रुवीकरण ही विश्व में शक्ति सन्तुलन और शांति ला सकता है। चीन के अनुसार नयी विश्व व्यवस्था में प्रत्येक देश के दूसरे देशों के साथ संबंध पंचशील सिद्धांतों पर आधारित होने चाहिए जिसमें अहस्तक्षेप और सहअस्तित्व सबसे प्रमुख है। सोवियत संघ के विघटन ने चीन को बदलाव करने व दुनिया के लिए अपने बाजार खोलने का दबाव बनाया है। साथ ही संचार माध्यमों के बढ़ते प्रभाव से चीन की आन्तरिक स्थिति भी दुनिया के सामने है। अमेरिका और यूरोप मानवाधिकार के मामले पर भी चीन पर दबाव बनाये हुए है। चीन आन्तरिक बदलावों से भी गुजर रहा है। अतः अभी चीनी हित इसी में है कि यह विकासशील देशों से अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध बनाये। विश्व व्यापार संगठन विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में चीनी हित विकासशील देशों के अनुरूप ही है। अतः उक्त मंचों पर चीन विकासशील देशों का सहयोग करता है। चीन को सबसे बड़ा लेकिन महाशक्ति चीन तेजी से अमेरिकी प्रभुत्व को चुनौती देते उभर रहा है।

13.4.4 यूरोपीय दृष्टिकोण

यूरोपीय संघ के एकीकरण की और बढ़ते कदमों ने उसे और भी शक्तिशाली और प्रभावशाली बनाया है आर्थिक सफलता में यूरोपीय संघ को दृढ़ किया है। यूरोपीय साझा बाजार जो आर्थिक एकीकरण से आरम्भ हुआ था, राजनीतिक एकीकरण की ओर बढ़कर यूरोपीय संघ बन गया है। लेकिन अनेक गुट आज भी विद्यमान है। राष्ट्रवाद और ऐतिहासिक युद्धों ने उन्हें एक होने से रोके रखा है। जर्मनी तेजी से ताकतवर देश के रूप में उभरा है। उससे दूसरे यूरोपीय देश सदैव आंतकित रहते हैं, ब्रिटेन अपने दबदबे को बनाये रखना चाहता है। यूरोप के अन्दर छोटे और कमजोर देश खुद को असुरक्षित समझते हैं और सबसे बड़ी बात सोवियत संघ और साम्यवादी ताकतों से निपटने की है। यूरोपीय देश जो एकता दिखा रहे थे वह कारण भी समाप्त हो गया है, सोवियत संघ के विघटन ने पूँजीवाद को विजयी तो घोषित कर दिया पर इस परिवर्तन से यूरोपीय देशों के बीच मतभेद बढ़ गये हैं। सोवियत संघ के भय ने उन्हें एक कर रखा था, अब उनके मतभेद खुलकर सामने आने लगे हैं। यद्यपि आर्थिक हितों ने यूरोपीय देशों को जोड़ रखा है। नई विश्व व्यवस्था को लेकर कोई स्पष्ट दृष्टि यूरोप के पास नहीं है, क्योंकि यूरोप साझा व्यापार, परमाणु प्रसार, पूर्वी यूरोप उभरे जातीय संघर्ष और आर्थिक मंदी की समस्याओं में उलझा हुआ है। साथ ही अमेरिका के साथ बेहतर सम्बन्धों और वैश्विक समस्याओं के प्रति अमेरिकी दृष्टिकोण के प्रति मौन सहमति ही यूरोपीय दृष्टिकोण है।

13.4.5 विकासशील देशों का दृष्टिकोण

पहले विश्व विचारधारा के आधार पर पूंजीवादी और साम्यवादी देशों में बंटा था, अब आर्थिक आधार पर धनी विकसित व औद्योगिक सम्पन्न और निर्धन, विकासशील, समस्या ग्रस्त दक्षिण में बंट गया है। नयी विश्व व्यवस्था का विकासशील देश विरोध करते हैं, क्योंकि नयी विश्व व्यवस्था आर्थिक विषमता को बढ़ाने में सहायक है। नयी विश्व व्यवस्था में निजीकरण और उदारीकरण का बढ़ता दबाव, विश्व व्यापार संगठन और विश्व बैंक में विकसित देशों का प्रभुत्व सभी विकासशील देशों को और गरीब बनाकर हासिए पर ले जायेगा। यद्यपि कुछ विकासशील देशें आशावादी है। उनका तर्क है, कच्चे माल और खनिज तेलों पर विकासशील देशों का अधिकार हैं, इससे नयी विश्व व्यवस्था में उन्हें लाभ मिलेगा जबकि बहुसंख्यक देश इससे

आसंकित हैं। उनका तर्क है, सोवियत संघ के विघटन से अमेरिका पर दबाव कम हुआ है। फलतः विकासशील देशों को दी जाने वाली सहायता में कमी आयेगी उन्हें ऋण भी कठोर शर्तों पर मिलेंगे/बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से धनी देश उनके आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करेंगे। साथ ही उन्हें उदारवादी लोकतंत्र और मुक्त व्यापार के लिये अपने बाजार खोलने पर मजबूर होना पड़ेगा। साथ ही उनके घरेलू उद्योग वैश्विक स्पर्धा में असफल हो जायेंगे और उनकी आसका काफी हद तक सही भी है। वर्तमान में पर्यावरणीय समस्या हो या मानवाधिकार, परमाणु अप्रसार हो या व्यापार के प्रावधान सभी में विकसित देशों के हितों को महत्व मिल रहा है। इसलिए सभी विकासशील देश दक्षिण - दक्षिण सहयोग के मंच जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ WTO, G-77 और गुट निरपेक्ष आन्दोलन में एकजुटता की मांग कर रहे है, जिसे वे नयी विश्व व्यवस्था की मांग कहते हैं, जिसमें संयुक्त राष्ट्र संघ की संरचना में बदलाव और WTO के प्रावधानों में बदलाव सबसे महत्वपूर्ण है। यद्यपि विकासशील देशों के पास संख्या बल है, लेकिन उनके राष्ट्रीय हित, आपसी मतभेद और आपसी संघर्ष उन्हें सशक्त विरोध करने योग्य नहीं बनाते हैं। फलस्वरूप बहुसंख्यक वैश्विक संगठन और व्यापार के नियम दक्षिण के गरीब देशों के विरोध में हैं।

13.5 सारांश

सोवियत संघ के विखंडन से द्विध्रुवीय विश्व, अमेरिका की प्रभुता में एक ध्रुवीय हो गया है। विश्व को एक वैश्विक ग्राम बनाने की प्रक्रिया तेज हो गई है। उदारीकरण, निजीकरण और मुक्त व्यापार का बोलबाला है। उदारवादी लोकतंत्र के पक्षधर बढ़ गये है। विश्व व्यापार संगठन का महत्व बढ़ा है। इस नयी विश्व व्यवस्था से अमेरिका प्रसन्न है। वह इसे ही बनाये रखना चाहता है। यूरोपीय संघ, चीन और रूस अपने हितो के प्रति अधिक संवेदनशील है। वही विकासशील देश आसंकित है। यद्यपि यह व्यवस्था अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रहेगी क्योंकि विश्व बहुध्रुवीकरण की ओर बढ़ रहा है।

13.6 शब्दावली

एकध्रुवीय - शक्ति का एक ही केन्द्र होना

उदारीकरण - आयात निर्यात के प्रतिबन्ध हटाकर अपनी अर्थव्यवस्था दुनिया के लिए खोलना।

13.7 प्रश्न बोध

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. नयी विश्व व्यवस्था से क्या तात्पर्य है?

---

2. नयी विश्व व्यवस्था के संदर्भ में अमेरिकी दृष्टिकोण क्या है?

---

3. नयी विश्व व्यवस्था के संदर्भ में मार्क्सवादी दृष्टिकोण से आप क्या समझते है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. नई विश्व व्यवस्था के संदर्भ में प्रमुख दृष्टिकोणों का वर्णन करते हुए अमेरीकी और यूरोपीय दृष्टिकोण के अंतर को स्पष्ट कीजिए।
2. चीनी दृष्टिकोण व विकासशील देशों के दृष्टिकोण की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सोवियत संघ कब टूटा?

   (अ) 1979, (ब) 1985 (स) 1989 (द) 1995

2. सोवियत संघ के टूटने से कितने स्वतंत्र राज्य अस्तित्व में आये?

   (अ) 10 (ब) 15 (स) 20 (द) 25

3. उदारवादी दृष्टिकोण में विश्व व्यवस्था है -

   (अ) एक ध्रुवीय (ब) द्वि ध्रुवीय (स) बहुध्रुवीय (द) इनमें से कोई नहीं

   उत्तर - 1-(स), 2-(ब), 3-(अ)

13.8 संदर्भ ग्रंथ

- कुर्भ जेम्स, दि शेप ऑफ दि न्यू वर्ल्ड आर्डर, 1991
- रोबर्ट्स ऐडमिनिस्ट्रेशन, ए न्यू एवं इन इण्टरनेशनल रिलेशन्स, इंटरनेशनल अफेयर्स 67, 1991, पृ. 509-25
- ओल्सन, विलियम सी और ग्रुम, ए.जे.आर.ए इण्टरनेशनल रिलेशन्स देन एण्ड नाउ ओरिजिन्स एण्ड ट्रेण्ड्स इन इंटरप्रेटेसन्स, हार्पर कोलिन्स एकेडेमिक लंदन, 1991

इकाई-14

उत्तर दक्षिण दृष्टिकोण संवाद

इकाई की संरचना

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 उत्तर एवं दक्षिण संवाद से तात्पर्य

14.3 उत्तर-दक्षिण संवाद : प्रमुख मुद्दे

14.4 उत्तर-दक्षिण संवाद के संदर्भ में किये गये प्रमुख प्रयास

14.5 मूल्यांकन

14.6 सारांश

14.7 शब्दावली

14.8 बोध प्रश्न

14.9 संदर्भ ग्रंथ

14.1 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम उत्तर-दक्षिण संवाद पर चर्चा की गयी है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में उत्तर दक्षिण संवाद एवं दक्षिण-दक्षिण सहयोग की आवश्यकता पर चर्चा होती रहती है। वैश्वीकरण, उदारीकरण और बाजारीकरण ने दुनिया के अमीर व गरीब देशों के मध्य खाई को चौड़ा कर दिया है। इस इकाई का उद्देश्य -

1. उत्तर और दक्षिण संवाद के अभिप्राय को समझाना है।
2. उत्तर और दक्षिण के संवाद का महत्व और प्रयासों की जानकारी देना है।
3. दक्षिण-दक्षिण सहयोग पर प्रकाश डालना है।

14.1 प्रस्तावना

उत्तरी देशों में यूरोप और अमेरिका के धनी देश आते है। दक्षिण में सैकड़ो वर्षों तक गुलाम रहे, एशिया अफ्रीका के देश आते है। उत्तर और दक्षिण के देशों में अत्यधिक असमानता है। दक्षिण अपनी दुर्दशा के लिए उत्तर की औपनिवेशिक शक्तियों को जिम्मेदार मानकर उनसे प्राप्त मदद को उनकी नैतिक जिम्मेदारी मानता है। दक्षिण के विकासशील देश न सिर्फ अपने विकास के लिए उत्तर पर निर्भर है, बल्कि उनसे लिए गये ऋण और उसके ब्याज के चक्रव्यूह में फंस गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और आयात-निर्यात के नियम भी उत्तर के पक्ष में है। अतः

बहुसंरक्षक दक्षिण के देश बदलाव चाहते हैं, जबकि उत्तर के देश अपनी अनुकूल विश्व व्यवस्था को बनाये रखना चाहते हैं। इसी मतभेद के चलते उत्तर और दक्षिण के मध्य संवाद महत्वपूर्ण हो गया है, इसी के परिप्रेक्ष्य में दक्षिण-दक्षिण संवाद या सहयोग भी आवश्यक है।

14.2 उत्तर-दक्षिण संवाद से तात्पर्य

दुनिया को भौगोलिक दृष्टि से दो भागों में बांटा गया है। काल्पनिक भूमध्य रेखा पृथ्वी को उत्तरी गोलार्द्ध एवं दक्षिण गोलार्द्ध में बांटती है, लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में उत्तर का अर्थ उत्तरी गोलार्द्ध नहीं है और दक्षिण का अर्थ सिर्फ दक्षिण गोलार्द्ध नहीं है।

उत्तर से अभिप्राय : यूरोप और अमेरिका के देश धनी औद्योगिक, विकसित पूंजीवादी देशों में है, जो सैकड़ो वर्षों से दक्षिण के देशों के औपनिवेशिक सम्प्रभु थे। इन्होनें एशिया और अफ्रीका के देशों पर लम्बे समय से शासन कर उनका शोषण किया और उनके कच्चे माल के बल पर अपने औद्योगिक साम्राज्य खड़े किये। फलस्वरूप उत्तर धनी, सम्पन्न विकसित है। उत्तर में विश्व की 26.4 प्रतिशत जनसंख्या है, जिनके पास पृथ्वी के 78.5 प्रतिशत संसाधन है। यहां प्रतिव्यक्ति आय 10 हजार डॉलर से अधिक है। यहां अमीरी, शिक्षा, स्वास्थ्य, उच्च जीवन स्तर ठंडी जलवायु, जनसंख्या का कम घनत्व, सम्पन्नता, ऐश्वर्य और विकास के समस्त श्रेष्ठतम साधन उपलब्ध हैं। उत्तर के अंतर्गत संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन फ्रांस, जर्मनी, कनाडा, जापान आदि सम्पन्न देश आते हैं। इसी धनी, समृद्ध और पूंजीवादी देशों को उत्तर कहा जाता है।

दक्षिण से अभिप्राय : उत्तर को समझने के पश्चात् दक्षिण को समझना आसान है। दक्षिण में एशिया, अफ्रीका के वे देश आते है, जो लम्बे समय तक गुलाम रहे। जहाँ गर्म जलवायु अत्यक्षिक जनसंख्या का दबाव, गरीबी, अशिक्षा, भुखमरी, कुशोषण, अल्पविकास, निम्न जीवन स्तर, कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् आजाद हुए इन देशों को तीसरी दुनिया के देश भी कहा जाता है। यहां जनसंख्या को 73.6 प्रतिशत निवास करता है, पर विश्व के कुल 21.5 प्रतिशत संसाधन इनके पास है। यहां साफ पानी भी सबसे दुर्लभ है। सैकड़ों साल की गुलामी, संसाधनों के दोहन और शोषण ने इन देशों को गरीब, कर्ज में डुबे, समस्या ग्रस्त देश बना दिया है। अपनी समस्याओं को ये देश अपनिवेशिक शोषण का परिणाम मानते हैं। इन्हीं देशों को दक्षिण कहा जाता है।

इस प्रकार उत्तर और दक्षिण में अत्यधिक विषमता है। इसी असमानता और मतभेदों के दूर करने के लिए उत्तर और दक्षिण को एकमच पर आकर परस्पर बातचीत और सहयोग करने को उत्तर दक्षिण संवाद कहते हैं।

14.3 उत्तर दक्षिण संवाद : प्रमुख मुद्दे

1. **नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग** : 1 मई 1974 को संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने छठवें विशेष सत्र में नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था हेतु एक घोषणा जारी किया। यह व्यवस्था समानता, आत्मनिर्भरता और आपसी सहयोग पर आधारित होगी। दक्षिण के एफो-एशियाई देशों की यहाँ मांग थी। 1960 के दशक तक बहुसंख्यक दक्षिण के देश आजाद हो चुके थे। लेकिन सभी गरीबी और समस्याओं में जकड़े थे। गुटनिपेक्ष देशों ने पहली बार ''आर्थिक विकास की समस्याओं पर सम्मेलन'' 1962 में काहिरा में आयोजित किया था। सभी विकासशील देश इस बात से सहमत थे कि विश्व व्यवस्था

व्यापार के सभी नियम विकसित देशों के पक्ष में है, विकासशील देशों में 75 जनसंख्या जो विश्व की आय का मात्र 30 प्रतिशत प्राप्त करती है। इनमें 80 करोड़ निरक्षर एक अरब भयानक कुपोषण के शिकार है। अमीर व विकसित देश ऋण पर ब्याज और व्यापार के सभी नियम अपने पक्ष में करके लगातार उनका शोषण कर रहे हैं। 1973 में अल्जीयर्स में चौथें गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग और पकड़ती गई और 1974 में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने निम्न तीन ऐतिहासिक कदम उठाये -

अ. नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था हेतु घोषणा

ब. नई अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था हेतु कार्यवाही या कार्यक्रम

स. राज्यों के आर्थिक अधिकार और कर्तव्यों को चार्टर।

उक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतू उत्तर और दक्षिण में संवाद आवश्यक हो गया।

2. **संयुक्त राष्ट्र संघ के पुर्नगठन की मांग :** संयुक्त राष्ट्र के पुर्नगठन की मांग दक्षिण के देश लम्बे समय से कर रहे हैं, क्योंकि

   1. वर्तमान में सुरक्षा परिषद के 5 स्थायी सदस्यों के वीटो पावर ने विकसित देशों को महाशक्ति बना दिया है। जब 51 देश थे तब सुरक्षा परिषद में 4 स्थायी सदस्य थे, पांचवा चीन इसमें शामिल हुआ, किन्तु अब 194 सदस्य होने पर भी सुरक्षा परिषद में 5 स्थायी और 10 अस्थायी सदस्य है, दक्षिण के देश चाहते हैं, उन्हें प्रतिनिधित्व देकर सुरक्षा परिषद की संख्या 25 बढ़ाकर कर दी जाये।
   2. महासभा की शक्तियां बढ़ाई जाए क्योंकि वहां दक्षिण के देशों का संस्था बल अधिक हैं।
   3. आर्थिक सामाजिक परिषद के स्थान पर 23 सदस्यीय आर्थिक परिषद और 23 सदस्यीय सामाजिक परिषद का गठन होना चाहिए।
   4. विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को संयुक्त राष्ट्र संघ के अधीन लाया जाए।

3. **WTO के प्रावधानों में बदलाव की मांग :** दक्षिण के देशों का तर्क है कि विश्व व्यापार संगठन के नियम उत्तर अर्थात विकसित देशों के पक्ष में हैं जैसे

   1. बौद्धिक सम्पदा अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक अविष्कार का WTO में पेन्टेट कराया जा सकता है, और उस अविष्कार का विश्व भर में प्रयोग होने पर एक निश्चित कमीशन की धनराशि देश के पेन्टेट कर्ता को प्राप्त होता रहेगा। जैसे एक जर्मन वैज्ञानिक के कैन्सर की दवाई बनाई और उसने अपने नाम पेन्टेट करा लिया। पेटेन्ट कराने लेने के बाद दुनिया में जब भी उस दवाई का निर्माण होगा और क्रय-विक्रय से जो आमदनी होगी उसकी एक निश्चित धनराशि जर्मनी को मिलता रहेगा। WTO में पेन्टेट कर्ता देशों में अमेरिका, जापान, जर्मनी जैसे उत्तर के देश दबलाव चाहते है उक्त व्यवस्था से उत्तर के देश सदैव धनी बने रहेंगे।
   2. व्यापार के अन्तर्राष्ट्रीय मानक : दक्षिण के ज्यादातर देश कृषि प्रधान है। दक्षिण के देश इसमें उनका कृषि उत्पादन विश्व में तभी निर्यात किया जा सकता है, जब

वह अन्तर्राष्ट्रीय मानक के अनुरूप हो। उत्तर के औद्योगिक देशों के पास एयर कन्डीशन भडांरण और उच्च स्तरीय पैकिंग की सुविधा है, जिससे खाद्य पदार्थ सुरक्षित रहते हैं। दक्षिण के पास अक्त सुविधाऐं नहीं है अतः उत्तर के देश दक्षिणी देशों के उत्पादों को अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नहीं मानते जिससे दक्षिण के देशों को आर्थिक नुकसान होता है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में प्रतिस्पर्धा : WTO के नियम सभी के लिए समान है, लेकिन दक्षिण के गरीब देशों के घरेलू उद्योग उच्च तकनीक और मशीनो के अभाव में उत्तर के उत्पादों से प्रतिस्पर्धा करने में समक्ष नहीं है। अतः उक्त प्रावधान के विरोध में WTO के विभिन्न सम्मेलन उत्तर-दक्षिण संवाद के मंच बन जाते हैं।

4. आर्थिक विकास हेतू सहायता : दक्षिण के देश आजाद होने के बाद विकास हेतु उत्तर के देशों पर ही निर्भर रहे हैं। उत्तर के देश अपने राष्ट्रीय हितो को छोड़े बिना, उदारवादी पूँजीवाद के आधार पर सहायता करने आगे आते है, और निर्धन देशों को ऋण और आर्थिक मदद देकर आर्थिक साम्राज्यवाद का शिकार बना लेते हैं। दक्षिण के देशों का तर्क है कि उनकी आर्थिक दुर्दशा की मूल जड़ उत्तर के देशों का औपनिवेशिक शोषण है। अतः उत्तर के देशों का नैतिक कर्त्तव्य है कि वे दक्षिण के देशें को आर्थिक विकास हेतु सहायता करे।

5. ऋण भार में वृद्धि : दक्षिण के देशों के असंतोष का प्रमुख कारण है, उनके ऋण भार में हो रही बेतहासा वृद्धि। इसने उनके विकास को कुंठित कर दिया है। उदाहरण के रूप में 1973 में गैर तेल निर्यातक देशों का ऋणात्मक भुगतान 900 करोड़ डॉलर बाकी था, जो मात्र दो वर्षों 1975 में बढ़कर 3500 करोड़ डॉलर हो गया। 1984 की विश्व बैंक रिपार्ट में भी दक्षिण के बढ़ते ऋण भार पर चिंता जताई गयी थी, क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश व अन्य वित्तीय संस्थान जितना ऋण देते है, उससे कई गुना अधिक ब्याज बसूलते हैं। अतः दक्षिण के देशों की मांग है, कि अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संगठनों के प्रावधानों में परिवर्तन होना चाहिए, जिससे दक्षिण के देशों की ऋणभार से राहत मिल सके। साथ ही 'ब्रिटेन वुड़स' आधारित विश्व की मौद्रिक नीति भी दक्षिण के देशों के प्रतिकूल है। डॉलर का बढ़ता मूल्य और दक्षिण के देशों की मुद्रा अवमूल्यन ने भी ऋणभार में वृद्धि की है, जिससे दक्षिण के देशों ने 'ब्रिटेन वुड्स' व्यवस्था पर भी पुर्नविचार की मांग की है।

6. पर्यावरणीय मुद्देः तेजी से पृथ्वी के बढ़ते तापमान और ओजोन परत के क्षतिग्रस्त होने के बाद विश्व का ध्यान पर्यावरण संरक्षण पर गया तेजी से होते औद्योगिकीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन ने विश्व को चिन्ता में डाल दिया है। फलस्वरूप सतत् विकास की पर्यावरण अनुकूल अवधारणा पर जोर दिया जाने लगा। इस संदर्भ में मुख्य बिन्दुओं को लेकर मदभेद है -

   अ. ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जनः उत्तर के देश पर्यावरण के लिए घातक मिथेन और कार्बनडाइआक्साइड पर 20 प्रतिशत कटौती चाहते थे पर दक्षिण के देशों का आरोप है कि उत्तर ही घातक गैसो के उत्सर्जन का जिम्मेदार है। अतः उत्तर को अधिक कटौती करनी चाहिए।

ब. वनों का प्रश्नः उत्तर के देश विकास के नाम पर अपने ज्यादातर जंगल काट चुके है, और अब दक्षिण देशों में स्थित जंगलों को न काटने की सलाह दे रहे हैं। दक्षिण इसके लिए तैयार नहीं है।

स. जनसंख्याः उत्तर के देश प्रदूषण हेतु दक्षिण देशों की बढ़ती जनसंख्या को जिम्मेदार मानते हैं दक्षिण के देशों का आरोप है कि 30 प्रतिशत जनसंख्या जो उत्तर में निवास करती है वह 70 प्रतिशत संसाधनों का उपभोग करती है, जो अन्यायपूर्ण है।

द. वित्तीय मददः पर्यावरण संरक्षण के लिए वित्तीय कोष चाहिए। दक्षिण के देश अधिक आर्थिक मदद देने में सक्षम नहीं है। वहीं उत्तर के देश वित्तीय मदद देना नहीं चाहते। इस मुद्दे पर भी मदभेद बना हुआ है।

14.4 उत्तर-दक्षिण संवाद के संदर्भ में किये गये प्रमुख प्रयास

उत्तर-दक्षिण के मध्य विद्यमान मदभेदों को दूर करने हेतु संवाद के प्रयासों में निम्नलिखित मुख्य हैं -

1. **पेरिस सम्मेलन (1975-77)** : अमेरिका की पहल पर पेरिस में एक शिखर सम्मेलन बुलाया गया जिसे अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग सम्मेलन नाम दिया गया। इसमें 8 विकसित और 16 विकासशील देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें अमेरिका ने दक्षिण देशों के लिए कुछ रियायत, सहायता कार्यक्रमों की घोषणा भी की। दक्षिण के गरीब देशों के लिए एक विशेष कोष भी बनने की घोषणा हुई लेकिन बदले में विकसित देश तेल निर्यातक देशों से स्थिर मूल्यों पर तेल की सप्लाई चाहते थे जो बड़ी कीमत थी, जिसे तेल निर्यातक देशों ने अस्वीकार कर दिया बाद में यह सम्मेलन असफल हो गया।
2. **ब्रांट आयोग 1977 :** विश्व बैंक के अध्ययन मैकनाभारा ने अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक मुददों के समाधान के लिए एक निष्पक्ष व स्वतंत्र आयोग बनाने का सुझाव रखा। उनके सुझाव पर यह आयोग अस्तित्व में आया। इस आयोग के अध्यक्ष विली ब्रान्ट थे। अतः इसे ब्रांट आयोग कहा जाता है। इस आयोग में भौगोलिक आधार पर विश्व के सभी हिस्से से प्रतिनिधि चुने गये। आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि विश्व के विकास के लिए उत्तर और दक्षिण की पारस्परिक निर्भरता आवश्यक है। इस हेतु आयोग ने निम्न सुझाव दिये -

   1. वस्तु व्यापार पर प्रावधान, 2. विकासशील देशों के लिए विदेशी कर्ज, 3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा सुधार, 4. तकनीकी हस्तान्तरण, 5. समुद्री कानून, 6. बहुउद्देशीय व्यापार, 7. बहुराष्ट्रीय कम्पनियां एवं निगम
3. **कानकुन सम्मेलन 1981 :** मैक्सिको के कानकुन में आयोजित इस सम्मेलन में 22 देशों ने भाग लिया इसका उद्देश्य भी उत्तर-दक्षिण संवाद द्वारा निम्न बिन्दुओं पर विचार किया गया।
   1. व्यापार के अनुकूल वातावरण बनाना।
   2. आयात-निर्यात की बाधाओं को कम करना।
   3. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की संरचना में परिवर्तन।

उक्त तीन बिन्दुओं के अतिरिक्त भारत ने भी पाँच सूत्रीय योजना रखी जो सम्मेलन में रखी तो गई पर उसे विकसित देशों ने अधिक महत्व नहीं दिया। कानकुन में भी विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष पर उत्तर के वर्चस्व को लेकर तीखी बहस हुई पर परिणाम निराशाजनक ही रहे।

4. **उरूग्वे वार्ता (गैट एवं विश्व व्यापार संगठन) 1986-93 :** जैसा कि विदित है 1947 में गैट (GATT-General Argument on Tariffs and Trade) तटकर और व्यापार पर सामान्य समझौते के रूप में अस्तित्व में आया था। गैट का आठवां सम्मेलन उरूग्वे में 1986 में आयोजित किया गया जिसमें लगभग 100 देशों ने भाग लिया। चार वर्षों के प्रयास के बाद वार्ता सूचीं में निम्न चार क्षेत्र सम्मिलित किये गये -

   1. व्यापार से सम्बन्धित निवेश के उपाय (TRIMS)
   2. बौद्धिक सम्पदा अधिकार से संबंधित व्यापार (TRIPS)
   3. सेवा क्षेत्र में व्यापार तथा
   4. कृषि।

डंकल प्रस्ताव : लम्बे वाद-विवाद के बाद भी उक्त चार क्षेत्रों में सहमति न बन पाने से गैट के महानिदेशक आर्थर डंकल ने एक 500 पृष्ठ का प्रस्ताव रखा जिसे डंकल प्रस्तवा के नाम से जाना जाता है। इस प्रस्ताव का दक्षिण के देशों के काफी विरोध किया। क्योंकि इसमें पेटेन्ट के नियम उत्तर के निजी देशों के पक्ष में थे। दक्षिण के गरीब देशों को कृषि तकनीकी खरीदने के लिए भारी कीमत चुकायी पड़ती। इसके विरोध के बावजूद भी गैट के नियम उत्तर के पक्ष में ही बने रहे।

विश्व व्यापार संगठन : 1995 में WTO की स्थापना की गई। आगे इकाई 17 में इसकी विस्तृत जानकारी दी गई है। WTO का प्रति दो वर्ष में सम्मेलन होता है। WTO उत्तर दक्षिण संवाद का प्रमुख मंच बन गया।

5. **पृथ्वी सम्मेलन जून 1992-97 :** ब्राजील में रियों डी जेनेरा में "पृथ्वी के बिगड़ते पर्यावरण संतुलन से चिन्तित उत्तर और दक्षिण के देश इस सम्मेलन में पहुंचे। विकसित देशों का तर्क था कि दक्षिण की बढ़ती जनसंख्या पर्यावरण असंतुलन के लिए जिम्मेदार है। इसके विपरीत दक्षिण के देशों का तर्क थी कि औद्योगिकीकरण तथा प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से पर्यावरण असंतुलित हुआ है और इसके लिए उत्तर के देश जिम्मेदार हैं। इस सम्मेलन के प्रमुख मुद्दों पर इसी अध्याय में पूर्व में चर्चा की गई है। इसमें सतत् विकास, पर्यावरण अनुकूल प्रौद्योगिकी, विशेली गैसों के उत्सर्जन, वन संरक्षण, जैविक विविधता आदि जैसे मुद्दे सम्मिलित हैं। इस सम्मेलन ने पर्यावरण संरक्षण को महत्वपूर्ण वैश्विक मुद्दा बनाने में सफलता प्राप्त की। इनमें तीन दस्तावेजों पर हस्ताक्षर भी किये गये, ये थे 1. एजेन्डा 21वीं सदी लिए विकास तथा पर्यावरण सुधार योजना, 2. 27 सूत्रीय रियो घोषणा पत्र 3. विश्व के वनों के संरक्षण संबंधी वक्तव्य।

1993 से विश्व जैव विविधता संधि प्रभावी हो गई है। अमेरिका ने इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये है। पर्यावरण संरक्षण हेतु आर्थिक अशंदान को लेकर भी अमेरिका का रवैया निराशाजनक रहा है। जापान ने सकारात्मक पहल की है। उसने पाँच वर्षों में 1 अरब डॉलर प्रतिवर्ष देने का वचन दिया है। रियो डी जेनरों के 1992 के प्रथम पृथ्वी सम्मेलन और जून 1997 को न्यूयॉर्क में हुए पृथ्वी सम्मेलन से यह बात स्पष्ट हो गयी कि पर्यावरण संरक्षण हेतु आर्थिक

भार उठाने के लिए देश तत्पर नहीं है। सर्वादिक ग्रीन गैस उत्सर्जन अमेरिका द्वारा होता है। अतः विशैली गैसो को वायुमंडल में छोड़ने पर कटौती करने का सुझाव दिया गया, जिसे अमेरिका ने अस्वीकार कर दिया। साथ ही वन अन्तर्राष्ट्रीय सम्पदा न होकर राष्ट्रीय सम्पदा ही रहेंगे ऐसा दक्षिण देशों के प्रतिरोध से संभव हुआ। कुल मिलाकर पर्यावरणीय मुद्दों पर उत्तर व दक्षिण में पर्याप्त मतभेद है, जिस पर सहमति हो पाना भविष्य में भी चुनौती पूर्ण है।

6. **जी-8 की बैठक (एवियान, फ्रांस)**:- जी-8 जो दुनिया के सर्वाधिक धनी देशों का प्रभावशाली संगठन है, इसका शिखर सम्मेलन जून 2003 को आयोजित किया गया। फ्रांस ने नई पहल करके 10 विकासशील देशों को आमन्त्रित किया जिनमें भारत भी था। चूंकि इसमें विकसित व विकासशील देश दोनों थे। अतः इस सम्मेलन में उत्तर-दक्षिण सहयोग हेतु सर्वसहमति बनाने पर जोर दिया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ में विचारों की भिन्नता और WTO में भी राष्ट्रीय हित हावी रहने से व उत्तर-दक्षिण संवाद के प्रभावशाली मंच नहीं बन पर रहे है, अंतः कृषि के विकास, निर्वाध पूँजी प्रवाह आदि पर सहयोग एवं चर्चा हुई और सम्मेलन सकारात्मक वातावरण में सम्पन्न हुआ।

7. **जी-20 :** फ्रांस में हुई जी-8 की बैठक (1999) में उत्तर-दक्षिण मंच की तलाश में एक नये संगठन ने आकार लिया। इसे जी-20 का नाम दिया गया। इसमें 19 देशों के साथ यूरोपीय संघ की अध्यक्षता कर रहे देश को भी सम्मिलित किया जाता है, इस प्रकार इसे जी-20 कहा जाता है। इन 20 देशों को 5 के समूह में निम्नानुसार बांटा गया है -

जी-20 के सदस्य देश

समूह 1 - आस्ट्रेलिया, कनाडा, सउदी अरब, संयुक्त राज्य अमेरिका
समूह 2 - भारत, रूस, साउथ अफ्रीका, टर्की
समूह 3 - अर्जेन्टाइना, ब्राजील, मैक्सिको, यूरोपीय संघ के अध्यक्ष देश
समूह 4 - फ्रांस, जर्मनी, इटली, ग्रेट ब्रिटेन
समूह 5 - चीन, इंडोनेशिया, जापान, साउथ कोरिया

जी-20 की अध्यक्षतास समूह अनुसार उस देश को दी जाती है, जहां इसका शिखर सम्मेलन होता है। जी-20 की वार्षिक बैठक होती है। किन्तु 2009, 2010 में वर्ष में दो बार बैठक की गई थी। 1999 से इसके विदेश मंत्रियों की बैठक सर्वप्रथम बर्लिन में 1999 में, दूसरा सम्मेलन मौण्ट्रिलय 2000 में, तीसरा ओटावा 2001, चौथा नई दिल्ली 2002, एवं मैक्सिको सिटी में 2003 में आयोजित हुआ।

जी-20 के प्रमुख उद्देश्य

1. उत्तर-दक्षिण संवाद हेतु सशक्त मंच तैयार करना।
2. वैश्विक आर्थिक मंदी से उबरने हेतु पारस्परिक सहयोग।
3. राजकोषीय घाटा कम करने व जी.डी.पी. बढ़ाने हेतु प्रयास।
4. सतत् विकास (Sustainable Development) हेतु अनुकूल प्रौद्योगिकी का प्रयोग।
5. रोजगार के अवसर बढ़ाने व टिकाउ संतुलित वृद्धि दर प्राप्त करने हेतू प्रयास।
6. पारस्परिक सहयोग एवं आत्मनिर्भरता पर बल।
7. मैद्रिक संकट से निपटने हेतु स्थायी प्रावधान।

जी-20 में सदस्य देशों के अलावा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक के प्रतिनिधि भी भाग लेते हैं। अतः जी-20 के आठवें शिखर सम्मेलन (सितम्बर 2013) में जो रूस के सेंट पीटरबर्ग में आयोजित था, भारत के प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने इसे विश्व की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करने में सक्षम बताया। यद्यपि जी-20 के आठ शिखर सम्मेलन हो चुके है। इसमें विश्व की अर्थव्यवस्था के सतत और टिकाउ विकास हेतु ढांचागत सुधार करने, मौद्रिक संकटो से निपटने व व्यापार के नये क्षेत्र खोजने पर बल दिया गया इस प्रकार जी-20 को उत्तर-दक्षिण संवाद के प्रभावी मंच के रूप में देखा जा रहा है।

2009 में डेनमार्क की राजधानी कोपनहेगन में दुनिया के 192 देशों के प्रतिनिधि आये जिनकी चिंता पृथ्वी पर हो रहे जलवायु परिवर्तनों एवं प्रदूषण कारी गैसो के उत्सर्जन को लेकर थी। इस सम्मेलन में कई दिनों तक चर्चा चली। इसके बावजूद भी सर्वसहमति नहीं बन पाई। पूर्व में हुए क्योटो सम्मेलन में विकसित देशों हेतु गैस उत्सर्जन की सीमा निर्धारित की गई थी, विकासशील देश इससे आजाद थे। कोपनहेगन में अमेरिका ने विकासशील देशों हेतु भी इस प्रतिबंध की मांग की जिसका भारत ने विरोध किया। अंततः एक गैर बाध्यकारी कोपेनहेगन समझौते पर हस्ताक्षर किये गये जो अमेरिकी दबाव का नतीजा था। भारत ने इसका विरोध किया और पर्यावरण संतुलन हेतु इसे घातक करार दिया।

14.5 मूल्यांकन

उत्तर-उत्तर संवाद की प्रक्रिया विगत दशकों से जारी है, लेकिन परिणाम बहुत आशाजनक नहीं रहे हैं। उत्तर और दक्षिण के मध्य सहयोग और सहमति के मार्ग में अनेक प्रमुख बाधाए हैं। जैसे - प्रथम, धनी देश अपने विकास में विकासशील देशों के महती भूमिका को अस्वीकार करते हैं, जबकि उनके उपनिवेश रहे दक्षिण के देशों के कच्चे माल से ही उत्तर के देश विकास के शिखर पर पहुंचे हैं। **दूसरे,** विकसित देश तरह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन पर अपने वर्चस्व को कम नहीं करना चाहते हैं। **तीसरे,** दक्षिण के देश अपने शोषण के लिए उत्तर को जिम्मेदार मानते हैं, और उनका तार्किक उत्तर के देशों का नैतिक दायित्व है कि उनके आर्थिक विकास में सहायता करें। **चौथे,** पर्यावरणीय मुददों पर भी उत्तर के अड़ियल रवैये के कारण दक्षिण के देशों के असंतोष को बढ़ा दिया है। उत्तर के देश न पर्यावरण संरक्षण हेतु मदद करना चाहते हैं, और न ही विषैली गैसो के उत्सर्जन में कटौती करना चाहते हैं। **पांचवा,** सबसे महत्वपूर्ण बात दक्षिण के देशों में विकासशील में एकजुटता नहीं है। उनमें आपस में मतभेद और विवाद के पर्याप्त कारण है, जिससे वे सशक्त होकर अपनी बात उत्तर से मनवा नहीं पाते बल्कि गैट या विश्व व्यापार संगठन के प्रावधानों पर हस्ताक्षर करने को विवश हो जाते है। इस प्रकार हम कह सकते हैं, बिना दक्षिण की एकजुटता के उत्तर-दक्षिण संवाद के प्रभावी परिणाम मिलना कठिन है, क्योंकि उत्तर और दक्षिण के हित परस्पर विरोधी हैं।

14.6 सारांश

उत्तर दुनिया के धनी विकसित पूंजीवादी देशों को कहा जाता है, जबकि दक्षिण से तात्पर्य लम्बे समय तक उपनिवेश रहे बड़ी जनसंख्या और विकट समस्याओं वाले विकासशील, अविकसित देशों से है। उत्तर और दक्षिण में पर्याप्त विषमता है। उत्तर समृद्ध, विकसित, सुविधा सम्पन्न है, तो दक्षिण गरीब, विकासशील, समस्याग्रस्त है। ऐसे में उत्तर के देश अपने प्रभुत्व को बनाये रखना, दक्षिण के बाजारों का उपयोग करना और अपने राष्ट्रीय हितों को बचाऐं रखना

चाहते हैं। इसके विपरीत दक्षिण के देश नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की मांग के अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र संघ, विश्व व्यापार संगठन और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की संरचना में बदलाव, विकास में सहायता और विज्ञान, तकनीक और श्रम के निर्बाध प्रवाह को सुनिश्चित करना चाहते हैं। उत्तर और दक्षिण के इन्हीं मत भेदों को दूर करने के लिये गये प्रयासों को ही उत्तर-दक्षिण संवाद कहते हैं।

14.7 शब्दावली

जी-20; विकसित व विकासशील देशों का समूह है।

उत्तर - विकसित पूंजीवादी देश

दक्षिण - विकासशील या तीसरी दुनिया के देश

पृथ्वी सम्मेलन - पर्यावरण संरक्षण हेतु किये गये वैश्विक सम्मेलन।

उत्तर-दक्षिण संवाद

14.8 बोध प्रश्न

1. उत्तर दक्षिण संवाद से क्या अभिप्राय हैं?

-- ---------- ------ ------ ----------

2. उत्तर दक्षिण के मध्य प्रमुख मुद्दे कौन से हैं?

-- ---------- ------ ------ ----------

3. जी-20 से आप क्या समझते हैं?

-- ---------- ------ ------ ----------

4. पर्यावरण को लेकर उत्तर-दक्षिण विवाद के क्या कारण हैं?

---------- ------ ------ ----------

इकाई-15

विश्व व्यवस्था का बहुध्रुवीयकरण

इकाई की संरचना

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 बहुध्रुवीय करण हेतु उत्तरदायी कारक

- 15.2.1 सोवियत ब्लॉक का कमजोर होना
- 15.2.2 सोवियत संघ तथा चीन के बीच विचारधारा सम्बन्धी विरोध
- 15.2.3 पूर्वी यूरोप में मुक्ति लहर
- 15.2.4 अमेरिकी ब्लॉक का कमजोर होना
- 15.2.5 फ्रांसीसी नीतियाँ
- 15.2.6 लैटिन अमेरिका में राष्ट्रवाद का मजबूत होना
- 15.2.7 गुटनिरपेक्षता तथा तीसरे विश्व का उदय
- 15.2.8 परमाणु क्लब का विस्तार
- 15.2.9 नये राज्यों का प्रादुर्भाव
- 15.2.10 पश्चिमी यूरोप का आर्थिक एकीकरण
- 15.2.11 मुख्य आर्थिक शक्तियों के रूप में जापान तथा पश्चिमी जर्मनी का उदय

15.3 निष्कर्ष

15.4 संदर्भ ग्रंथ

15.5 सम्बन्धित प्रश्न

- 15.5.1 दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
- 15.5.2 लघु उत्तरीय प्रश्न
- 15.5.3 वस्तुनिष्ठ प्रश्न

15.0 उद्देश्य

इस इकाई में द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था की अवधारणा में स्थान पर बहुध्रुवीयकरण की प्रक्रिया के अस्तित्व में आने के तथ्यों पर विचार–विमर्श किया गया। इस इकाई का उद्देश्य है–

1. विश्व व्यवस्था में बहुध्रुवीय करण की प्रक्रिया को समझना
2. विश्व व्यवस्था में बहु–ध्रुवीय करण की प्रक्रिया को जन्म देने वाले कारक तत्वों पर प्रकाश डालना
3. बहु–ध्रुवीय करण की प्रक्रिया के प्रकाश में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की प्रकृति को समझना।

15.1 प्रस्तावना

शीत युद्ध के काल में सम्पूर्ण विश्व दो परस्पर विरोधी गुटों में विभाजित हो गया था, जिसमें एक तरफ अमेरिका एवं उसके समर्थित राष्ट्र थे वहीं दूसरी ओर सोवियत संघ तथा साम्यवादी विचार धारा को समर्थन देने वाले राष्ट्र थे। इस दो ध्रुवीय व्यवस्था ने सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की व्यवस्था को प्रभावित किया। संघर्ष द्वेष एवं प्रतिस्पर्धा के लम्बे काल का अन्त शीत युद्ध की समाप्ति से हुआ तत्पश्चात् नयी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का प्रार्दुभाव हुआ, एक ऐसी व्यवस्था जिसमें शक्तियां किसी एक ध्रुव या राष्ट्र में केन्द्रित नहीं थीं बल्कि यह शक्तियां सन्तुलित रूप से विभाजित थीं।

बहु–ध्रुवीकरण का अर्थ है अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कई शक्ति केन्द्रों का अस्तित्व। वासबी के शब्दों में, ''बहु ध्रुवीय व्यवस्था में बहुत से बड़े तथा सामान्य रूप में एक जैसी शक्ति या क्षमता वाले कम से कम पांच राज्य शामिल होते है''। बहु–ध्रुवीकरण में महत्वपूर्ण कार्यकर्ताओं (राज्यों) का नियन्त्रित व्यवहार होता है। द्वि–ध्रुवीकरण के साधारण तथा कठोर विभाजन की तुलना में बहु–ध्रुवीकरण में शक्ति का ढांचा जटिल तथा लचीला होता है। इसमें शत्रुओं तथा मित्रों के बीच कोई स्थायी रूप से कठोर बंटवारा नहीं किया जा सकता। प्रत्येक ध्रुव दूसरे सभी कार्यकर्ताओं को सम्भावित शत्रु या सम्भावित मित्र मानता है। महाशक्तियों की अधिक संख्या होने के कारण कोई भी राज्य अपने आपकों किसी भी एक महाशक्ति के साथ भी जोड़ सकता है। बहुत सी अल्पकालीन तथा अन्तरिम सन्धियां समय–समय पर की जाती है। विरोधों को अधिक गहन नहीं होने दिया जाता। प्रतिद्वन्द्वी तथा विरोधियों के बीच वैर भाव द्वि–ध्रुवीकरण में पाये जाने वाले वैर भाव से कम होता है।

बहु–ध्रुवीकरण में क्योंकि शक्तिशाली राज्यों की संख्या अधिक होती है किसी भी एक कार्यकर्ता पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता ।

1955 के बाद द्वि–ध्रुवीकरण का बहु–ध्रुवीकरण में रूपान्तरणः– दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् जो द्वि–ध्रुवीकरण स्थापित हुआ जो पाँचवे दशक में कठोर द्वि–ध्रुवीकरण बन गया था, वह 10 वर्षों तक चलता रहा। पाँचवे दशक के अन्त में लचीली द्वि–ध्रुवीय व्यवस्था के रूपान्तरण की ओर विभिन्न प्रवृतियां उभरने लगीं। पाँचवे दशक के शुरू में दोनों महाशक्तियों की संधियाँ आन्तरिक विरोधों तथा प्रत्येक ब्लॉक के अन्दर पैदा होने वाले अविश्वासों के कारण ढीली होनी शुरू हो गईं। 1950 के दशक के मध्य के आसपास जो मूलभूत परिवर्तन हुए उन्होंने संधियों को और कमजोर कर दिया तथा सन्धियों की भागीदारी की कठोरता गायब होने लगी। इससे कठोर द्वि–ध्रुवीकरण ढीला पड़ने लगा तथा बहु केन्द्रवाद की उत्पत्ति होने लगी।

15.2 बहु–ध्रुवीयकरण हेतु उत्तरदायी कारक

15.2.1 सोवियत ब्लांक का कमजोर होना

यूगोस्लाविया तथा सोवियत गुट के कुछ अन्य राज्यों में राष्ट्रवादी शक्तियों में वृद्धि शुरू होने से विभिन्न देशों में राष्ट्रवादी तत्व अपनी स्वायत्तता का दावा करने लगे। 1948

में यूगोस्लाबिया अपने आप को सोवियत संघ की शक्ति से छुड़ाने में सफल हो गया। यूगोस्लाविया द्वारा अपनी विदेश नीति सम्बन्धी निर्णय करने की स्वतन्त्रता का दावा करना सोवियत गुट में पहली दरार थी। इसके अतिरिक्त सोवियत नियन्त्रण के प्रति पूर्वी यूरोपीय देशों में असन्तोष जो कुछ वर्ष पूर्वी जर्मनी में प्रतिबिम्बित हो गया था, 1956 में हंगरी के विद्रोह के कारण चरम सीमा पर पहुंच गया। यद्यपि सोवियत संघ इस विद्रोह को दबाने में सफल हो गया था, फिर भी इस घटना से सोवियत संघ के अपने गुट पर नियन्त्रण को लेकर काफी धक्का लगा।

15.2.2 सोवियत संघ तथा चीन के बीच विचारधारा सम्बन्धी विरोध

खुश्चेव तथा माओं के बीच विचारधारात्मक विरोध तथा परिणामस्वरूप सोवियत संघ तथा चीन के बीच होने वाले विरोध ने सोवियत संघ के प्रभाव को काफी धक्का पहुंचाया। चीन सोवियत सीमा विवाद का प्रभाव, वह गति जिससे चीन ने अपनी परमाणु क्षमता को विकसित किया, 1970 के शुरू में चीन अमरीका का पुनर्मिलन, संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन का प्रवेश तथा इसे वीटो शक्ति का मिलना तथा अफगानिस्तान, कम्पूचिया और सिक्यांग के सम्बन्ध में दोनों देशों के मतभेद सोवियत संघ पर दबाव डालने वाले साधन बने। इसके भार के नीचे दबा सोवियत संघ अपनी सन्धियों के भागीदारों पर नियन्त्रण खोने लगा।

15.2.3 पूर्वी यूरोप में मुक्ति लहर

चीन के अनुभवों ने सोवियत संघ की पूर्वी यूरोपीय मित्र राष्ट्रों से अधिक उदारतापूर्वक व्यवहार करने की आवश्यकता के प्रति सचेत कर दिया। पॉलैंड तथा चैकोस्लोवाकिया में उदारवादी आन्दोलन ने तथा रूमानिया द्वारा प्रदर्शित कार्य करने की स्वतन्त्रता ने सोवियत धड़े को और भी कमजोर कर दिया। पश्चिमी यूरोप तथा पूर्वी यूरोपीय राष्ट्रों पर सोवियत संघ का नियन्त्रण और भी कम कर दिया। सोवियत धड़े में आने वाली इस कमजोरी ने द्वि–ध्रुवीकरण व्यवस्था को कमजोर कर दिया तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में बहु–ध्रुवीकरण के प्रादुर्भाव के लिए भूमिका तैयार कर दी।

15.2.4 अमरीकी ब्लॉक का कमजोर होना

स्वेज संकट तथा अमरीका बीसवीं शताब्दी के पाँचवे दशक के मध्य में अमरीकी धड़े में भी दरारें पड़ गई। 1956 में ब्रिटेन तथा फ्रांस अमरीका को सूचना दिये बिना या उससे सलाह किए बिना स्वेज अभियान में जुट गए। यह घटना अमरीकी धड़े में पहली दरार सिद्ध हुई।

15.2.5 फ्रांसीसी नीतियां

जनरल डि गॉल के नेतृत्व में फ्रांस विश्व राजनीति में स्वतन्त्र शक्ति केन्द्र बनने के प्रयत्न करने लगा तथा फ्रांस की यह नीति स्पष्ट रूप से अमरीका के अपने मित्र राष्ट्रों पर नियन्त्रण की कमजोरियों को प्रकट करने लगी। साम्यवादी देशों तथा चीन के साथ अपने सम्बन्ध बढ़ाने के फ्रांस के निर्णय से अमरीका के साम्यवाद के प्रति विलगता के विचारों को गहरा धक्का लगा। इसके अतिरिक्त वियतनाम में अमरीका नीति के प्रति पनपे घोर विरोध, कामन मार्किट में ब्रिटेन का प्रवेश तथा सारे यूरोप द्वारा बड़े स्तर पर नाटो राष्ट्रों में पोलारिस मिसाइलों को लगाकर सैन्यीकरण करने में अमरीका के प्रयत्नों का विरोध, इन सबके कारण जनरल डि गॉल ने फ्रांस को अमरीका के नियन्त्रण से स्वतन्त्र रखने का निर्णय लिया। फ्रांस द्वारा दक्षिण पूर्वी एशिया को स्वतन्त्र करने तथा 1966 में नाटो से

निकल जाने की धमकी ने इस विचार को और भी स्पष्ट कर दिया। फ्रांस को एक स्वतन्त्र शक्ति केन्द्र बनाने के लिए जनरल डि गॉल ने स्वतन्त्र परमाणु क्षमता का विकास करने का निर्णय किया। 1969 में जनरल डि गॉल युग के समापन तक फ्रांस ने विश्व राजनीति में बड़ी परमाणु शक्ति बनने के मार्ग पर चलने का अपना निर्णय दृढ़ कर लिया था। छठे दशक के अन्त में फ्रांस की नीति ने अमरीका ब्लॉक में बड़ी गहरी दरारें पैदा कर दीं।

15.2.6 लैटिन अमरीका में राश्ट्रवाद का मजबूत होना

लैटिन अमरीका में राष्ट्रवादी शक्तियों ने जो सफलता प्राप्त की थी उससे भी दूसरे राष्ट्रों पर अमरीका का नियन्त्रण और भी कम हो गया। चाहे अमरीका महाद्वीप के देशों पर अमरीका अपना प्रभाव बनाये रखने में लगातार सफल रहा, फिर भी इसके इन प्रयत्नों का काफी विरोध हुआ। क्यूबा के साम्यवादी देश के रूप में उभरने से इस महाद्वीप में अमरीका का नियन्त्रण कम हो गया।

15.2.7 गुटनिरपेक्षता तथा तीसरे विश्व का उदय

भारत तथा कई दूसरे देशों द्वारा महाशक्तियों के गुटों से अलग रहने, शीत युद्ध में तटस्थ रहने तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में स्वतन्त्र भूमिका निभाने के निर्णय ने भी द्वि–ध्रुवीकरण के बहु–ध्रुवीकरण में बदलने में काफी सहायता की। नासिर का मिस्त्र तथा नकरूमा का घाना नए उभरने वाले राज्यों में प्रमुख थे जिन्होंने निर्गुट रहने का निर्णय किया। धीरे–धीरे गुटनिरपेक्षता की अवधारणा अधिक–से–अधिक समर्थन प्राप्त करती गई तथा 1961 तक यह एक अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन बन गई। गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों तथा तीसरे विश्व का उभरना शीत युद्ध तथा द्वि–ध्रुवीकरण के विरोध के प्रतीक बने। गुटनिरपेक्षता की सफलता ने द्वि–ध्रुवीकरण व्यवस्था को बहुत क्षीण कर दिया। क्योंकि कम से कम आधी मानवता ने दोनों प्रतिद्वन्दी धड़ो में शामिल होने के विरूद्ध निर्णय किया।

15.2.8 परमाणु क्लब का विस्तार

महाशक्तियाँ अपना परमाणु एकाधिकार केवल कुछ समय तक ही कायम रख सकीं। कैनेडा परमाणु क्षमता प्राप्त करने वाला तीसरा राष्ट्र बन गया। सातवें दशक में फ्रांस तथा चीन भी परमाणु क्षमता प्राप्त करने में सफल हो गये और तब से दोनों तेजी से परमाणु शस्त्रों के विकास करने लगे। 1974 में भारत भी पूर्णतया नियन्त्रित शान्तिपूर्ण परमाणु विस्फोट करके इस परमाणु क्लब में शामिल हो गया। परमाणु क्लब में विस्तार के कारण भी बहु–ध्रुवीकरण का विकास हुआ। 1945–90 के मध्य चाहे इन दोनों महाशक्तियों के अतिरिक्त दूसरे देशों द्वारा बनाए जाने वाले हथियार अमरीका तथा भूतपूर्व सोवियत संघ की परमाणु श्रेष्ठता को प्रभावित कर पाने की स्थिति में नहीं थे फिर भी अपने स्वामियों को इन्होंने विदेश नीति में और अधिक लचीलापन तथा स्वतन्त्रता लाने के लिये बाध्य किया।

15.2.9 नए राज्यां का प्रादुर्भाव

एक अन्य तत्व जिसने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में द्वि–ध्रुवीकरण में रूपान्तरित किया, वह था विश्व राजनीति में नए राष्ट्रों का प्रादुर्भाव। 1947 में शुरू होकर लेकिन 1960 में और अधिक तेजी से नये प्रभुसत्ता–सम्पन्न राष्ट्रों के प्रादुर्भाव में काफी वृद्धि हुई। केवल एक वर्ष में अर्थात् 1960 में करीब करीब 17 नए प्रभुसत्ता सम्पन्न राष्ट्रों ने संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश किया। यह प्रक्रिया दस साल तक चलती रही। ये नए राष्ट्र अपनी मेहनत से प्राप्त की गई स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए वचनबद्ध थे तथा शक्तिशाली राष्ट्रों,

विशेषकर दोनों महाशक्तियों के प्रति बहुत अधिक संशयी थे। परिणामस्वरूप वे किसी भी ब्लॉक में शमिली होने के लिए तैयार नहीं थे क्योंकि वे यह महसूस करते थे कि इससे अप्रत्यक्ष रूप में उनके काम करने की स्वतन्त्रता सीमित हो जाएगी। गरीबी, कम विकास तथा सामान्य मुश्किलें जो उन्होंने साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद के शिकंजे में रह कर भुगती थीं, इन सब ने उन्हें शक्ति गुटों का विरोधी बना दिया था। अमरीका तथा सोवियत संघ द्वारा इन्हें अपने–अपने गुटों में शामिल होने के लिए फुसलाने की नीति भी अपनायी गयी। इससे इन्हें शक्ति गुटों के प्रति और अधिक शंकित कर दिया तथा उन्होंने अलग रहने का तथा किसी भी एक गुट के साथ अपने आपको न बांधने का निर्णय कर लिया। उन्होंने दोनों से अथवा एक से सहायता लेना तो स्वीकार किया परन्तु राजनीतिक बंधनों से मुक्त रहकर अपना अलग अस्तित्व बनाये रखने के लिए उन्होंने संयुक्त राष्ट्र तथा दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में अपनी भूमिकाओं में सामंजस्य स्थापित करना शुरू कर दिया। इन राज्यों ने धीरे–धीरे एक बहुराज्यीय समूह बनाना शुरू कर दिया जिसमें सामूहिक प्रभाव की क्षमता थी। इस प्रक्रिया में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में एक तीसरी शक्ति अर्थात् तीसरा विश्व पैदा हो गया। तीसरे विश्व के उदय ने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में द्वि–ध्रुवीय व्यवस्था को बहु–ध्रुवीय बनाने की मुख्य भूमिका निभाई। तीसरे विश्व के प्रादुर्भाव ने सार्वभौमिक द्वि–ध्रुवीयता को ढीला कर दिया, क्योंकि इसमें कितने ही ब्लॉकविहीन कार्यकर्ता थे।

15.2.10 पश्चिमी यूरोप का आर्थिक एकीकरण

पश्चिमी यूरोपीय राष्ट्रों द्वारा संगठित क्षेत्रीय आर्थिक संस्थाओं जैसे द्वारा बड़े पैमाने पर तथा तेजी से किए जाने वाले विकास ने भी पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों को अमरीका नियन्त्रण तथा प्रभाव से स्वतन्त्र कर दिया। ये राष्ट्र अपने आर्थिक विकास द्वारा इतने सक्षम हो गए कि इन्होंने द्वि–ध्रुवीय राजनीति के प्रति अधीनता छोड़ने की क्षमता प्राप्त कर ली। आर्थिक मेल–मिलाप द्वारा प्राप्त आर्थिक समृद्धि ने पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों, विशेषतः फ्रांस ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अमरीका की प्रधानता की चुनौती देने तथा कमजोर करने में सहायता की। वर्तमान समय में यूरोपीय संघ शक्ति का एक दृढ़ तथा संगठित केन्द्र है।

15.2.11 मुख्य आर्थिक शक्तियों के रूप में जापान तथा पश्चिमी जर्मनी का उदय

दूसरे विश्व युद्ध के समाप्त होने से तीस साल के अन्दर–अन्दर जापान तथा पश्चिमी जर्मनी (अब जर्मनी) दोनों न केवल युद्ध के मध्य बड़े पैमाने पर हुई आर्थिक क्षति पर काबू पाने में सफल हुए बल्कि इन्होंने औद्योगिक उत्पादन तथा तकनीकी विकास में अभूतपूर्व सफलता भी पाई। जापान तथा पश्चिमी जर्मनी को दो बड़ी आर्थिक शक्तियाँ बनने से बहु–ध्रुवीकरण के प्रादुर्भाव की प्रक्रिया को बहुत अधिक प्रभावित कर दिया। चाहे सैन्य शक्ति के रूप में ये शक्तियाँ कमजोर थीं, फिर भी ये राज्य अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के मुख्य कार्यकर्ता बने। तकनीकी रूप से तो ये अमरीका के साथ जुड़े रहे हैं परन्तु वास्तव में दोनों अपने विदेश सम्बन्धों के संचालन में काफी स्वतन्त्र रहे। जापान तथा पश्चिमी जर्मनी की आर्थिक शक्ति के प्रभावाधीन 1970–90 के बीस वर्षों में द्वि–ध्रुवीकरण की व्यवस्था बहु–ध्रुवीकरण की व्यवस्था भी बन गई।

15.3 निष्कर्ष

ये सभी तत्व अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में द्वि–ध्रुवीकरण के बहु–ध्रुवीकरण में रूपान्तरण के लिए उत्तरदायी रहे हार्टमैन के अनुसार दूसरे विश्वयुद्ध के बाद पहला दशक महाशक्तियों तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में द्विध्रुवीकरण का युग था। तथापि 1955 से

द्वि–ध्रुवीकरण निरन्तर पतन की ओर चला तथा इसके स्थान पर बहु–ध्रुवीकरण तथा बहु–केन्द्रवाद उदित हुआ। निःसंदेह 1960 के बाद कठोर द्वि–ध्रुवीकरण का युग समाप्त हो गया तथा दोनों महाशक्तियों के अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में कई शक्ति केन्द्र बन गए।

15.4 सन्दर्भ ग्रंथ

- 21वीं सदी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध : पुष्पेश पन्त
- अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के सिद्धान्त 'एक परिचय' : अजय कुमार
- अन्तर्राष्ट्रीय संगठन : पुष्पेश पन्त

15.5 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. बहुध्रुवीयकरण क्या है? इसकी उत्पत्ति के कारकों की विवेचना करें।
2. द्विध्रुवीकरण क्या है? इसके लिए उत्तरदायी कारकों की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बहुध्रुवीय व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें क्या हैं?
2. वर्तमान वैश्विक सन्दर्भ में बहुध्रुवीय व्यवस्था की आवश्यकताओं को रेखांकित करें।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

खण्ड – 6

अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ एवं क्षेत्रीय संगठन

इकाई – 16 **151**

सयुंक्त राष्ट्र संघ : भूमिका एवं सुधार की मांग

इकाई – 17 **155**

आई0बी0आर0डी0 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यापार संगठन

इकाई – 18 **167**

क्षेत्रीय संगठन : यूरोपीय समुदाय, आसियान, एपेक, सार्क (दक्षेस), ओ0आई0सी0 तथा ओ0ए0यू0

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. एम. पी. सिंह – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, 34 उत्तरांचल अपार्टमेंट, 5, आईपी एक्सटेंशन पटपड़गंज, नई दिल्ली

(2) **प्रो. एस.पी. एम त्रिपाठी – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

(3) **प्रो.एल.आर.गुर्जर – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान

(4) **डॉ.दीपशिखा श्रीवास्तव – सचिव**
शैक्षणिक परामर्शदाता ,राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज

लेखक

1. **प्रो0 संजय श्रीवास्तव** — **प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान,** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय **(इकाई–04, 05, 15)**

2. **डॉ0 विश्वनाथ मिश्रा** — **असि0 प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान** आर0 महिला पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई– 06, 07, 08, 09, 10, 11, 12)**

3. **डॉ0 स्वाती सुचरिता नन्दा** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई–01, 02, 03, 21, 22, 23)**

4. **डॉ0 अर्चना सुदेश मैथ्यू** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** पी0जी0 कालेज छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश **(इकाई–13, 14, 16, 17, 18)**

5. **डॉ दीपशिखा श्रीवास्तव** — **शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान** यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज **(इकाई– 19, 20)**

संपादक / परिमापक

डॉ. नागेश्वर प्रसाद शुक्ला — प्राचार्य गन्ना उत्पादक पी0जी0 कालेज, बहेड़ी, बरेली

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव, — शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

(मुद्रित)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN- 978-93-83328-37-6

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई-16

संयुक्त राष्ट्र संघ : भूमिका एवं सुधार की मांग

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना

16.2 सेकुलर शब्द

16.3 धर्मनिरपेक्षता क्या है?

16.4 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया

16.5 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया की विशेषता

16.6 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया तथा आधुनिक समाज

16.7 सारांश

16.8 शब्दावली

16.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

1. सेकुलर अथवा धर्मनिरपेक्षता क्या है ?
2. धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा
3. धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया
4. धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया की विशेषताएँ

16.1 प्रस्तावना

धर्मनिरपेक्षता, पंथनिरपेक्षता अथवा लौकिकवाद आधुनिक सामाजिक व्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं। यह ऐसी स्थिति है जिसमें राज्य सभी धर्मों, पंथों एवं विचारधाराओं के प्रति तटस्थ होता है तथा उन्हें उनके पालन करने हेतु पूरी आजादी देता

है। सामाजिक स्तर पर भी यह अपेक्षा की जाती है कि समाज के सदस्य अन्य समुदायों के प्रति सहिष्णुता का व्यवहार प्रदर्शित करें।

16.2 सेकुलर शब्द

धर्मनिरपेक्ष या पंथनिरपेक्ष शब्दों के लिए अंग्रेजी का शब्द ''सेकुलर'' सामान्यतः प्रयोग में लाया जाता है। कई बार सेकुलर शब्द से तात्पर्य नास्तिकता से लगाया जाता है, जो बिल्कुल गलत है।

16.3 धर्मनिरपेक्षता क्या है?

भारतीय संदर्भों में धर्मनिरपेक्षता से मतलब सभी धर्मों को उनके विकास तथा रीति रिवाजों के पालन के लिए समान स्तर प्रदान करना है। राज्य सभी धर्मों के प्रति समानता का भाव एवं दूरी को प्रदर्शित करता है तथा व्यवहार के निर्धारण एवं मापदंड में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करते हुए सामाजिक कल्याण की भावना पर बल देता है।

राजनीतिक एवं व्यक्तिगत स्तर पर भी इसी भावना को बल प्रदान करने वाले ''सेकुलर'' कहलाते हैं तथा इस विचारधारा पर काम करने वाले राज्य ''सेकुलर राज्य'' कहलाते हैं ।

लौकिकवाद अथवा धर्मनिरपेक्षता एक ऐसे सिद्धांत पर आधारित सामाजिक–नैतिकता की एक व्यवस्था है, जिसमें धर्म के नैतिकता के मापदंड तथा व्यवहार के निर्धारण के लिए बिना हस्तक्षेप के वर्तमान जीवन तथा सामाजिक कल्याण की भावना पर बल दिया जाता है। यह विचारधारा घटनाओं के निर्णय करने में धर्म परम्परा अथवा प्रथाओं को महत्व नहीं देती। इसके विपरित घटनाओं अथवा समस्याओं का निर्धारण, इस व्यवस्था के अनुसार, बुद्धिसंगतता के आधार पर किया जाता है।

लौकिकीकरण की विचारणा यह मानती है कि लौकिकीकरण, औद्योगिक समाज और संस्कृति के आधुनिकीकरण की एक अपरिहार्य विशेषता है। इस विचारणा के पक्ष में यह कहा जाता है कि आधुनिक विज्ञान ने पारंपरिक विश्वासों की महत्ता को घटना दिया है। जीवन–जगतों के बहुवादीकरण में धार्मिक प्रतिकों के एकाधिकार पर आघात किया है। नगरीकरण की प्रवृत्ति में व्यक्तिवादी और मानक शून्यतावादी जगत को जन्म दिया है। पारिवारिक जीवन के विच्छेदन ने धार्मिक संस्थाओं को कम सार्थक बनाया है। प्रौद्योगिकी ने परिवेश पर नियंत्रण कर ईश्वर की सर्वव्यापकता के विचार को कमजोर कर दिया है। इस अर्थ में जैसा कि मैक्सवेबर ने कहा है कि लौकिकीकरण को समाज के विवेकीकरण के एक माप के रूप में प्रयोग किया जा रहा है।

अतः आधुनिक समय में धर्म को अब एक सामाजिक जड़ता के रूप में देखना सही नहीं रहा है । बल्कि उसे विकास के संदर्भ में धर्म की कल्याणकारी भूमिका एवं धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों की व्यवहारिक खोज से देखा जाना जरूरी है ।

16.4 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया

19वीं शताब्दी में ब्रिटिश आन्दोलनकारी जी. होल्के के नेतृत्व में धर्मनिरपेक्षीकरण का उद्‌भव एवं विकास माना जाता है ।

यदि किसी समाज के सदस्यों के विचार धार्मिक मान्यताओं के विपरीत अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण या तार्किकता के आधार पर महत्व देने लगते हैं तो इस प्रक्रिया को धर्मनिरपेक्षीकरण कहते हैं ।

16.5 धर्मनिरपेक्षीकरण की विशेषताएँ

मूर के अनुसार इसकी 3 विशेशताएँ हैं –

1. दैनिक जीवन में धार्मिक नियंत्रण शिथिल होना ।
2. तर्कशक्ति के आधार पर धार्मिक सिद्धांतों के मानसिकता में बदलाव ।
3. सांस्कृतिक व्यवहारों में भी तार्किक आधार पर बदलाव ।

इस तरह किसी समाज में धार्मिक सम्प्रदायवाद के बजाय निरपेक्ष आधार पर की जा रही पुनर्रचना की प्रक्रिया धर्मनिरपेक्षीकरण कहलाती है ।

16.6 धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया तथा आधुनिक समाज

औद्योगिक एवं आधुनिक समाजों में दुनिया को ज्यादा अधिक तरह से समझने के लिए धर्म की अपेक्षा वैज्ञानिक तथ्यों एवं व्यवहार को ज्यादा स्थान दिया जाता है तथा धर्म एक सामाजिक नियंत्रण के साधन के रूप में कमजोर हुआ है। इसके स्थान पर राज्य की संस्थाएँ तथा वैधानिक कानून आधुनिक जीवनशैली में अधिक कारगर एवं प्रासंगिक लगते हैं। परिणामस्वरूप मानवीय जीवन में एक लक्ष्य के रूप में अब आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिकता का स्थान प्रमुख एवं लोकप्रिय है। विश्व एवं अधिकांश भारतीय समाज में यह एक विशिष्ट लक्षण एवं प्रक्रिया के रूप में परिलक्षित हो रहा है ।

16.7 सारांश

प्रायः किसी हिन्दी शब्दावली के साथ उसके अंग्रेजी शब्द से उसके भाव को समझने में सहायता मिलती है। धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को सामान्य शब्दों में व्यक्त किया गया है। धर्मनिरपेक्षता के सामाजिक व्यवहार एवं उसके प्रति प्रतिक्रिया को चिन्हित किया गया है। धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया विशेषताओं से यह और अधिक स्पश्ट हो जाता है।

अंत में प्रक्रिया एवं आधुनिक समाज के सह–संबंध को लिखा गया है ।

16.8 शब्दावली

- सेकुलर धर्मनिरपेक्ष या पंथनिरपेक्ष
- धर्मनिरपेक्ष समाज ऐसा समाज है जो उपयोगतावादी तथा तर्कसंगत मूल्यों पर अधिक बल देता हो, परिवर्तन एवं नवीन आचार–विचारों को अपनाने हेतु तत्पर हो, धर्मनिरपेक्ष समाज कहलाता है।

16.9 उपयोगी पुस्तकें

- बर्गर पीटर, एल 1969, द सोश्यल रिअलिटी ऑफ रिलीजन

- विलसन, ब्रायन, 1982, रिलीजन इन सोशियोलॉजिकल प्रस्पक्टिव
- लुकमेन थॉमस, 1963, द इन विलिबल रिलीजन

16.10 बोध प्रश्न

- धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा को तीन पंक्तियों में लिखिए?

  _____

  _____

- धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रिया की तीन विशेषताओं को लिखिए?

  _____

  _____

- धर्मनिरपेक्ष समाज को 50 शब्दों में समझाये?

  _____

  _____

- धर्मनिरपेक्षीकरण के आवश्यक तत्व निम्न में से कौन से है?

  (अ) विभेदीकरण की प्रक्रिया

  (ब) तार्किकता

  (स) धार्मिक संकीर्णता का ह्यस

  (द) उपयुक्त सभी

  उत्तर – (द) उपयुक्त सभी

- धर्म की दृष्टि से भारत एक .....राष्ट्र है।

  (अ) हिन्दू (ब) धर्म निरपेक्ष

  (स) धर्म सापेक्ष (द) विधर्मी

  उत्तर – (ब) धर्म निरपेक्ष

इकाई-17

आई0बी0आर0डी0 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यापार संगठन

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 आर.बी.आर.डी. 1. उद्देश्य, 2. गठन, 3. कार्य, 4. मूल्यांकन

17.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष 1. उद्देश्य

17.4 विश्व व्यापार संगठन : सिद्धान्त, संरचना, उद्देश्य, कार्य, विश्व व्यापार समझौता, मंत्रीस्तरीय सम्मेलन, मूल्यांकन

17.5 सारांश

17.6 शब्दावली

17.7 सम्बन्धित प्रश्न

17.8 संदर्भ ग्रंथ

17.0 उद्देश्य

इस इकाई में प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों की संरचना एवं भूमिका पर चर्चा की गयी है। इसका उद्देश्य है-

1. प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों की संरचना और कार्य को समझाना।
2. उक्त अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों के प्रभाव के मूल्यांकन पर प्रकाश डालना।
3. तेजी से बदलती आर्थिक व्यवस्था की प्रकृति को बोधम्य बनाना।

17.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग को वैश्वीकरण का युग कहा जाता है। संचार माध्यम वे तकनीक ने विश्व को सीमित कर दिया है। उदारीकरण और बजारीकरण की लहर ने विश्व को वैश्विक बाजार में बदल दिया है और आर्थिक विकास सर्वोपरि हो गया है। आर.बी.आर.डी. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन जैसी संस्थाऐं महत्वपूर्ण हो गयी हैं। अतः अन्तर्राष्ट्रीय संबंधो को समझने के लिए उक्त संस्थाओं के गठन, कार्य एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन महत्वपूर्ण हो गया है। यहाँ प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठनों के विषय में जानकारी प्रस्तुत करेंगे।

17.2 आर0बी0आर0डी0

पुनर्निर्माण एवं विकास के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक

I.B.R.D. की स्थापना 1945 में हुई थी। I.B.R.D. अन्य सहयोगी संस्थाओं के साथ विश्व बैंक के नाम से जाना जाता है। वर्तमान में इसके अन्तर्गत निम्न संस्थाएँ हैं।

1. अन्तर्राष्ट्रीय विकास एवं पुनर्निर्माण बैंक I.B.R.D.
2. अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ IDA
3. अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम IFC
4. बहुपक्षीय निवेश गारण्टी संस्था MIGA
5. निवेश विवादों को सुलझाने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र ICSID

उक्त पांचों संस्थाओं के समूह को विश्व बैंक कहते हैं। भारत ICSID को छोड़कर अन्य चारों संस्थाओं का सदस्य है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व में आर्थिक संकट था। विश्व युद्ध के व्यस्त अर्थव्यवस्थाओं के पुर्ननिर्माण, व्यापार असंतुलन को दूर करने और स्वतंत्र हो रही अल्प विकसित अर्थ व्यवस्था के विकास हेतु IBRD या विश्व बैंक का गठन किया गया, इसी अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का गठन भी किया गया।

विश्व बैंक के उद्देश्य :

विश्व बैंक की प्रथम धारा में ही इसके उद्देश्यों का वर्णन है जो निम्नानुसार है-

A. सदस्य राज्यों के विकास एवं आर्थिक पुनर्निर्माण हेतु दीर्घकालीन ऋण प्रदान करना/इसके तीन उद्देश्य है।
   1. युद्ध से क्षतिग्रस्त अर्थव्यवस्थाओं का पुनर्निर्माण।
   2. शांति कालीन स्थिति में विकास के लिए पुनः वित्त प्रदान करना।
   3. अल्प विकसित देशों के उत्पादन व संसाधनों का विकास करना।

B. भुगतान संतुलन में समानता लाना। इस हेतु अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के संतुलित एवं सतत् विकास हेतु पूंजी के दीर्घकालीन विनियोग को प्रोत्साहित करना ताकि उत्पादन बड़े और जीवन स्तर में सुधार हो सकें।

C. सदस्य देशों में पूंजी निवेश को प्रोत्साहित करना। इस हेतु निम्न प्रावधान है-
   1. निजी ऋण एवं पूंजी निवेश की गारण्टी देना।
   2. पूंजी निवेश में कमी हो तो स्वयं अपनी शर्तो पर उत्पादन हेतु ऋण उपलब्ध करवाना।

D. छोटी और बड़ी परियोजनाओं के लिए ऋण देना और ऋण हेतु गारण्टी देना।

E. जीवन स्तर ऊंचा उठाने और मानवीय विकास हेतु परियोजनाएं एवं कार्यक्रम चलाना।

विश्व बैंक का गठन-

यदि कोई देश अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का सदस्य बनता है तो स्वतः वह विश्व बैंक का सदस्य बन जाता है। यदि वह अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सदस्यता त्यागता है तो विश्व बैंक की सदस्यता भी स्वतः समाप्त हो जाती है। किसी देश को सदस्यता से निम्न दो आधार पर वंचित किया जा सकता है-

1. स्वयं राष्ट्र सूचित करने के पश्चात् त्यागपत्र दे सकता है। लेकिन यदि उसने ऋण लिया है तो उसे भुगतान करना पड़ेगा।
2. बैंक के नियमों के उल्लंघन के चलने गर्वनर मंडल द्वारा भी किसी देश को सदस्य से वंचित किया जा सकता है।

इसके सदस्य दो स्तर के हैं पहले मौलिक सदस्य इनकी संख्या 30 है, जिन्होंने 31 दिसम्बर 1945 से पूर्व बैंक की सदस्यता ले ली है।

दूसरे सामान्य सदस्य, जिनकी सदस्यता 31 दिसम्बर, 1945 के पश्चात् की है, विश्व बैंक की कुल सदस्यता संख्या 185 है।

गर्वनर मंडल

बैंक का संचालन गर्वनर मंडल करता है। इसमें प्रत्येक सदस्य देश का एक प्रतिनिधि होता है जिसे गर्वनर कहा जाता है। किन्तु बैंक के समस्त कार्य अधिशासी गर्वनर करते है, जिनकी संख्या 21 है, जिनका बैंक के कैपिटल स्टॉक (पूँजी) में सबसे बड़ा भाग होता है। विश्व बैंक का अध्यक्ष भी होता है। चूंकि अमेरिका सबसे बड़ा शेयर धारक है, अतः सामान्यतः अमेरिकी नागरिक ही विश्व बैंक अध्यक्ष बनता रहा है। विश्व बैंक का मुख्यालय **वाशिंगटन डी.सी.** में है।

विश्व बैंक के कार्य

सर्वप्रथम बैंक का मुख्य कार्य अल्प विकसित राष्ट्रों को विकास हेतु ऋण उपलब्ध कराना है। ऋण 5 से 20 वर्ष की अवधि के लिए दिये जाते हैं। लघु व वृहद् परियोजनाओं के लिए भी ऋण मिलते है इस हेतु निम्न प्रावधान हैं-

1. बैंक अपनी प्रदत्त पूंजी में से 20 प्रतिशत तक अपने कोष से सदस्यों को ऋण दे सकता है।
2. व्यक्तिगत गारण्टी पर भी ऋण सुविधा है। इस हेतु संबंधित देश की स्वीकृति व सेवा शुल्क 1 प्रतिशत तक वसूला जाता है।
3. ऋण की मांग, ब्याज दर आदि शर्तें बैंक द्वारा निर्धारित की जाती है।
4. सामान्यतया ऋण विकास परियोजनाओं हेतु स्वीकृत होते हैं।
5. ऋण का भुगतान स्वर्ण अथवा प्राप्त मुद्रा में हो सकता है।

उदाहरण- ऋण यदि डॉलर में लिया है तो चुकाना भी डॉलर में ही पड़ेगा। संबंधित देश की मुद्रा मान्य नहीं होगी।

ऋण के अतिरिक्त सदस्य देशों को तकनीकी सेवाएं भी दी जाती है। इस हेतु बैंक ने **''द इकोनॉमिक डेवलमेंन्ट इंस्टीटयूट''** (आर्थिक विकास संस्थान) की स्थापना वाशिंगटन में की है।

मूल्यांकन-

यद्यपि विश्व बैंक वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण संस्था है। इसने विकास एवं पुनर्निर्माण हेतु पर्याप्त ऋण उपलब्ध कराया है, जैसे- भारत की मदद के लिए 1958 में 'भारत सहायता क्लब' की स्थापना की गई थी। इसका वर्तमान नाम ''भारत विकास मंच'' है। इससे विकासशील देशों को ऋण व विभिन्न परियोजनाएं संचालित हो रही हैं, लेकिन 2003 की रिपोर्ट कहती है कि अभी भी बैंक में प्रभुत्व विकसित राज्यों का ही है। इसकी नीतियां विकासशील देशों के प्रतिकूल है, जैसे- औद्योगिक राज्यों के उत्पादनों की तुलना में विकासशील देशों पर प्रशुल्क अधिक है, कुल मिलाकर विश्व बैंक की नीतियों में परिवर्तन की मांग विकासशील देशों द्वारा की जाती रही है। यद्यपि 2001 के पश्चात् आई वैश्विक मंदी के दौरान् बैंक द्विवर्षीय विशेष कार्य योजना (सैप) शुरू की है, जिसका उद्देश्य आर्थिक संकट से जूझ रहे देशों का नीतिगत परामर्श के साथ वित्तीय उपायों द्वारा मदद की जा सके।

बोध प्रश्न-

1. विश्व बैंक के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये?

   .....

   .....

   .....

2. गर्वनर मंडल क्या है? उसके गठन पर प्रकाश डालिए?

   .....

   .....

   .....

3. विश्व बैंक के प्रमुख कार्य कौन से हैं?

   .....

   .....

   .....

17.3 अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन है। 1944 में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान 40 देशों के प्रतिनिधि न्यू हैम्पशायर के ब्रिटेन वुड नामक स्थान पर एकत्र हुए। उनका उद्देश्य नई अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रणाली का निर्माण करना था, जिससे एक उदार आर्थिक प्रणली जो अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग पर आधारित हो बन सकें। अमेरिका को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा प्रबंधन की जिम्मेदारी दी गई। सभी देश अपनी मुद्रा को स्वर्ण के साथ साम्य स्थापित करने के लिए सहमत हो गये। सभी देशों ने व्यापार को बढ़ावा देने के लिए नई मौद्रिक नीति स्वीकार कर ली जिसे ब्रिटेन बुडस व्यवस्था कहा गया।

यूरोप के पुर्ननिर्माण की मार्शल योजना, अमेरिका की टर्की, ग्रीन के लिए इमैन सिद्धांत के साथ ही शीतयुद्ध में हो रहे खर्चे और सोवियत खेमे से जाने से रोकने के लिए विकासशील देशों को भारी सहायता और अनुदान अमेरिका ने दिये जो डॉलर में थे, इस प्रकार डॉलर विश्व मुद्रा बन गई और अमेरिका प्रमुख कर्ज दाता।

ब्रिटेन बुड्स सम्मेलन के लिए गए निर्णय के अनुसार 1945 को अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना वाशिंगटन में हुई वर्तमान में इसके 184 देश सदस्य हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य

अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक प्रबंधन इसकी प्रमुख जिम्मेदारी है। इसके उद्देश्य निम्न हैं-

1. अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक सहयोग को प्रोत्साहित करना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सन्तुलित विकास को प्रोत्साहन देना।
3. विनिमय दरों में स्थिरता रखना।
4. बहुपक्षीय भुगतानों की व्यवस्था करना साथ ही विनिमय प्रतिबंधों को कम करना या समाप्त करना।
5. प्रतिकूल भुगतान सन्तुलन को सुधारने के लिए सदस्य देशों को आर्थिक मदद देना।
6. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट अदायगी के समय असन्तुलन की मात्रा और अवधि को कम करना।
7. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का विस्तार, रोजगार और विकास के उच्च स्तर को प्राप्त करना।

संरचना

इसका प्रबंधन एक बोर्ड ऑफ गवर्नर्स या गर्वनर मंडल द्वारा होता है। प्रत्येक सदस्य देश एक गर्वनर मनोनीति करता है। प्रत्येक देश का एक वैकल्पिक गर्वनर भी होता है, जो मुख्य गर्वनर के न रहने पर उसके बदले मतदान या अन्य कार्य कर सकता है। प्रत्येक गर्वनर को सदस्यता के 250 मत प्राप्त होते हैं, साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष में एक लाख SDR पर अतिरिक्त मत देने का अधिकार है। इस कारण अमीर देशों के मत अधिक होते है, क्योंकि कोष की राशि भी उन्हीं के पास अधिक है। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की समीक्षा की बैठक प्रतिवर्ष होती है।

संसाधन

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधन प्राप्त करने के प्रमुख स्त्रोत निम्न है -

1. **सदस्यों से प्राप्त अंशदान-** प्रत्येक सदस्य देश के निर्धारित कोष का निर्धारण संबंधित देश के सकल घरेलू आय के अनुसार होता है। इसी आधार पर वह अंशदान करता है। प्रत्येक उत्पाद अर्थव्यवस्था के अन्य मानकों के आधार पर सदस्य का कोटा निर्धारित होता है जिसे स्पेशल ड्राविंग राइट्स अथवा विशेष आहरण अधिकार कहते हैं। संक्षेप में, इसे (एस.डी.आर.) कहा जाता है। एक लाख एस.डी.आर. एक मत के बराबर होता है। अर्थव्यवस्था के आकार से अंशदान तय होते हैं। अपने अंश के आधार पर अमेरिका

प्रथम व जापान व जर्मनी दूसरे स्थान पर हैं। सदस्य राष्ट्रों के कोटों में परिवर्तन उनकी अर्थव्यवस्था के अनुसार होता है।

2. **कर्ज-** सदस्य देश अपने भुगतान संतुलन हेतु IMF से कर्ज ले सकते हैं। यह अल्पकालीन या दीर्घकालीन हो सकते हैं। कर्ज नीतिगत आर्थिक विकास हेतु ही प्राप्त होता है। साथ ही IMF भी विकसित देशों से कर्ज ले सकता है ताकि अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक व्यवस्था पर आये किसी संकट को टाला जा सके। 11 अति विकसित देश आवश्यकता पड़ने पर IMF को कर्ज देने के लिए वचनबद्ध हैं।

भारत एवं अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष

भारत का मुद्रा कोष से अच्छे व घनिष्ट संबंध रहे हैं। भारत ने सदैव नीति निर्माण व संचालन में मुद्रा कोष को सहयोग दिया है। भारत IMF के वित्त पोषक देशों में एक है। भारत का वित्त मंत्री मुद्रा कोष के गवर्नर में मंडल में पदेन गवर्नर होता है तथा RBI दूसरा वैकल्पिक गवर्नर होता है। 1970 तक भारत के आधार अंशदान पर प्रथम पांच देशों में था। भारत अब 13वें स्थान पर है। भारत समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से ऋण विभिन्न परियोजनाओं के सम्पादन हेतु लेता रहा है। कोष के नीति निर्माण व प्रशिक्षण कार्यों में भारत ने हमेशा सहयोग किया है। यद्यपि 2006 में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की बैठक में चार देशों के निर्धारित कोटे में वृद्धि का निर्णय लिया गया। इनमें चीन, मैक्सिको, दक्षिण कोरिया व टर्की है। उक्त राष्ट्रों के कोटे में वृद्धि से भारत का सापेक्षित कोटा 1.95 से घटकर 1.91 प्रतिशत रह गया है। भारत सहित कुल 23 देशों ने इस प्रस्ताव का विरोध किया था।

मूल्यांकन

कोष में देशों का स्थान उनकी अर्थव्यवस्था के अनुरूप है। अतः अमीर देशों का प्रभुत्व कोष में स्पष्ट दिखाई देता है। यद्यपि कोष ने अंशदान के पुनरीक्षण का प्रस्ताव रखा है। जिसका लाभ विकासशील देशों को होगा। 2003 के आंकड़ों के अनुसार कोष 14 सदस्य देशों को आरक्षित सुविधा, उदेशो को विस्तारित सुविधा तथा 36 निर्धन देशों को गरीबी हटाने व विकास करने की सुविधा दे रहा है। अपनी वित्तीय स्थिति में सुधार के लिए कोष का अपने जमा स्वर्ण भंडार में से कुछ भाग बेचने का भी अधिकार है। इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और आर्थिक विकास में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का महत्वपूर्ण स्थान बन गया है।

सारांश

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एक अन्तर्राष्ट्रीय मौद्रिक संगठन है, जिसके सदस्य देश 184 हैं। इसमें राज्यों की शक्ति निर्धारित कोटे के आधार पर होती है, जो राज्य की अर्थव्यवस्था तथा अन्य मानकों के अनुरूप है। अतः अमीर देशों को अधिक संख्या में मताधिकार होने से इसकी नीतियां भी विकसित देशों के अनुसार और विकासशील देशों के प्रतिकूल है।

यहां विचारणीय यह भी है कि गरीब और कर्ज़दार देशों को कोष की नीतियों व शर्तों का पालन करना पड़ता है। लेकिन इन नीतियों के दुष्परिणामस्वरूप विकासशील देश अपने अनुदान कम करने, मुद्रा का अवमूल्यन करने तथा अर्थव्यवस्था का निजीकरण करने को बाध्य हो रहे हैं। ब्याज व उधार कोष को लौटाने के बाध्यकारी नियमों से कर्ज़दार देशों में उत्पादन में कमी व बेरोजगारी भी बढ़ी है। इसका विरोध विकासशील देश करते हैं। भारत में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की विवादास्पद नीतियों पर तीखी बहस चल रही है।

बोध प्रश्न

1. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष क्या है?

.....

.....

.....

2. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के उद्देश्य क्या हैं?

.....

.....

.....

3. ब्रिटेन वुड्स व्यवस्था क्या थी?

.....

.....

.....

4. अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के संसाधनों के प्रमुख स्त्रोत क्या है?

.....

.....

.....

17.4 विश्व व्यापार संगठन

गैट (तटकर और व्यापार पर आम समझौता) की स्थापना 1947 में की गयी थी। यह 1948 से प्रभावशाली हुआ। लेकिन गैट की व्यवस्था से भी अधिक उदार और प्रतिबंध रहित अर्थव्यवस्था विकसित देशों और भूमंडलीकरण की मांग थी। फलस्वरूप गैट को ही परिवर्तित कर 1995 में 123 देशों ने हस्ताक्षर करके विश्व व्यापार संगठन अथवा WTO की स्थापना की और आज यह विश्व का सबसे प्रभावशाली आर्थिक संगठन है, जिसकी सदस्य संख्या 26 जून 2014 के आंकड़े के अनुसार 160 है।

प्रमुख सिद्धांत

इसके प्रमुख सिद्धांत निम्नलिखित हैं-

1. आन्तरिक उद्योग की सुरक्षा हेतु तटकर।
2. तटकरों की सीमा का निर्धारण।
3. सर्वाधिक समर्थिक राष्ट्र का दर्जा (M.N.F)
4. राष्ट्रीय समानता का सिद्धांत।

विश्व व्यापार संगठन : संरचना एवं गठन

WTO की सर्वोच्च इकाई मंत्री स्तरीय सम्मेलन है, जिसकी बैठक दो वर्ष के अन्तराल में होती है। एक महासभा भी है जिसके सभी सदस्य देश सदस्य है। जनरल कॉन्सिल या सामान्य परिषद के अधीन अलग-अलग तीन परिषदें बनाई गई हैं।

1. वस्तु व्यापार की परिषद।

2. सेवा व्यापार की परिषद।

3. व्यापार सम्बद्ध बौद्धिक सम्पदा अधिकारों की परिषद NH निर्णय प्रक्रिया NDWTO में निर्णय सर्व सहमति से होते हैं किन्तु मत भिन्नता की स्थिति में एक देश एक मत का सिद्धान्त मान्य है, निर्णय बहुतमत से होते हैं।

सम्बद्ध समितियां 1. विवाद निवारण समिति।

ND इसमें दो समितियां है- 2. व्यापार नीति समीक्षा समिति।

सचिवालय

स्विट्जरलैण्ड के जेनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का मुख्यालय है। संगठन का प्रधान महानिर्देशक होता हैं, जिसके सहयोग हेतु चार उप निर्देशक होते है, जिनकी नियुक्ति महानिर्देशक सदस्य देशों की अनुशंसा पर करता है। सचिवालय में 500 के करीब कर्मचारी नियुक्त हैं। सचिवालय का कार्य है-

1. पूर्ण रोजगार की प्राप्ति सुनिश्चित करना जिससे जीवन स्तर ऊँचा उठ सके।

2. वस्तुओं एवं सेवाओं के उत्पादन और व्यापार का प्रसार करना।

3. वैश्विक संसाधनों का अनुकूलतम उपयेाग कर सतत् विकास को बढ़ावा देना जिससे पर्यावरण सुरक्षित रह सके।

4. विकासशील देशों के आर्थिक विकास को प्रोत्साहन देना जिससे वे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में न्यायोचित भाग प्राप्त कर सकें।

5. आयात-निर्यात व व्यापार की बाधाओं को दूर करना जिससे वैश्विक व्यापार को बढ़ावा मिले।

6. विश्व स्तरीय बहुपक्षीय सुसंगठित व्यापार व्यवस्था को विकसित करना।

विश्व व्यापार संगठन : कार्य

1. विश्व व्यापार संगठन द्विपक्षीय और बहुपक्षीय व्यापार समझौता के क्रियान्वयन, प्रबंधन और संचालन में सहायता करता है।

2. यह नागरिक, विमानन, दुग्धोत्पाद, मांस व्यापार, सरकारी खरीदी आदि की व्यवस्था सुनिश्चित करता है। बहुपक्षीय समझौते हेतु नीति निर्माण और उचित ढांचे की व्यवस्था करता है, जिससे उक्त समझौतों का परिपालन हो सके।

3. यह मंत्री स्तरीय सम्मेलन द्वारा स्वीकृत समझौतों बहुपक्षीय व्यापारिक निर्णयों वार्ताओं के संचालन हेतु एक मंच प्रदान करता है।

4. यह सदस्य देशों के मध्य उत्पन्न व्यापार सम्बंधी विवादों के हल हेतु सकारात्मक प्रयास करता है।

5. यह सदस्य देशों की राष्ट्रीय व्यापार नीतियों की समीक्षा व निगरानी करता है, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन के शर्तों के प्रतिकूल निर्णय न हो सके। इसलिए इसे विश्व का पुलिसमैन कहा जाता है।

6. अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व वित्तीय नीति निर्धारण से जुड़ी अन्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओं से सहयोग करता है।

विश्व व्यापार समझौता

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन का पूर्व संगठन गैट सिर्फ वस्तुओं के व्यापार से संबंधित नियम ही बनाता था। कृषि क्षेत्र भी इससे बाहर था। लेकिन उदारीकरण और वैश्वीकरण के समर्थक इसके कार्य क्षेत्र को बढ़ाना चाहते थे, फलस्वरूप उरूग्वे वार्ता में चार नये क्षेत्र वार्ता सूची में रखे गये-

1. व्यापार से संबंधित निवेश उपाय (TRIMS)

2. बौद्धिक सम्पदा अधिकार के पहलुओं से संबंधित व्यापार (TRIP)

3. सेवाओं में व्यापार।

4. कृषि।

यद्यपि चारों क्षेत्र किसी भी अर्थव्यवस्था के आधारभूत क्षेत्र हैं। अतः विकासशील देश सभी क्षेत्रों को व्यापार हेतु खोलना नहीं चाहते थे। वे सिर्फ वस्तु व्यापार के नियम बनाने तक ही संगठन का सीमित रखना चाहते थे। किन्तु विकसित देशों के हित भिन्न थे। वे चाहते थे कि राष्ट्रीय सीमाएं शिथिल हो और उनके लिए विकासशील देशों के बाजार खोल दिये जाएं। क्योंकि वे प्रतिस्पर्धा में आगे थे और विकासशील देशों के घरेलू उद्योग उनके सामने टिक नहीं सकते थे। अतः विकासशील देशों ने इन व्यापार नियमों को कड़ा विरोध किया।

डंकल प्रस्ताव

उक्त विरोध को देखते हुए गैट के तत्कालीन महानिदेशक आर्थर डंकल (Arthur Dunker) ने 1991 में अपना 500 पृष्ठ का प्रस्ताव रखा। सदस्य देशों को इस पर हस्ताक्षर करने के लिए जनवरी, 1992 तक का समय दिया था। लेकिन उक्त प्रस्ताव का भी विरोध हुआ। क्योंकि वह सिर्फ व्यापार नहीं, सेवा व कृषि क्षेत्र तक विस्तृत था। सर्वाधिक विरोध पेन्टेट नियमों का हुआ जो विकसित देशों को और धनी तथा विकासशील देशों को और आर्थिक बोझ बढ़ाने वाला था। उरूग्वे दौर की वार्ताओं में इसका समस्या के हल के प्रयास हुए।

विश्व व्यापार संगठन : आधारभूत समझौते

गेंट को अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन का स्वरूप देने के लिए निम्न समझौते किये गये-

1. वस्तुओं के व्यापार के संदर्भ में बहुपक्षीय समझौता।

2. सेवाओं के व्यापार के संदर्भ में सामान्य समझौता।

3. बौद्धिक सम्पदा व्यापार पर समझौता

4. विवादों के समाधान हेतु नियमों, प्रक्रियाओं पर समझौता।

5. बहुपार्श्विक व्यापार समझौते।

6. व्यापार नीति समीक्षा एवं पुनरावलोकन तंत्र।

इस प्रकार करीब 60 छोटे-बड़े समझौतों द्वारा विश्व व्यापार संगठन को वर्तमान स्वरूप दिया गया जो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए आधारभूत नियम बनाये हैं। आज विश्व व्यापार संगठन सर्वाधिक प्रभावशाली आर्थिक संगठन बन गया है।

विश्व व्यापार संगठन : मंत्री स्तरीय सम्मेलन

विश्व व्यापार संगठन के नीति निर्धारक की प्रक्रिया मंत्री स्तरीय सम्मेलनों में होती है। यह सम्मेलन प्रत्येक दो वर्ष बाद होता है। अभी तक 9 सम्मेलन आयोजित किये जा चुके हैं-

विश्व व्यापार संगठन, मंत्री स्तरीय सम्मेलन

सम्मेलन क्रम	वर्श	स्थान
पहला	1996	सिंगापुर
दूसरा	1998	जेनेवा
तीसरा	1999	सिएटल
चौथा	2001	दोहा
पांचवा	2003	कानकुन
छठवा	2005	हांगकाग
सातवां	2009	जेनेवा
आठवां	2011	जेनेवा
नौवा	2013	बाली, इण्डोनेशिया

वर्तमान युग में आर्थिक विकास चूकि सर्वोच्च मुद्दा है अतः विश्व व्यापार संगठन की मंत्री स्तरीय बैठक महत्वपूर्ण होती जा रही है। यद्यपि ज्यादातर सम्मेलनों में विकसित और विकाशील देशों के मध्य मतभेद की स्थिति दिखाई देती है। क्योंकि औद्योगिक और विकसित देशों के हित अधिक प्रभावी रहते है। वे वस्तु सेवा वे पूंजी प्रवाह के हिमायमती हैं जिनकी उनके पास बहुलता है। लेकिन वे श्रम के वैश्विक प्रवाह को बढ़ावा नहीं देते जिनकी बहुतायत विकासशील देशों के पास है। साथ ही पेटेन्ट और बौद्धिक सम्पदा अधिनियम भी विकासशील देशों के प्रतिकूल हैं।

पर्यावरण संरक्षण और सतत् विकास के अन्तर्गत बनाये गये नियमों से भी विकासशील देश सन्तुष्ट नहीं है, इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन की मंत्री स्तरीय बैठक उत्तर-दक्षिण संवाद का प्रमुख मंच बन गई है।

भारत एवं विश्व व्यापार संगठन

भारत 1947 से GATT का तथा 1995 से WTO का संस्थापक सदस्य रहा है भारत ने सभी आधारभूत समझौतों पर हस्ताक्षर किये हैं। WTO के प्रावधानों को लेकर भारत की चिन्ता के निम्न कारण हैं-

1. TRIMS के अन्तर्गत किये गये प्रावधान विकसित देशों के हितों में से भारत के प्रतिकूल हैं।

2. सेवा व्यापार क्षेत्र में 11 क्षेत्र सम्मिलित हैं, लेकिन अन्य विकासशील देशों की भांति भारत प्रतिस्पर्धा में सक्षम नहीं है। साथ ही सेवा क्षेत्र में विकसित देशों के राष्ट्रीय मापदण्ड बड़ी बाध है।

3. TRIPS बोद्धिक सम्पदा अधिकारों पर समझौते के अन्तर्गत सात प्रकार की बौद्धिक सम्पदा है। इसके प्रावधान औद्योगिक व विकसित देशों के पक्ष में है। अविष्कार करने वाले देशों को पेन्टेट के माध्यम से उपयोग करने वाले देश सदैव शुल्क देते रहेंगे।

4. भारत की बड़ी चिंता कृषि क्षेत्र को लेकर है, जहाँ प्रतिस्पर्धा वैश्विक होने पर भारतीय कृषकों को नुकसान हो सकता है

5. 2003 से उत्पाद पेन्टेट लागू होने से भारत में दवाइयों की कीमत में 25 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि का अनुमान है।

6. बहुराष्ट्रीय कम्पनियों और विकसित देशों द्वारा भारत के बीज उत्पादन पर प्रभुत्व की आशंका निरन्तर है। क्योंकि बीजो और पौधों में सामान्य परिवर्तन के बाद अपने नाम से विकसित देश पेन्टेट करा सकते हैं, जिससे भारत की सम्पन्न जैविक विविधता पर अधिकार किया जा सकता है।

यद्यपि कृषि, पर्यटन, वस्त्र उद्योग और सेवा क्षेत्र में भारत की संभावनाएं आपार है, और इसलिए कुछ आशावादी स्वर भी सुनाई देते है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन के प्रावधानों में विकासशील देशों के हितों की रक्षा को लेकर भारत से बड़ी आशाएं है, लेकिन भारत और ब्राजील के प्रयासों के बाद भी उतने सशक्त निर्णय नहीं करवा पाये जैसी G-20 के देशों को आशा थी।

मूल्यांकन

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना से नई आर्थिक विश्व व्यवस्था दृष्टिगत हुई है। वैश्विक आर्थिक नियमों को कानूनी सुरक्षा प्राप्त हुई है। विश्व बैंक व अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष को सदस्य देशों के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप कों कानूनी अधिकार नहीं है, जो विश्व व्यापार संगठन के पास है। इससे यह अत्यधिक शक्तिशाली आर्थिक संगठन बन गया है। विश्व व्यापार संगठन के प्रभाव से विश्व की आर्थिक व्यवस्था में एकरूपता आ रही है। उदारीकरण, भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया तेज हुई है। आर्थिक विकास भी बढ़ा है, पर अमेरिका और अन्य औद्योगिक देशों की प्रभुता भी विकासशील देशों के लिये संवाद का बड़ा मुद्दा है, राष्ट्रीय WTO का विरोध भी करते हैं। इसे राज्यों की सम्प्रभुता के लिए खतरा भी मानते हैं। लेकिन वर्तमान में सभी अर्थव्यवस्थाएं एक-दूसरे पर इतनी आश्रित हैं कि इस वैश्विक संगठन का सदस्य बने बिना अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में सम्मिलित होना संभव नहीं है।

17.5 सारांश

WTO विशव का सबसे बड़ा आर्थिक संगठन है, जिसका उद्देश्य वैश्विक व्यापार के समान नियमों का निर्माण व क्रियान्यन करना है। साथ ही सतत् विकास और पर्यावरण संसक्षण भी इसके उद्देश्य हैं। WTO के वर्तमान में 160 देश हैं। इसे कानूनी शक्ति प्राप्त है। इसके अन्तर्गत वस्तु, सेवा बौद्धिक सम्पदा और कृषि इन चार क्षेत्रों में आधारभूत समझौते किये गये है जिससे उदारीकरण औरनिजीकरण बढ़ा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियां शक्तिचार हुई हैं। इसके प्रावधानों को लेकर विकसित व विकासशील देशों में चर्चा जारी है।

बोध प्रश्न :

1. विश्व व्यापार संगठन के उद्देश्य क्या है?

   .....

   .....

   .....

2. विश्व व्यापार संगठन के आधारभूत समझौते कौन से हैं?

   .....

   .....

   .....

3. भारत एवं विश्व व्यापार संगठन पर टिप्पणी लिखिए?

   .....

   .....

   .....

17.6 शब्दावली

1. पुनर्वलोकन- फिर से देखा, पुनः समीक्षा करना।
2. सर्वाधिक समर्थिक राष्ट्र का दर्जा सभी देश एक-दूसरे से समानता या भेदभाव रहित व्यापार रखेंगे।
3. बहुपक्षीय-दो से अधिक पक्षों के मध्य।

इकाई-18

क्षेत्रीय संगठन : यूरोपीय समुदाय, आसियान, एपेक, सार्क (दक्षेस) ओ0आई0सी0 तथा ओ0ए0यू0

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 यूरोपीय समुदाय

- 18.2.1 उद्‌भव, उद्देश्य
- 18.2.2 संरचना एवं संस्थाएँ
- 18.2.3 विश्व राजनीति में भूमिका

18.3 दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (आसियान)

- 18.3.1 लक्ष्य एवं उद्देश्य
- 18.3.2 संरचना एवं कार्य
- 18.3.3 भूमिका

18.4 एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग परिषद (एपेक)

18.5 दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस)

- 18.5.1 उद्देश्य
- 18.5.2 संरचना एवं कार्य
- 18.5.3 भूमिका एवं सम्भावनाऐं

18.6 इस्लामिक सम्मेलन संगठन (ओ.आई.सी.)

- 18.6.1 उद्देश्य एवं कार्य
- 18.6.2 संरचना एवं भूमिका

18.7 अफ्रीकी एकता संगठन (ओ.ए.यू.)

- 18.7.1 उद्देश्य

18.7.2 संरचना

18.7.3 भूमिका एवं कार्य

18.8 सारांश

18.9 शब्दावली

18.10 सम्बन्धित प्रश्न

18.11 संदर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

वर्तमान युग संगठनों का युग है, विज्ञान और तकनीक से सिमटती दुनिया ने परस्पर निर्भरता में वृद्धि की है, राष्ट्रीय सीमाएं शिथिल हो रही हैं और न सिर्फ अन्तर्राष्ट्रीय बल्कि क्षेत्रीय सहयोग संगठनों की संख्या और प्रभाव में वृद्धि हो रही है। इस इकाई में आप इसी विषय पर चर्चा की गयी है। इसका उद्देश्य है-

1. क्षेत्रीय संगठनों के उद्‌भव व विकास को समझाना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय संगठनों की प्रभावी भूमिका का अध्ययन करना।
3. क्षेत्रीय संगठनों की प्रासंगिकता और उनके भविष्य की संभावनाओं पर प्रकाश डालना।

18.1 प्रस्तावना

क्षेत्रीय संगठनों के उद्‌भव के मुख्य कारक हैं, समान आर्थिक हित तथा समान इतिहास, संस्कृति और भूगोल अन्तर्राष्ट्रीय जगत में प्रभाव डालने के लिए भी क्षेत्रीय संगठन हैं जैसे-जैसे निजीकरण, उदारीकरण के कारण आर्थिक हित महत्वपूर्ण हुए हैं, समान आर्थिक सोच, साझा बाजार जैसे आर्थिक हितों पर आर्थिक क्षेत्रीय संगठनों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। इस अध्याय में प्रमुख क्षेत्रीय संगठनों पर प्रकार डाला गया है।

18.2 यूरोपीय समुदाय

इसे यूरोपीय संघ, यूरोपीय साझा बाजार, यूरोपीय आर्थिक समुदाय आदि नामों से भी जाना जाता है, द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् ध्वस्त यूरोप की आर्थिक स्थिति सुधार करने के उद्‌देश्य से 6 देशों की पहल ने आज इस विश्व का सबसे प्रभावशाली क्षेत्रीय संगठन बना दिया है। वर्तमान में इसके सदस्य देशों की संख्या 28 हो चुकी है। इसके क्षेत्र में हो रहे विस्तार से इसकी सफलता का परिचय मिलता है।

18.2.1 उद्‌भव, उद्देश्य

यूरोपीय यूनियन की स्थापना इसका पहला कदम था, जब 6 देशों बेल्जियम, फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी, इटली और नीदरलैण्ड ने 1952 में पहली बार यूरोपीय कोयला और स्टील

समुदाय का गठन किया था। चूंकि यूरोप द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आर्थिक मंदी का शिकार था और खोई प्रतिष्ठा प्राप्त करना चाह रहा था। इसलिए इन 6 देशों के प्रयास को भारी सफलता मिली सदस्य बढ़ते-बढ़ते 1995 तक 15 हो गये। 2004 इस दिशा में अभूत पूर्व सफलता मिली रहा जब एक साथ 10 नये सदस्य इसमें सम्मिलित हुए और सदस्य संख्या 25 हो गई। धीरे-धीरे वस्तु, व्यक्ति, सेवा और पूंजी के अबाध प्रवाह ही सम्मति बनने से विकास की गति बढ़ी। वैश्विक स्पर्धा में इस समुदाय को सफलता मिली और अब 2007 में बुल्गारिया और रोमानिया की सदस्यता के साथ सदस्य देशों की संख्या 28 हो गई है।

यूरोपीय संघ के सदस्य

वर्तमान सदस्य (28) - आस्ट्रिया, बेल्जियम, डेनमार्क, फिनलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, ग्रीस, रिपब्लिक ऑफ आयरलैण्ड, इटली, लक्जेनबर्ग, नीदरलैण्ड, पुर्तगाल, स्पेन, स्वीडन, यूनाइटेड स्टेट, लातविया, लिथुआनिया, एस्टोनिया, पोलैण्ड, हंगरी, चैक गणराज्य, स्लोवाकिया, स्लोवेतिया, माल्टा, साइप्रस, बुल्गारिया, रूमानिया, क्रोएशिया (2013)

उद्देश्य :- यूरोपीय समुदाय के उद्देश्य निम्नानुसार है -

1. उन सभी विवादों को, जो यूरोप में अशांति फैलाते हैं या मतभेद उत्पन्न करते हैं, समाप्त करना।
2. यूरोप को विश्व में पुनः प्रतिष्ठित करना। इस हेतु आर्थिक शक्ति में वृद्धि करना और सांस्कृतिक परम्परा को समृद्धि प्रदान करना।
3. यूरोप के लोगों के रहन-सहन के स्तर में सुधार करना और बेहतर कार्य प्रणाली का विकास करना।
4. यूरोप के पुराने छोटे-छोटे बाजारों को समाप्त कर राष्ट्रीय सीमाएं शिथिल कर, समान व्यापारिक और आर्थिक नियमों द्वारा एक बड़े बाजार का निर्माण करना जो विश्व व्यापार में प्रतिस्पर्धा कर सके।
5. आपसी सहयोग से तकनीकी विकास द्वारा यूरोपीय उद्योगों का विकास करना।
6. भविष्य हेतु एक सशक्त यूरोपीय संघ बनाना जो आर्थिक व राजनीतिक स्तर पर सशक्त हो।

18.2.2 संरचना एवं सस्थाएँ

यूरोपीय संघ को सशक्त बनाने के लिए 2004 में इसका नवनिर्मित संविधान लागू किया गया है। इन संविधान को 2007 तक लागू करने की योजना थी पर अभी तक 10 देशों की सरकारों ने ही इस पर सहमति दी है।

यूरोपीय संघ में निम्न संस्थाएँ हैं :-

1. **यूरोपीय आयोग**- इसके सदस्यों की संख्या 25 है, जिनका निर्वाचन सदस्य राज्य करते हैं। इसके सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्ष है इसका उद्देश्य यूरोपीय संघ के संविधान तथा यूरोपीय एकता के लिए की गई संधियों और प्रावधानों का संरक्षण करना है। इसका मुख्यालय ब्रुसेल्स में है।

2. **यूरोपीय परिषद**- इसमें सदस्य राज्यों में मंत्री सम्मिलित होते हैं। यह नीति निर्माण की रूपरेखा बनाती है। यह निर्बाध व्यापार, आर्थिक विकास के सहयोग हेतु संघीय कानून बनाती है। यह प्रावधानों को लागू करने के लिए सदस्य राज्य की सरकारों से मदद ले सकती है। हर 6 माह में अध्यक्ष बदलता है और नये अध्यक्ष के चुनाव के समय सदस्य राज्यों का शिखर सम्मेलन भी होता है।

3. **यूरोपीय संसद**- इसका गठन 1999 में किया गया। इसकी सदस्य संख्या 732 है, जो सदस्य राज्यों के द्वारा 5 वर्ष के लिए चुनकर आते हैं, यह राजनीतिक समूह का निर्माण करते हैं। यहां यूरोपीय एकता एवं सार्वजनिक हित के मसलों पर बात होती है। इसे यूरोपीय संघ के बजट को पारित करने एवं अस्वीकार करने का भी अधिकार है। यह संघ की दिशा देने एवं विकास हेतु प्रयास करती है।

4. **द कोर्ट ऑफ जस्टिस**- इसका गठन 1989 में किया गया। इसमें 25 न्यायाधीश व 8 महाधिवक्ता होते हैं। इसके निर्णय बाध्यकारी हैं। इसका मुख्य कार्य संधियों और प्रावधानों को लागू करवाना एवं उत्पन्न विवादों का निपटारा करना है।

5. **कोर्ट ऑफ आडीटर्स**- 1975 से लागू इस संस्था के सदस्य 15 हैं। इसका उद्देश्य वित्तीय क्रियाकलापों का लेखांकन एवं लेखा परीक्षण करना है। यह बजट को प्रमाणित करता है। कुल मिलाकर इसका कार्य आर्थिक लेन-देन में पारदर्शिता रखना है। इसका मुख्यालय लक्जमबर्ग में है।

यूरो जोन- 1991 में आर्थिक प्रतिस्पर्धा से निपटने के लिए मास्ट्रिश्च नीदरलैण्ड में 12 राष्ट्रों ने यूरोपीय समुदाय में सम्मिलत सभी देशों के लिए समान मुद्रा चलाने की सहमति जतायी। इसी आधार पर 2002 से यूरो मुद्रा का चलन शुरू हुआ। अभी तक 15 राज्यों ने इसे स्वीकार किया है इन्हें यूरो जोन कहा जाता है। ब्रिटेन, स्वीडन, डेनमार्क इसमें सम्मिलित नहीं है वह इसे अपने राष्ट्रीय हित व सम्प्रभुता पर प्रहार मान रहे हैं।

भारत एवं यूरोपीय संघ- भारत के यूरोपीय संघ से अच्छे सम्बन्ध हैं। भारत के कुल निर्यात का 19 प्रतिशत यूरोपीय संघ को जाता है, भारत व यूरोपीय संघ में सम्बन्ध दो आधार पर हैं - 1. व्यापार सहयोग 2. विकास सहायता

भारत एवं यूरोपीय संघ - शिखर सम्मेलन

क्र.	स्थान	वर्श
प्रथम	लिस्बन	2000
द्वितीय	नई दिल्ली	2002
तृतीय	कोपेनहेगन	2002
चतुर्थ	नई दिल्ली	2003
पंचम	द हेग	2004
पष्ठम	नई दिल्ली	2005
सप्तम	हेल सिंकी (फिनलैण्ड)	2006
अष्ठम	नई दिल्ली	2007
दसवां	नई दिल्ली	2009

भारत यूरोपीय संघ का सबसे बड़ा व्यापार साझीदार है और यूरोपीय संघ से भारत के रिश्ते बहुत अच्छे हैं।

भूमिका और भविष्य- पिछले चार दशकों में यूरोपीय संघ के सदस्यों और प्रभाव में व्यापक वृद्धि हुई है नये राज्य इसकी सदस्यता लेने हेतु आतुर हैं। इसने न सिर्फ आर्थिक क्षेत्र में बल्कि राजनीति क्षेत्र में भी समरूपता लाने में सफलता प्राप्त की है। विश्व की एक ध्रुवीकरण से बहुध्रुवीयकरण की प्रक्रिया में यूरोपीय संघ भी विश्व राजनीति का एक सशक्त केन्द्र बन गया है। आशा तो यह है कि आर्थिक क्षेत्र में उपलब्धि के बाद भविष्य में यह एक राजनीतिक शक्ति के रूप में 'संयुक्त राज्य यूरोप' में बदल जाए और महाशक्ति के रूप में उभरकर अमेरिकी प्रभुत्व को चुनौती दे सकता है साथ ही शक्ति संतुलन में भी सहायक हो सकता है।

18.3 दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ (आसियान)

आसियान दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों का संगठन है। 8 अगस्त, 1967 को इसका गठन बैंकाक घोषणा द्वारा हुआ। इसके पांच प्राथमिक सदस्य थे, इण्डोनेशिया, फिलीपीन्स, मलेशिया, सिंगापुर तथा थाईलैण्ड। 1999 में इसकी सदस्य संख्या 10 हो गई। उक्त पाँचों के अतिरिक्त ब्रुनेई, वियतनाम, लाओस, म्यांमार एवं कम्बोडिया भी इसके सदस्य हैं, यह पूर्णतः असैनिक संगठन है।

18.3.1 लक्ष्य एवं उददेश्य

आसियान के घोषणा पत्र में सात उददेश्य शामिल हैं -

1. समानता और सहभागिता द्वारा समृद्ध और शांतिपूर्ण दक्षिण पूर्व एशियाई राष्ट्र संघ का निर्माण करना, जिससे आर्थिक विकास, सामाजिक व सांस्कृतिक उन्नति को बढ़ावा मिले।

2. सदस्य देशों के मध्य न्याय व विधि के शासन के प्रति आस्था जगाना और इस हेतु घोषणा पत्र के सिद्धातों का अनुपालन करना।

3. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, तकनीकी एवं वैज्ञानिक क्षेत्रों मे साझेदारी कर पारस्परिक विश्वास एवं सहयोग में वृद्धि करना।

4. शैक्षणिक, तकनीकी, पेशागत, प्रशासनिक प्रशिक्षण एवं शोध के जरिये एक दूसरे की मदद करना।

5. कृषि के उद्योग, आवागमन के साधन, संचार सुविधाओं में वृद्धि कर लोगों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के साथ अन्तर्राष्ट्रीय वस्तु व्यापार की समस्याओं का हल करना।

6. दक्षिण पूर्व एशियाई शिक्षा व तकनीक को बढ़ावा देना।

7. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ाना। समान उददेश्यों वाले दूसरे क्षेत्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों का सहयोग प्राप्त करना।

18.3.2 संरचना एवं कार्य

संरचना निम्नानुसार है-

1. **शिखर सम्मेलनः**- यह आसियान का सर्वोच्च सम्मेलन प्रत्येक सदस्य राज्य के राष्ट्राध्यक्ष भाग लेते हैं। 2011 तक आसियान के 16 शिखर सम्मेलन हो चुके हैं।
2. **मंत्री मंडल सम्मेलनः**- यह विदेश मंत्रियों की वार्षिक बैठक है और प्रत्येक सदस्य देश में क्रमशः आयोजित की जाती है।
3. **सचिवालयः**- इसका सचिवालय जकार्ता (इण्डोनेशिया) में है। महासचिव का पद प्रति दो वर्ष के लिए चुनाव के आधार पर दिया जाता है, जबकि अध्यक्ष वर्ण माला के क्रमानुसार चुना जाता है।
4. **अन्य स्थायी समितियांः**- इसके कार्य का सफलता पूर्वक संचालित करने के लिए स्थायी समितयों का गठन किया जाता है। ये स्थायी समीतियां हैं- 1. व्यापार एवं पर्यटन, 2. उद्योग खनिज तथा ऊर्जा, 3. आहार, कृषि व वन सम्पदा, 4. यातायात व संचार, 5. वित्त व बैंकिग, 6. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, 7. सामाजिक विकास, 8. संस्कृति एवं सूचना, 9 बजट।

भारत एवं आसियान- भारत आसियान में 1996 से पूर्ण वार्ताकार देश है। भारत और आसियान के मध्य 2004 में एक ऐतिहासिक समझौता हुआ, जिसके तहत भारत व आसियान के व्यापार को 2007 तक 30 अरब डॉलर तक बढ़ाने पर सहमति हुई। साथ ही रेल, सड़क, जल यातायात, वायु यातायात में विस्तार व आपसी पर्यटन को बढ़ावा देने की योजना है। साथ ही दोनों के मध्य अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद से निपटने की दृढ़ इच्छा शक्ति भी दर्शाई गई। इस हेतु 18 सूत्रीय दस्तावेज जारी किया गया। इस प्रकार भारत ने आसियान देशों से बेहतर सम्बन्ध बनाने की नीति अयनायी हुई है।

18.3.3 भूमिका

अपने उद्देश्यों को पूरा करने के लिए दोनों के मध्य मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने की योजना पर सहमति हुई है। आसियान के माध्यम से इस क्षेत्र की अनेक महत्वाकांक्षी परियोजनाऐं चल रही हैं। भारत के अतिरिक्त चीन, जापान, अमेरिका और यूरोपीय संघ भी पूर्ण वार्ताकार देश हैं। इससे विश्व व्यापार में आसियान के बढ़ते प्रभाव को आंका जा सकता है। इसने सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्रशासनिक, वैज्ञानिक क्षेत्रों में व्यापक सहयोग व सक्रियता दिखाई है। पर्यटन विकास हेतु 'आसियान' सामूहिक संगठन बना जिससे सदस्य राज्यों के नागरिक बिना वीजा के अन्य आसियान देशों में भ्रमण कर सकते हैं, लेकिन यूरोपीयन संघ की तुलना में आसियान की प्रगति धीमी रही है। सदस्य देशों के मध्य विवाद और संसाधनों का अभाव इसके प्रमुख कारण हैं। दूसरा कारण पश्चिम देशों का हस्तक्षेप भी रहा है, जिससे यह अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर सका है फिर भी इस क्षेत्र को मुक्त व्यापार क्षेत्र बनाने के लिए यह संगठन प्रयासरत है।

18.4 एशिया प्रशांत आर्थिक सहयोग परिषद (एपेक)

एपेक की स्थापना 1989 में तत्कालिक आस्ट्रेलियाई प्रधानमंत्री बोब होक की पहल पर हुई थी। इसकी स्थापना में आसियान देशों ने भी भाग लिया था। इसके सदस्य देशों का संयुक्त

व्यापार, विश्व के कुल व्यापार का 40 प्रतिशत है। एपेक को स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र बनाने के प्रयास जारी हैं। जून, 1992 में बैंकाक की बैठक के बाद सिंगापुर में इसके सचिवालय की स्थापना की गई है।

1998 में रूस, वियतनाम व पेरू को सदस्यता मिल जाने के बाद एपेक की सदस्य संख्या 21 हो गई है। अन्य सदस्यों में आस्ट्रेलिया, अमेरिका, कनाडा, मैक्सिको, जापान, चीन, हॉगकांग, ताइवान, दक्षिण कोरिया, इण्डोनेशिया, ब्रुनेई, फिलीपीन्स, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैण्ड, पपुआ न्यू गिनी, न्यूजीलैण्ड, चिली, पेरू, रूस तथा वियतनाम हैं। भारत अभी इसका सदस्य नहीं है।

एपेक के शिखर सम्मेलन

वर्श		दिनांक	देश	शहर
1989	1	6-7 नवम्बर	ऑस्ट्रेलिया	कैनबरा
1990	2	29-31 जुलाई	सिंगापुर	सिंगापुर
1991	3	12-14 नवम्बर	दक्षिण कोरिया	सियोल
1992	4	10-11 सितम्बर	थाईलैंड	बैंकाक
1993	5	19-20 नवम्बर	अमेरिका	सिएटल
1994	6	15-16 नवम्बर	इंडोनेशिया	Bogar
1995	7	18-19 नवम्बर	जापान	ओसाका
1996	8	24-25 नवम्बर	फिलीपींस	सुबिक
1997	9	24-25 नवम्बर	कनाडा	वैंकूवर
1998	10वीं	17-18 नवम्बर	मलेशिया	क्वालालंपुर
1999	11वीं	12-13 सितम्बर	न्यूज़ीलैंड	ऑकलैंड
2000	12वीं	15-16 नवम्बर	ब्रुनेई	बंदर सेरी बेगावान
2001	13वीं	20-21 अक्टूबर	चीन	शंघाई
2002	14	26-27 अक्टूबर	मेक्सिको	लॉस Cabos
2003	15	20-21 अक्टूबर	थाईलैंड	बैंकाक
2004	16	20-21 नवम्बर	चिली	सैंटियागो
2005	17वीं	18-19 नवम्बर	दक्षिण कोरिया	बुसान
2006	18	18-19 नवम्बर	वियतनाम	हनोई
2007	19वीं	08-09 सितम्बर	ऑस्ट्रेलिया	सिडनी
2008	20 वीं	22-23 नवम्बर	पेरू	लीमा

2009	21 वीं	14-15 नवम्बर	सिंगापुर	सिंगापुर
2010	22	13-14 नवम्बर	जापान	योकोहामा
2011	23	12-13 नवम्बर	अमेरिका	होनोलूलू
2012	24	09-10 सितम्बर	रूस	व्लादिवोस्तोक
2013	25	5-7 अक्टूबर	इंडोनेशिया	बाली
2014	26	10-11 नवम्बर	चीन	बीजिंग
2015	27	नवंबर 2015	फिलीर्पीस	मनीला [51]
2016	28	नवंबर 2016	पेरू	लीमा
2017	29	2017	वियतनाम	हनोई
2018	30	2018	पापुआ न्यू गिनी	टीबीए
2019	31	2019	चिली	टीबीए
2020	32	2020	मलेशिया	टीबीए
2021	33	2021	न्यूज़ीलैंड	टीबीए
2022	34	2022	थाईलैंड	टीबीए

सामान्यतः इसका शिखर सम्मेलन प्रतिवर्ष होता है। एपेक 2001 का शिखर सम्मेलन शंघाई में हुआ। यह शिखर सम्मेलन महत्वपूर्ण रहा जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद से निपटने के लिए एक जुटता व हर सम्भव प्रयास करने पर सहमति हुई। यद्यपित सम्मेलन में अमेरिका द्वारा अफगानिस्तान पर हमले का समर्थन नहीं किया गया। इसके अतिरिक्त, 2007 में सिडनी के शिखर सम्मेलन में ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कटौती के लिए समय सीमा 2007 से 2010 कर दी गई। भारत सहित कुल 11 देश इसकी सदस्यता के इच्छुक हैं शेष 10 देश हैं - कोलम्बिया, पनामा, इक्वाडोर, मकाऊ, मंगोलिया, पाकिस्तान, श्रीलंका, कम्बोडिया, लाओस व म्यांमार है। इस प्रकार इसके बढ़ते आकार ने इसे महत्वपूर्ण बना दिया है।

18.5 दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संघ (दक्षेस)

सार्क (दक्षेस) का पूरा नाम दक्षिण एशिया क्षेत्रीय सहयोग संगठन या South Association for Regional Co-operation है। इसकी स्थापना 1985 में हुई थी। भारत और पड़ोसी देशों से बना यह संगठन जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा क्षेत्रीय संगठन है। इसका उद्देश्य आपसी विवादों को शांत कर आपसी सहयोग को बढ़ावा देना है। सार्क के गठन की पहल बांग्लादेश के पूर्व राष्ट्रपति श्री जियाउर रहमान ने की थी। संस्थापक देशों की संख्या 7 थी - भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका और मालद्वीप। ये सभी (मालद्वीप को छोड़कर) देश भारतीय प्रायद्वीप के हिस्से हैं, जिनकी सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, भूगोल तथा धर्म आदि में व्यापक समानता है। साथ ही इनकी समस्याएं भी एक जैसी हैं। सभी देश गरीबी, अशिक्षा, विकास की समस्या तथा अधिक जनसंख्या की समस्या से पीड़िता हैं, इन देशों में

प्राकृतिक संसाधनों की बहुलता है। अतः उक्त राष्ट्रों का जुड़ना महत्वपूर्ण घटना थी। 2007 मे अफगानिस्तान आठवें सदस्य के रूप में सम्मिलित हुआ है।

18.5.1 उद्देश्य

1. दक्षिण एशियाई देशों के लोगों का कल्याण और उनके उच्च जीवन स्तर में सुधार करना।
2. अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर आपसी सहयोग बढ़ाना तथा सामूहिक आत्मनिर्भरता में वृद्धि करना।
3. दक्षिण एशियाई क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक उन्नति में वृद्धि करना। इस हेतु आपसी सहयोग बढ़ाना।
4. एक-दूसरे के समस्याओं के प्रति संवेदनशील रहकर पारस्परिक विश्वास में वृद्धि करना और उनके समाधान के प्रयास करना।
5. सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी व सांस्कृतिक क्षेत्र में सक्रिय सहभागिता और सहायता करना।
6. सामान्य हित वाले मसलो पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पारस्परिक सहयोग और सामजस्य बनाना।
7. सामान्य लक्ष्यों व हितों वाले अन्य अन्तर्राष्ट्रीय और क्षेत्रीय संगठनों का समर्थन व सहायता करना।

18.5.2 संरचना एवं कार्य

इसके अन्तर्गत मुख्य संस्थाएं कार्यरता हैं-

1. **शिखर सम्मेलन** :- प्रतिवर्ष एक शिखर सम्मेलन आयोजित होता है, जिसमें सभी सदस्य देशों के राष्ट्राध्यक्ष भाग लेते हैं, अभी तक 18 शिखर सम्मेलन हो चुके हैं।

दक्षेस शिखर सम्मेलन

क्र.	वर्श	स्थान
1.	1985	ढाका, बांग्लादेश
2.	1986	नई दिल्ली, भारत
3.	1987	काठमाण्डू, नेपाल
4.	1988	इस्लामाबाद, पाकिस्तान
5.	1990	माले, मालद्वीप
6.	1991	कोलम्बो, श्रीलंका
7.	1993	ढाका, बांग्लादेश

8.	1995	नई दिल्ली, भारत
9.	1997	माले, मालद्वीप
10.	1998	कोलम्बो, श्रीलंका
11.	2002	काइमाण्डू, नेपाल
12.	2004	इस्लामाबाद, पाकिस्तान
13.	2005	ढाका, बांग्लादेश
14.	2007	नई दिल्ली, भारत
15.	2008	कोलम्बो, श्रीलंका
16.	2010	थिम्पू, भूटान
17.	2012	आडुसिटी, मालद्वीप
18.	2014	काठमाडु, नेपाल

2. **मंत्रीपरिषद :** यह सदस्य देशों के विदेश मंत्रीयों की परिषद है। इसकी बैठक प्रत्येक 6 माह में होती है। आपातकाल में इसकी बैठक कभी भी बुलाई जा सकती है। यह संघ की नीति निर्माण, सामान्य हितों पर चर्चा, सहयोग के नये क्षेत्र खोजना जैसे- कार्य सम्पादित करती है।

3. **स्थायी समिति** : यह सदस्य देशों के विदेश सचिवों की परिषद है। इसकी बैठक एक वर्ष में एक बार होना आवश्यक है। पर आवश्यकतानुसार कभी भी बैठक हो सकती है। यह समिति आपसी सहयोग, विज्ञान तकनीकी क्षेत्र में सहयोग एवं प्रशिक्षण, प्राथमिकताओं का निर्धारण जैसे कार्य करती है।

4. **तकनीकी समितियां** : स्वीकृत क्षेत्रों में सहयोग और सामजंस्य के लिये तकनीकी समिति बनाई जाती है, जिसमें सभी देशों के प्रतिनिधि होते हैं।

5. **कार्यकारी समिति** : सदस्य संख्या 8 होती है, प्रयोजन विशेष हेतू बनती है, स्थायी समिति इसका गठन कर सकती है।

6. **सचिवालय** : यह काठमाण्डु में है। इसका महासचिव 2 वर्ष के लिए क्रमशः सभी देशों से मनोनीत होता है। सार्क के सचिवालय को 8 भागों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग के अध्यक्ष को निर्देशक कहते हैं।

7. **वित्तीय व्यवस्था** : इस हेतु सदस्य राज्यों से अंशदान लिया जाता है। भारत 32 प्रतिशत, पाकिस्तान 25 प्रतिशत, नेपाल, बांग्लादेश, श्रीलंका 11 प्रतिशत एवं भूटान व मालद्वीप को 5 प्रतिशत अंशदान देना पड़ता है।

(SAPTA) साप्टाः इसे दक्षिण एशियाई वरीयता व्यापार समझौता या South Asian Preferential Trading Agreement भी कहते हैं।

साफ्टा (SAFTA) - (South Asian Free Trade Area) या दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार क्षेत्र के विषय में भी सदस्य देशों में सहमति हो गई है। 2006 से दक्षिण एशियाई विकास कोष

SADF प्रभावी हो गया है। आपसी सहयोग व आपदा प्रबंधन के दृष्टिकोण से सदस्य देशों द्वारा बनाया गया यह कोष है।

8.5.3 भूमिका एवं सम्भावनाऐं

साप्टा, साफ्टा, विकास कोष को हम सार्क की उपलब्धि मान सकते हैं, आर्थिक क्षेत्र में इसी उपलब्धि रही है। किन्तु राजनीतिक सांस्कृतिक तथा अन्य क्षेत्रों में यह उतना सफल नहीं रहा है। क्योंकि भारत में लोकतंत्र, श्रीलंका, मालद्वीप तथा पाकिस्तान में तानाशाही, नेपाल, भूटान में राजतंत्र है। चूंकि भारत सबसे बड़ा व सशक्त देश अतः है अन्य राष्ट्र उसके प्रत्येक निर्णय को शंका की दृष्टि से देखते हैं। साथ ही सार्क देशों में द्विपक्षीय विवाद भी इतने अधिक हैं। सहयोग और सामजस्य मुश्किल हो जाता है। यद्यपि शिखर सम्मेलनों में द्विपक्षीय विवाद पर चर्चा नहीं होता है। इसमें चीन, दक्षिण कोरिया, जापान, संयुक्त राष्ट्र, यूरोपीयन यूनियन अमेरिका, ईरान, मॉरीशस और म्यांमार को पर्यवेक्षक दर्जा दिया गया है। इससे इसके क्षेत्र में विस्तार हुआ है और आपसी व्यापार सहयोग में वृद्धि हुइ है।

18.6 इस्लामिक सम्मेलन संगठन (ओ.आई.सी.)

इस संगठन का आरम्भ 1971 में हुआ। इसकी पहल 1969 में मोरक्को में सम्पन्न मुस्लिम राज्यों के शिखर सम्मेलन में की गई। इसी तारतम्य में 1970 में करांची, पाकिस्तान में विदेश मंत्रीयों की बैठक हुई और Organization of Islamic Confrence - OIC का गठन हुआ, इसके 57 सदस्य राज्य हैं।

18.6.1 उद्देश्य एवं कार्य

1972 में स्वीकृत घोषणा पत्र में निम्न बातें सम्मिलित हैं-

1. इस्लामिक देशों के मध्य एकजुटता व सहयोग में वृद्धि करना।
2. आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृति व वैज्ञानिक क्षेत्रों में पारस्परिक सहयोग एवं आपसी सहायता को बढ़ावा देना।
3. रंगभेद, जाति भेद, अलगाव व असमानता का विरोध करना यह उपनिवेशवाद का घोर विरोधी है।
4. अन्तर्राष्ट्रीय शांति व सुरक्षा हेतु न्याय आधारित कार्यवाही करना।
5. फिलीस्तीनी लोगों के संघर्ष में सहायता देना। उनके राष्ट्र की रक्षा कर उन्हें अधिकार दिलाना।
6. धार्मिक स्थलों की सुरक्षा के प्रयासों को प्राथमिकता देना।
7. सम्मान, सुरक्षा, स्वतंत्रता और अधिकारों की रक्षा हेतु मुस्लिम देशों की आवाज बुलंद करना। इस हेतु संघर्ष करने पर तत्पर रहना।

8. संगठन के सदस्य देशों के मध्य आपसी समझ, सहयोग में वृद्धि हेतु अनुकूल वातावरण तैयार करना।

इस्लामिक सम्मेलन संगठन के सदस्य देश

सदस्य देश है इसमें अफगानिस्तान, अल्जीरिया, बहराइन, बेनिन, ब्रुनेई, बुरकीना, फासो, कमरून, चाड, कोमोरोस, जिबुती, मिस्त्र, गबन, मांबिया, गायना, गाया बिसाव, इण्डोनेशिया, ईरान, इराक, जोर्डन, कुवैत, लेबनान, लीबिया, मलेशिया, मालद्वीप, माली, मोरीतानिया, मोरस्को, नाइजर, नाइजेरिया, ओमन, पाकिस्तान, पेलेएटाइन, कावर, सउदी अरब, सिनेगल, सिपेरा, लियोग, सोमालिया, सूडान, सीरिया, तुनुसिया, टर्की, युगांडा, संयुक्त अरब अमीरत, यमन।

गठन एवं कार्य : इस संगठन ने आर्थिक, राजनीति, सामाजिक, वैज्ञानिक मुद्दों को उठाने और आपसी सहयोग बढ़ाने में सक्रिय भूमिका अदा की है यह इस क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है-

इस्लामिक पुनर्बीमा निगमः इसमें 20 करोड़ अमेरिकी डॉलर पूंजी के साथ इस्लामिक पुनबीमा निगम बनाया गया है, जो बड़ी योजनाओं को लागू करने हेतु उपलब्ध कराया जाता है।

इस्लामिक एकजुटता कोष : इसका उद्देश्य मुस्लिम देशों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार करता है। इस हेतु युगांडा, मलेशिया, नाइजिरिया आदि देशों में विश्व विद्यालय खोले गये है। यह वैज्ञानिक क्षेत्र में शोध कार्यों को भी प्रोत्साहन देता है।

राजनीतिक क्षेत्र में फिलीस्तीनी मुक्ति मोर्चा को समर्थन देते के साथ 1981 से पवित्र शहर यरूशलेम को इस्राइल से मुक्त कराने व फिलीस्तीनियों को स्वतंत्र कराने के लिए जेहाद की शुरूआत करने पर सहमति बनी। साथ ही इजराइल आर्थिक क्षेत्र में बहिष्कार की बात भी रखी गई। अफगानिस्तान में रूसी सैनिकों का विरोध भी संगठन के द्वारा किया गया। यद्यपि आपसी व्यापार और सहयोग में तो वृद्धि हुई है, फिर भी राजनीतिक क्षेत्र में संगठन उतना सफल नहीं रहा है। इसी संगठन के 8 सबसे सशक्त देश- टर्की, इरान, इण्डोनेशिया, मलेशिया, नाइजीरिया, मिस्र, पाकिस्तान व बांग्लादेश ने पृथक विकासशील राष्ट्रों का समूह संगठित कर लिये है। यद्यपि OIC यूरोपीय संघ जैसा सफल नहीं रहा है, फिर भी यह एक महत्वपूर्ण संगठन है

18.7 अफ्रीकी एकता संगठन (ओ.ए.यू.)

यह यूरोपीय संघ की तर्ज पर अफ्रीकी राज्यों का संगठन है, जिसका गठन 1963 में हुआ। इसके आरम्भिक सदस्य 30 थे जो आज बढ़कर 53 हो गये। आज इसे अफ्रीकी एकता संगठन के स्थान पर अफ्रीकी संघ कहा जाने लगा है। यह सिर्फ अफ्रीकी महाद्वीप के राज्यों के लिए ही है। इसकी सदस्यता की पहली शर्त हैं कि इसके सदस्य स्वतंत्र और सम्प्रभु राज्य ही हो सकते हैं यद्यपि यह सदस्यता की दृष्टि से सबसे बड़ा क्षेत्रीय संगठन है।

18.7.1 उद्देश्य

1. अफ्रीकी देशों में प्रत्यक्ष निवेश तथा विदेशी पोर्टफोलियों निवेश को आकर्षित करना।
2. अफ्रीकी देशों में मध्य एकता व एकजुटता बढ़ाना।

3. अफ्रीकी लोगों के कल्याण के लिए कार्य करना व उच्च जीवन स्तर को प्राप्त करनां।

4. अफ्रीकी में हर तरह के उपनिवेशवाद की समाप्ति तथा नक्सलवाद व रंगभेद का घोर विरोध करना।

5. अफ्रीकी देशों की सम्प्रभुता, सीमा, सम्मान व स्वतंत्रता की रक्षा करने के साथ ही मानवाधिकार हेतु संरक्षण को प्रोत्साहन देना।

6. अफ्रीकी देशों में लोकतांत्रिक सरकारों की स्थापना करना।

नए अफ्रीकी संघ हेतु प्रावधान

1. **अफ्रीकी संसद** : लीबिया की राजधानी त्रिपोली में अखिल अफ्रीकी संसद का गठन होगा जिसमें अफ्रीकी संघ के देशों के प्रतिनिधि चुनकर आयेंगे। यह नीति निर्माण संस्था होगी।

2. **आर्थिक क्षेत्र** : अफ्रीकी संघ को आर्थिक विकास का मंच बनाया जायेगा यह राजनीतिक कम आर्थिक अधिक होगा।

3. **शांति सेना** : अफ्रीकी संघ की अपनी शांति सेना होगी जो आन्तरिक संघर्षो, विवादों और जातीय हिंसा के समय शांति स्थापना में सहायक होगी।

4. **हस्तक्षेप का अधिकार** : अफ्रीकी संघ को जनसंहार और युद्ध सम्बन्धी अन्यायपूर्ण परिस्थितियों में हस्तक्षेप का पूर्ण अधिकार होगा।

5. **केन्द्रीय बैंक** : अफ्रीकी संघ का केन्द्रीय बैंक होगा जो मुद्रा विनियम के समान प्रावधान लागू करेगा साथ ही अफ्रीकी बैंक की सामूहिक मुद्रा का संचालन करेगा।

6. **सामूहिक मुद्रा** : डॉलर के प्रभुत्व को कम कम करने के लिए अफ्रीकी संघ की पृथक मुद्रा होगी जिसका प्रचलन अफ्रीकी संघ के सभी सदस्य राज्यों की मुद्रा के स्थान होगा।

7. **केन्द्रीय न्यायलय** : अफ्रीकी संघ का केन्द्रीय न्यायालय भी होगा जो सदस्य राज्यों के द्विपक्षीय, बहुपक्षीय विवादों का निपटारा करेगा।

मूल्यांकन- अफ्रीकी संघ के सदस्यों की समस्याएं समान हैं वे गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, जातीय हिंसा खूनी संघर्षों से जुझ रहा हैं। यहां लोकतांत्रिका मूल्यों का आभाव है। साथ ही उनके प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग विकसित देश सदियों से कर रहे हैं। किन्तु उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं है। इस हेतु अफ्रीकी देश अपनी गरीबी का जिम्मेदार विकसित देशों को मानते हैं। अतः वे अपने क्षेत्र के विकास में विकसित देशों की मदद चाहते हैं। यद्यपि यह संगठन लम्बे समय से अस्तित्व में हैं। फिर भी यह अवेक्षित प्रभाव नहीं बना सका। अफ्रीका में तख्ता पटल, जातीय व खूनी संघर्ष और आपसी मतभेद ने इसके प्रभावी भूमिका में बाधा उत्पन्न की है। यद्यपि नवीन अफ्रीका संघ से प्रभावी भूमिका की आशा की जा रही है, पर अफ्रीकी प्रभुत्व के लिये अफ्रीकी सदस्यों में संघर्ष अत्यधिक है, ऐसी स्थिति में इनमें एकजुटता अत्यधिक कठिन है।

18.8 सारांश

वर्तमान युग संगठनों का युग है। उनके बढ़ते महत्व और बढ़ती प्रासंगिकता ने उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान दे दिया है। अनेक क्षेत्रीय संगठन समान

हित, समान समस्याओं समान मूल्यों और परम्पराओं के कारण अस्तित्व में आ गये है। इनमें से कुछ अत्यधिक सफल रहे है, कुछ थोड़े कम सफल रहे हैं। किन्तु क्षेत्रीय संगठनों की सफलता में अधिक मत भिन्नता और तालमेल की कभी बड़ी समस्या है। फिर भी क्षेत्रीय संगठनों का महत्व बढ़ गया है।

18.9 शब्दावली

1. यूरो-यूरोपीय संघ की प्रचलित मुदा

   शिखर सम्मेलन - जिसमें सदस्य राज्यों के राष्ट्राध्यक्ष भाग लें।

   SADF - South Asian Developing Fund

   मुक्त व्यापार क्षेत्र - जहां वस्तु व व्यापार के समान व उदार नियम हो

पुनरावलोकन - पुनः विश्लेषण करना या देखना ताकि व्यापार निर्बाध हो सके।

18.10 सम्बन्धित प्रश्न

1. यूरोपीय संघ पर टिप्पणी लिखिए

   ---

2. यूरोपीय संघ की संरचना बताइये?

   ---

3. आसियान से क्या तात्पर्य है?

   ---

4. भारत आसियान सम्बन्धों पर टिप्पणी लिखिए

   ---

5. एपेक से क्या अभिप्राय है?

---

6. दक्षेस के उद्देश्यों की चर्चा कीजिए?

---

7. दक्षेस की सफलता में प्रमुख बाधाऐं कौन सी हैं?

---

8. ओ.आई.सी. से आप क्या समझतें हैं?

---

9. नए अफ्रीकी संघ की प्रमुख विशेषताऐं क्या हैं?

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन
मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

खण्ड – 7

विकास सम्बन्धी मुद्दे

इकाई – 19 **185**

पर्यावरण और सतत् मानव विकास

इकाई – 20 **197**

नारी अधिकारी एवं आन्दोलन

इकाई – 21 **207**

मानवाधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

इकाई – 22 **215**

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद

इकाई – 23 **227**

संचार प्रौद्योगिकी में क्रान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

MAPS-119

कुलपति एवं मार्गदर्शक

प्रो. सीमा सिंह — उ0प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

विशेषज्ञ समिति

(1) **प्रो. एम. पी. सिंह – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, 34 उत्तरांचल अपार्टमेंट, 5, आईपी एक्सटेंशन पटपड़गंज, नई दिल्ली

(2) **प्रो. एस.पी. एम त्रिपाठी – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

(3) **प्रो.एल.आर.गुर्जर – सदस्य**
प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, वर्धमान महावीर मुक्त विश्वविद्यालय, कोटा राजस्थान

(4) **डॉ.दीपशिखा श्रीवास्तव – सचिव**
शैक्षणिक परामर्शदाता ,राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज

लेखक

1. **प्रो0 संजय श्रीवास्तव** — **प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान,** बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय **(इकाई–04, 05, 15)**

2. **डॉ0 विश्वनाथ मिश्रा** — **असि0 प्रोफेसर, राजनीतिक विज्ञान** आर0 महिला पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई– 06, 07, 08, 09, 10, 11, 12)**

3. **डॉ0 स्वाती सुचरिता नन्दा** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** डी0ए0वी0 पी0जी0 कालेज वाराणसी **(इकाई–01, 02, 03, 21, 22, 23)**

4. **डॉ0 अर्चना सुदेश मैथ्यू** — **असि. प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान** पी0जी0 कालेज छिन्दवाड़ा, मध्य प्रदेश **(इकाई–13, 14, 16, 17, 18)**

5. **डॉ दीपशिखा श्रीवास्तव** — **शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान** यू.पी.आर.टी.ओ.यू ,प्रयागराज **(इकाई– 19, 20)**

संपादक / परिमापक

डॉ. नागेश्वर प्रसाद शुक्ला — प्राचार्य गन्ना उत्पादक पी0जी0 कालेज, बहेड़ी, बरेली

समन्वयक

डॉ. दीपशिखा श्रीवास्तव, — शैक्षणिक परामर्शदाता, राजनीतिक विज्ञान विभाग, यू.पी.आर.टी.ओ.यू, प्रयागराज

(मुद्रित)

This work is licensed under a Creative Commons Attribution-ShareAlike 4.0 International License.

ISBN- 978-93-83328-37-6

नोट : पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन – उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज–211021

इकाई-19

पर्यावरण और सतत् मानव विकास

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 पर्यावरण का अर्थ और विकास

19.3 सतत् मानव विकास की संकल्पना

19.4 मानव एवं पर्यावरण

19.5 पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार

- 19.5.1 वायु प्रदूषण
- 19.5.2 जल प्रदूषण
- 19.5.3 ध्वनि प्रदूषण
- 19.5.4 मृदा प्रदूषण
- 19.5.5 घरेलू उत्सर्गों का प्रदूषण

19.6 पर्यावरण संरक्षण

19.7 पर्यावरण पर राजनीति

19.8 सारांश

19.9 सम्बन्धित प्रश्न

19.10 संदर्भ ग्रन्थ

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में पर्यावरण के सम्बन्ध में आज के सन्दर्भ में उठते अनेक प्रश्नों के विषय में चर्चा किया गया है। इसका उद्देश्य-

- पर्यावरण के विषय में जानकारी प्राप्त कराना।
- सतत् मानव विकास की संकल्पना से अवगत कराना है।
- पर्यावरण की समस्याओं तथा पर्यावरण पर होने वाली राजनीति पर प्रकाश डालना है।

19.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत पर्यावरण से जुड़े विभिन्न मुद्दों को प्रस्तुत किया गया है। पर्यावरण किसी भी मनुष्य के जीवन के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक है। पर्यावरण मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष के लिये अनिवार्य एवं आवश्यक दशा है। परन्तु वर्तमान में पर्यावरण को जिस प्रकार से प्रदूशित किया जा रहा है और विकास के नाम पर जिस प्रकार से उसका दोहन हो रहा है वह एक चिन्तनीय विषय है।

मानव जीवन में सतत् विकास की प्रक्रिया जीवन स्तर को सुधारने की आवश्यक प्रक्रिया है। विकास के साथ पर्यावरण का संरक्षण भी आवश्यक है। सतत् विकास सदैव जनहित को ध्यान में रखते हुए करना चाहिये।

आज पर्यावरण के प्रदूषण की समस्या दिन पर दिन गहरी होती जा रही है जैसे वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण, घरेलू उत्सर्जों का प्रदूषण आदि। इसके लिये समय-समय पर राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस मुद्दे पर विभिन्न सम्मेलनों, कार्यक्रमों के माध्यम से विचार किये जाते रहे हैं।

पर्यावरण की असंतुलन की स्थिति में जीवन में जो घटनायें जैसे प्राकृतिक आपदा ग्लोबल वार्मिंग, जल संकट आदि घटित हो रही हैं उसमें आवश्यकता इस बात की है कि पर्यावरणीय संकट को टाला जाये एवं इससे जुड़ी समस्याओं को दूर किया जाये। पर्यावरण से जुड़ी राजनीति एवं उसके संरक्षण का मुद्दा एक विचारणीय प्रश्न है।

19.2 पर्यावरण का अर्थ और विकास

प्रत्येक जीव इस संसार में आने के पश्चात् अपने आस-पास की वस्तुओं से व्यक्तियों से प्रभावित होता है। व्यक्ति के विकास की यह सम्पूर्ण प्रक्रिया पर्यावरण से सम्बद्ध होती है। प्राणियों पर प्रभाव डालने वाले समस्त कारकों को पर्यावरण कहा जाता है।

संसार में किसी भी प्राणी को जीवित रहने अथवा अपना विकास करने के लिए किन्हीं विशिष्ट की स्थितियों एवं परिस्थितियों की आवश्यकता होती हैं यदि ये विशिष्ट परिस्थितियां व्यक्ति के चारों ओर विद्यमान हैं तो उसका विकास एवं जीवन संभव हो सकता है। इन स्थितियों में भौगोलिक, जैविक, सांस्कृतिक तत्व सम्मिलित होते हैं। भौगोलिक तत्वों के अन्तर्गत जल, वायु, पृथ्वी और सौर ऊर्जा, ताप आदि सम्मिलित होता है। किसी भी प्राणी के लिए जीवित रहने के लिए इन दशाओं का होना आवश्यक है। साथ ही यह मानव अस्तित्व के लिए भी आवश्यक है। इसे सम्मिलित रूप से पर्यावरण कहते हैं। यह सभी तत्व आपस में एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

पर्यावरण को अंग्रेजी में एनवायरनमेण्ट (Environment) कहा जाता है। पर्यावरण का शाब्दिक अर्थ परि-आवरण अर्थात् जो चारों ओर से घेरे हुए हो। पर्यावरण का सामान्य अर्थ चारों ओर के सभी प्रकार के भौगोलिक एवं जैविक व सांस्कृतिक तत्वों से हैं।

पर्यावरण की परिभाषाएँ

(i) आइन्सटीन के अनुसार पर्यावरण वह सब कुछ है जो मैं नहीं हूँ।

(ii) पी0 जिसबर्ट के अनुसार - ''प्रत्येक वह वस्तु जो किसी वस्तु को चारों ओर से घेरती एवं उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है, पर्यावरण है।''

(iii) एन0 के0 चक्रवर्ती के अनुसार - ''पर्यावरण से तात्पर्य किसी भी व्यक्ति के चारों ओर के सजीव व निर्जीव तत्वों से हैं किन्तु इसमें निर्मित पर्यावरण सम्मिलित नहीं हैं।'

(iv) सी0सी0 पार्क के अनुसार पर्यावरण का अर्थ उन दशाओं के योग से होता है जो मनुष्य को निश्चित समय में निश्चित स्थान पर आवृत्त करता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से पर्यावरण का अर्थ स्पष्ट होता है। वास्तव में पर्यावरण एक विस्तृत अवधारणा है तथा यह अवधारणा विभिन्न रूपों में प्राणियों को प्रभावित करती है। पर्यावरण जीवन के प्रत्येक पक्ष में अन्तर्निहित है। इसके अतिरिक्त यह मनुष्य के मस्तिष्क और मांसपेशियों में किसी न किसी रूप में विद्यमान है और उसके रक्त में समायोजित होकर कार्य कर रहा है।

प्राचीन काल में विकास पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करके किया जाता था। भारतीय संस्कृति व धर्म का गहराई से अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि भारतवर्ष में पर्यावरण के प्रति चिन्तन आदि काल से चला आ रहा है। यहाँ कि संस्कृति और धर्म में न केवल पर्यावरण की गुणवत्ता बनाए रखने पर जोर दिया गया है बल्कि भौतिक विकास के साथ प्रकृति व प्राकृतिक संसाधनों के उपयुक्त प्रयोग पर भी पर्याप्त मार्गदर्शन उपलब्ध कराया गया है।

भारतीय संस्कृति के वैदिक वाङ्मय, पुराण, आर्शकाव्य, शास्त्रीय ग्रन्थ तथा लौकिक संस्कृति साहित्य की दीर्घ परम्परा में पर्यावरण के प्रति इतना ज्ञान उपलब्ध है कि इसे समग्र रूप से पारिस्थितिकी अथवा पर्यावरण शास्त्र कहा जा सकता है।

कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र वन्य जीवों के श्रेष्ठ आवास बनाने व प्रबन्धन के लिए अनेक मार्गदर्शन देता है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारत में महात्मा बुद्ध, भगवान महावीर स्वामी ने बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रवर्तन किया इन प्रबुद्ध चिन्तकों की विचारधारा में भी पर्यावरण को पर्याप्त स्थान मिला था। इसी प्रकार भारत में प्रचलित दो और सांस्कृतियों मुस्लिम व सिक्ख में भी पर्यावरण के प्रति पर्याप्त चिंतन मिलता है। पर औपनिवेशिक शासन की स्थापना तथा उसकी शोषणकारी नीतियाँ पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हुयी और औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया तथा भौतिकवादी सोच ने पर्यावरण के प्रति भारतीय परम्परागत सोच में बदलाव कर दिया। देश की आजादी के पश्चात् भी हमने विकास के इसी सोच को आगे बढ़ाया। हमारे देश में एक समग्र पर्यावरण नीति के स्थान पर पर्यावरण के विभिन्न घटकों से सम्बन्धित पृथक-पृथक नीतियां प्रवर्तित होती रही है। इनमें राष्ट्रीय वन नीति 1988, राष्ट्रीय संरक्षण कार्य नीति तथा पर्यावरण एवं विकास पर वक्तव्य 1992 प्रमुख है।

पर्यावरण का विकास समय बदलने के साथ ही विकास की मूल अवधारणाओं को छोड़कर सिर्फ स्वहित पर आधारित होकर विकास किया जा रहा है और विकास के मूल्य बदल दिये गये। यदि हम प्रकृति के साथ सामंजस्य करके विकास करें तो पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। भौतिक विकास की अंधी दौड़ और विकासशील देशों द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन ने वैश्विक पर्यावरण को प्रदूषित कर पर्यावरण असंतुलन को उस सीमा तक पहुँचा दिया है जहाँ असंतुलित एवं अवक्रमित पर्यावरण में रहने से स्वयं मानव अस्तित्व पर ही प्रश्न चिन्ह लग गया है।

19.3 सतत् मानव विकास की संकल्पना

आज मानव के सतत् विकास के लिए ऐसी समान व्यवस्था की आवश्यकता है जिससे सभी को अपना जीवन स्तर सुधारने को मौका मिले और आम आदमी का स्तर सामान्य से ऊपर उठ सके। आज विडम्बना यह है कि 20 प्रतिशत व्यक्ति संसाधनों का जरूररत से अधिक उपभोग कर रहा है और 80 प्रतिशत व्यक्ति अपनी जरूरतें भी पूरी नहीं कर पा रहा है। यह मानवीय विकास की दिशा में सबसे बड़ा विरोधाभास है। वस्तुतः सतत् विकास एवं उपभोग में सामंजस्य बनाना अति आवश्यक है।

विकास को जब हम पर्यावरण से जोड़कर देखते हैं तो हम पाते हैं कि इसकी आवश्यकता विकसित देशों को ही ज्यादा है। विकास एक व्यापक अवधारणा है जिसका एक पक्ष पर्यावरण के क्षेत्र में प्रगति करना है। लेकिन वर्तमान समय में आर्थिक और सामाजिक विकास के नाम पर पर्यावरण का जो दोहन और प्रदूषण किया जा रहा है। उससे विकास विनाश का पर्याय बनता जा रहा है। आज हवा पानी जो प्रदूषित हो रहा है, मानव स्वास्थ्य गिर रहा हैं, ऐसी स्थिति में विकास के अन्य आयामों से ज्यादा महत्वपूर्ण पर्यावरण हो गया है। इसलिये आवश्यक है कि हम पर्यावरण के सापेक्ष विकास के अन्य आयामों पर जोर दिया जाए।

विकास के जितने भी प्रतिमान प्रस्तुत किए गए उनमें पर्यावरण पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। सतत् विकास की संकल्पना वह है जो स्थायी होती है। पर्यावरण और विकास पर विश्व आयोग ने यह सिद्धान्त प्रस्तुत किया कि वर्तमान पीढ़ी को भविष्य की पीढ़ी से कोई समझौता किये बिना अपनी आवश्यकता पूरी करनी चाहिए जिससे भविष्य की पीढ़ी अपनी आवश्यकता पूरी कर सके।

सतत् विकास की संकल्पना यह है कि प्रत्येक पीढ़ी को अपनी आवश्यकताओं को अपने संसाधनों से पूर्ति कर पर्यावरण पर जीवित रहे। मानव विकास को संरक्षित किया जा सकता है। यदि उसकी सही देखभाल की जाय। सतत् विकास केवल भविष्य में ही नहीं बल्कि वर्तमान को ध्यान में रखकर होना आवश्यक है।

मनुष्य सदैव विकास के पथ पर अग्रसर होता जा रहा है। मानव के बिना विकास तथा विकास के बिना मानव के बिना मानव का जीवन अर्थहीन है। आज समय की मांग को देखते हुए उचित तकनीक तथा संसाधनों का आवश्यकतानुसार उपयोग करके विकास का मार्ग अपनाना चाहिए। पूर्व प्रधानमंत्री स्व0 इंदिरा गाँधी पर्यावरण चेतना उत्पन्न करने वाली प्रथम तथा विश्व की अग्रणी महिला थीं। उन्होंने एक भाषण में कहा कि 'धनी देश एक ओर निरंतर हमारे गरीब रहने का कारण पूछते हैं और दूसरी और इमें अगाह भी करते हैं कि हम उनके तौर-तरीके न अपनायें।'

भारत एक विकासशील देश होने के कारण हमारा सतत् विकास जनहित तथा पर्यावरण को ध्यान में रखकर होना चाहिए जिसके लिए हमें विज्ञान तथा तकनीक का सहारा तो अवश्य ही लेना पड़ेगा। हमारा सबसे अधिक प्रयास विकास के लिए होना चाहिए जिससे कि हमारी निर्धनता तथा बेरोजगारी दूर हो। ऐसे उपायों के बारे में सोचा जाये जिनसे मनुष्य अपनी समस्याओं से विमुक्त होकर वनों का विनाश न करें।

आज सतत् विकास की ओर बढ़ते हुए कदम भी विकासशील देशों की प्राथमिक आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर पा रहे हैं। रोटी, कपड़ा और मकान व्यक्ति के जीवन स्तर को उठाने

की पहली सीढ़ी हैं। सतत् विकास के लिए आर्थिक सुदृढ़ता का होना आवश्यक है जो कि संसाधनों को जुटाने के लिए आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि दूसरों का शोषण न किया जाए। आर्थिक विकास व्यक्ति की परिस्थिति में परिवर्तन लाता है।

सतत् विकास मात्र प्रगति नहीं है बल्कि विकास की ऐसी दिशा प्रदान करता है जिससे कम से कम संसाधनों एवं ऊर्जा की खपत से पूरे समुदाय का सामूहिक विकास हो। किसी भी देश की प्रगति संसाधनों के सदुपयोग या दुरूपयोग पर निर्भर करती है। स्थित प्रगति तभी संभव है जब पर्यावरण में संतुलन स्थापित हो। भूमि, कृषि आदि के प्रयोग का वैज्ञानिक मापदंड होना चाहिए।

सतत् विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि विकास की पद्धति सही ढंग से लागू की जाये। इसके लिए विकास में सहायक कानूनी एवं संस्थागत ढाँचे को तैयार किया जाये। जब किसी योजना का मूल्यांकन किया जाए तो उसमें जनहित का ध्यान रखे जाने के साथ पर्यावरण पर ध्यान रखना भी आवश्यक है। विकास को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि कुछ निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाये-

1. सतत् विकास की प्रक्रिया को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि उसमें जन-सहभागिता अवश्य हो।
2. ऐसी आर्थिक व्यवस्था हो जो नयी तकनीक के माध्यम से समाज को आत्मनिर्भरता प्रदान करें।
3. सतत् विकास के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण भी किया जाये।
4. स्थानीय स्तर पर वन पंचायत की व्यवस्था होनी चाहिए।
5. विकास कार्यों को लागू करने के लिए गैर सरकारी एजेंसियों की भी व्यवस्था होनी चाहिए।
6. विकास के साथ ही साथ पर्यावरण संरक्षण आवश्यक है।

आज हम उद्योगों के विस्तार से सम्पन्न हो सकते हैं परन्तु पर्यावरण के बिना यह विकास सच्चा विकास नहीं हो सकता हैं। संतुलित ढंग से विकास करना अधिक कठिन है। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् प्रो0 रामदेव मिश्र कहते हैं कि स्वच्छ पर्यावरण जैसे भी बन सके बनाये रखना चाहिए। ऊर्जा प्रवाह और पदार्थों का संचालन प्राकृतिक परितंत्रों के अनुसार सामाजिक सेवा में इस धारणा से लगाना है कि पर्यावरण से उधार ली हुई चीजें उसे वापस कर देनी है। जब तक हमारे अर्थ और विज्ञान नैतिकता का सहारा नहीं लेंगे तब तक हमारा कल्याण नहीं हो पायेगा। एक नयी सभ्यता का विकास करना है जिसमें व्यक्ति, समाज, भौतिक तथा जैविक संसाधन उन्नत किये जा सके। इस प्रकार पर्यावरण का संरक्षण हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। हमें प्रत्येक विकास कार्य में पर्यावरण शुद्धता को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए।

19.4 मानव एवं पर्यावरण

मानव आवश्यकताओं की निरंतर पूर्ति तथा अविरल विकास के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण अत्यन्त आवश्यक है। भारत विश्व में एक मात्र ऐसा देश है जिसने पर्यावरण के सम्बन्ध में संविधान में संशोधन किया है। भारत में 42वें संविधान संशोधन 1976 के द्वारा पर्यावरण के संरक्षण को संविधान में शामिल किया गया है। भारत के प्रत्येक नागरिक का यह

पहला कर्त्तव्य है कि प्राकृतिक पर्यावरण की जिसके अन्तर्गत वन, झील नदी और वन्य जीव भी है रक्षा करें, उनका संवर्धन करें।

आज आर्थिक गतिविधियां पर्यावरण को हानि पहुँचाने में सक्रिय रूप से कार्य कर रही है। खनिज तेल भंडार खत्म होने की स्थिति में है। कोयला खनन पर्यावरण के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। पर्यावरणविदों ने जनचेतना जाग्रत करके लोगों को इस ओर आकर्षित किया है। पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आजकल विश्वभर में चिन्ता का विषय बनी हुई है। बढ़ता हुआ प्रदूषण नष्ट होता हुआ पर्यावरण सभी के लिए गम्भीर चुनौती बनता जा रहा है।

सरकारी नीतियां और योजनाओं के चलते भी आज पर्यावरण संकट गहराता जा रहा है। जिससे वनारोपण, विस्थापन, कृषि भूमि का आबंटन जैसे मुद्दों की समस्याएं आ रही है। कुछ नीतियां वास्तव में इतनी हानिकारक है कि उनसे पर्यावरण को नुकसान होता है।

पर्यावरण संरक्षण हेतु आज काफी जोर दिया जा रहा है। पर्यावरण की रक्षा वर्तमान काल का सबसे चिन्तनीय विषय है। क्योंकि पर्यावरण के आधार पर ही मानव का जीवन संचालित होता है। यदि पर्यावरण स्वच्छ एवं मानव जीवन के अनुकूल होगा तभी मानव सुखमय जीवनयापन करते हुए उत्तरोत्तर विकास के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा। यह विडम्बना ही है कि आज मानव अपने भौतिक विकास की महात्वाकांक्षा के सम्मुख शनैः शनैः पूरे पर्यावरण को अपने प्रतिकूल करता चला जा रहा है। परिणामस्वरूप आज समाज में वायु-प्रदूषण, जल-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण, मृदा-प्रदूषण के साथ-साथ सांस्कृतिक एवं सामाजिक प्रदूषण भी दिनोदिन व्याप्त होता जा रहा हैं जिसके कारण सम्पूर्ण मानव समाज का जीवन कष्टमय होता चला जा रहा है। ऐसे समय में मानव समाज को ऐसे मार्ग की आवश्यकता है जिस पर चलकर वह प्रकृति का समुचित उपयोग करते हुए पर्यावरण को भी सुरक्षित बनाये रखे एवं साथ ही साथ अपना भौतिक विकास भी करते रहे।

19.5 पर्यावरण प्रदूषण के प्रकार

पर्यावरण प्रदूषण के लिए किसी एक कारण को ही उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता हैं क्योंकि यह अलग-अलग रूपों में उजागर होता है। हमारे जो प्राकृतिक अवयव प्रदूषित होते नजर आ रहे हैं उसके आधार पर प्रदूषण को पाँच भागों में बाँटा जा सकता हैं-

(1) वायु प्रदूषण

(2) जल प्रदूषण

(3) ध्वनि प्रदूषण

(4) मृदा प्रदूषण

(5) घरेलू उत्सर्गों का प्रदूषण

19.5.1 वायु प्रदूषण

वायुमण्डल की अपनी एक निश्चित संरचना होती है और इसी संरचना में प्राण वायु ऑक्सीजन, प्रकाश संश्लेषण हेतु कार्बन डाईआक्साइड, व रक्षा कवच के रूप में ओजोन गैसें पाई जाती हैं। यद्यपि नाइट्रोजन प्राणी जगत के लिए अनिवार्य घटक है किन्तु यह जीवमण्डल को

प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित नहीं करता है। वायुमण्डल की इस संरचना में किसी भी गैसीय घटक के सान्द्रण में किसी भी प्रकार का परिवर्तन, चाहे वह प्राकृतिक हो अथवा मानवीयकृत, वायु-प्रदूषण कहलाता है। वायु-प्रदूषण के मुख्य कारक हैं, जैसे-

- कारखानों से निकलने वाला कचरा एवं उत्सर्जित कार्बन मोनो डाईआक्साइड।
- वातानुकूलन संयत्रों से उत्पन्न क्लोरो-फ्लोरो कार्बन।
- नाभिकीय विस्फोट से उत्सर्जित रेडियो एक्टिव तत्व।
- वाहनों से (रेल, वायुयान, स्वचालित वाहन) उत्पन्न कार्बन डाईआक्साइड।
- रसोईघरों से निकलने वाला धुँआ, जीवाश्म ईंधन आदि।
- कचरा सड़ने से कार्बन मोनो व कार्बन डाईआक्साइड।

19.5.2 जल प्रदूषण

जल प्रदूषण से तात्पर्य जल के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुणों में इस प्रकार परिवर्तन होना जिससे जल में हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करता है। जल में विजातीय तत्वों के मिल जाने से उसमें भौतिक, रासायनिक जैविक, गुणों में परिवर्तन आ जाता है। फलतः जल प्रदूषित हो जाता है और यही जल-प्रदूषण जल कहलाता है। जल को प्रदूषित करने वाले कारकों में मुख्य रूप से है-नगरीय अपशिष्ट, खनिज तेल, अपमार्जक, कृषि रसायन, औद्योगिक अपशिष्ट, रेडियोधर्मिता, धार्मिक गतिविधियों अंधविश्वासों के कारण प्रदूषण।

19.5.3 ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि प्रदूषण में उन्हीं तत्वों को सम्मिलित किया जाता है जो मानवीय गतिविधियों के कारण अप्राकृतिक अथवा कृत्रिम रूप से शोर उत्पन्न करता है। शहरीकरण, मनोरंजन, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, क्रियाकलापों के कारण इसकी उत्पत्ति होती है।

ध्वनि किसी भी सजीव या निर्जीव वस्तु द्वारा सामान्य आवाज है। जब शोर इतना बढ़ जाये कि मानव स्वास्थ्य जीव जन्तुओं द्वारा असहनीय होकर किसी न किसी रूप में शारीरिक, मानसिक आघात पहुँचाने में सक्षम हो तो इसे ध्वनि प्रदूषण कहते हैं।

19.5.4 मृदा प्रदुषण

मृदा प्रदूषण में मृदा के अवयवों में किसी प्रकार का परिवर्तन जो उसकी जीवन दायिनी शक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है और उसकी आकृति संरचना में प्रतिकूल परिवर्तन कर देता है। जैसे- मृदा-अपरदन, जल-प्रदूषण द्वारा औद्योगिक रासायनों द्वारा खनन द्वारा प्रदूषण, अपशिष्टों द्वारा प्रदूषण आदि।

19.5.5 घरेलू उत्सर्गों का प्रदूषण

वर्तमान समय से इस प्रकार का प्रदूषण दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। यह पर्यावरण के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित करता है। यह प्रदूषण सबसे अधिक जल, मृदा, वायु को प्रभावित करता है। शहरी विकास ने इस प्रकार के प्रदूषण को काफी प्रभावित किया है।

19.6 पर्यावरण संरक्षण

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण में बदलाव लाने की दृष्टि से विभिन्न सम्मेलनों तथा कार्यक्रमों की घोषणा की जाती रही हैं। जिससे पृथ्वी सम्मेलन, एजेंडा 21, रियो घोषणा, विश्व सम्मेलन आदि प्रमुख है।

आज पर्यावरण में प्रदूषण, छेड़छाड़ तथा उसके प्राकृतिक असंतुलन की स्थिति के कारण समय-समय पर इस पृथ्वी पर आने वाली प्राकृतिक आपदायें, वन विनाश, प्राकृतिक असंतुलन इस बात का प्रमाण है कि पर्यावरण को क्या-क्या नुकसान हो रहा है। जिससे विनाशकारी बाढ़, वर्षा, भुखमरी, गरीबी, जैसी समस्याओं से हम जूझ रहें हैं।

धीरे-धीरे वातावरण में बनी ओजोन की परत भी नष्ट हो रही है जिससे पृथ्वी पर सूर्य की किरणों का दुष्प्रभाव दिखाई देने लगा है। ग्रीन हाउस उत्सर्जन से वातावरण में प्रदूषण व्याप्त हो रहा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम मिल बैठकर इस समस्या पर विचार करें। जिससे पर्यावरणीय संकट को टाला जा सके।

पर्यावरण की सबसे बड़ी समस्या उसमें प्रदूषण का जन्म लेना है। यह प्रदूषण आज इस हद तक घर कर गया है कि आज हमारे पर्यावरण का अस्तित्व संकट में पड़ गया है और इसको बचाना तथा विनाशकारी परिस्थितियों से छुटकारा दिलाने का कार्य चुनौतियों भरा तथा असंभव सा हो गया है। पर्यावरण प्रदूषण के लिए किसी एक विशेष कारण को उत्तरदायी ठहराना उचित नहीं होगा क्योंकि यह हमारे विभिन्न क्रियाकलापों के परिणामस्वरूप हमारे सामने अलग-अलग रूपों में उजागर हुआ है।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने पर्यावरण को अपना कार्यक्षेत्र माना है जिसके तहत 1992 में राष्ट्र संघ ने पर्यावरणीय समस्या पर विचार करने तथा निदान के उपाय करने के लिए राष्ट्र संघ के सदस्यों की बैठक बुलायी और उसमें उन्हें इसके संरक्षण के लिए उच्च टेक्नॉलॉजी पर विशेष बल दिया।

20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या ने नए आयाम प्राप्त किये हैं। भोपाल गैस त्रासदी (1984), चेरनोबिल दुर्घटना (1986) और विश्व के अनेक देशों में अकाल की विभीशिका इस प्रवृति के नमूने के रूप में ली जा सकती है। अमरीकी प्रतिष्ठान यूनियन कार्बाइड के भोपाल स्थित कारखाने में गैस रिसाव के कारण हजारों लोगों की जान गयी और अनेक लोग विकलांग हो गये। चेरनोबिल परमाणु बिजलीघर में दुर्घटना के कारण विशाक्त विकिरण ने वायुमण्डल को व्यापक पैमाने पर प्रदूषित ही नहीं किया वरन् आस-पास के क्षेत्रों को भी विशाक्त कर दिया। चेरनोबिल की घटना को देखते हुए लगभग 200 परमाणु बिजलीघरों को बन्द कर दिया गया।

राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पर्यावरण की समस्या काफी गम्भीर है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण की समस्याएं राज्यों के बीच समझौते एवं सहयोग पर भी आधारित है। संयुक्त राष्ट्र ने भी पर्यावरण के विकास तथा संकट को कम करने की दिशा में काफी प्रयास किए हैं। विश्व भर के सभी देशों का मानना है कि पर्यावरण संरक्षण को बेहतर बनाने के लिए एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके लिए ठोस कदम उठाये जाये।

औद्योगिक विकास के इतिहास की भयानक दुर्घटनाओं में एक भोपाल गैस दुर्घटना है। यह दुर्घटना 1984 में भोपाल के यूनियन कर्बाइड कीटनाशक कारखाने में मिथाइल आइसोसाइनाइड और फॉस्जीन गैस के वाष्पीकरण और रिसाव के कारण हुई। शहर की 2 लाख के करीब जनसंख्या पर इसका प्रभाव पड़ा। यूनियन कार्बाइड जैसे रसायन की पर्यावरण संरक्षण के लिए कार्य करने वाले लोग आलोचना करते रहे हैं।

गत वर्ष 29 जून 2013 को उत्तराखण्ड में आपदा का मुख्य कारण दो ग्लेशियरों की ऊपरी परत का पिछलना रहा है। आई.आई.आर.एस. (भारतीय सुदूर संवेदन संस्थान) द्वारा जारी रिपोर्ट बताती है कि इन ग्लेशियरों की ऊपरी परत पिघलती रही है। इस रिपोर्ट के अनुसार ग्लेशियरों को ऊपरी परत पिघलने से पानी का सैलाब फूटा एवं रास्ते में जो चीजें साामने आई वह बह गईं।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने विकास और पर्यावरण को आपस में सम्बद्ध बताया है और पर्यावरणीय गिरावट के लिए आज के विकास की नीति को जिम्मेदार माना है।

19.7 पर्यावरण पर राजनीति

पर्यावरण की राजनीति के अन्तर्गत पर्यावरण संरक्षण से सम्बन्धित विभिन्न सम्मेलन, आन्दोलन, जन समर्थन, राजनीतिक तथा संसदीय हस्तक्षेप आदि शामिल हैं। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इसका विभिन्न प्रकार से इस्तेमाल हुआ है। कभी इसे जनसुधार के जनांदोलन के रूप में लिया गया तो कभी इसे संसदीय स्तर पर लिया गया है। कुछ राजनीतिज्ञों द्वारा इसका प्रयोग लोकप्रियता तथा वोट हासिल करने के लिए किया जा रहा है तो कभी अपने राजनीतिक हितों को प्राथमिकता देकर प्रदूषण के दुष्परिणामों को नजरअंदाज किया जा रहा है।

पर्यावरण को राजनीति तथा आन्दोलनों के रूप में अलग-अलग समय के अनुसार अलग-अलग प्रकार से लिया गया है। वर्तमान समय में पर्यावरण की रक्षा और पारिस्थितिकी संरक्षण की आवश्यकता के बारे में मानव चेतना काफी जाग्रत हो चुकी है। दुनिया भर में होने वाली विरोध रैलियाँ और जनप्रदर्शन इस बात की ओर संकेत करते हैं कि हरित आन्दोलन के प्रति जागरूक होकर लोग पर्यावरण संरक्षण को अपना आवश्यक कर्तव्य मानने लगे हैं। अब राजनीति में पर्यावरण का सक्रिय प्रवेश हो चुका है। यहाँ तक कि कई देशों के राजनीतिज्ञों ने पर्यावरण को चुनावी मुद्दा बनाकर चुनाव भी जीता है। इसके अतिरिक्त पर्यावरण को व्यावहारिक मुद्दा बनाकर अपना राजनीतिक लक्ष्य भी घोषित किया है। सरकारों की गलती से प्रदूषण के कई मामले राजनीतिज्ञों के निजी लाभ के कारण कष्टदायी हो जाते हैं।

आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरणीय राजनीतिक सम्मेलनों में जागरूकता का यह परिणाम निकला है कि अन्य देशों में भी पर्यावरण संरक्षण को लेकर राजनीतिक हलचल प्रारम्भ हो गयी है। उन्हीं देशों में से भारत भी है। कलान्तर में यह लोगों के चिंतन का विषय भी बन गया है और अन्य विषयों की भांति पर्यावरण की राजनीति भी विभिन्न पहलुओं के रूप में उजागर हुई है जिसमें सरकार द्वारा चलायी जा रही परियोजनाओं, संस्थाओं का प्रदूषण, औद्योगिकरण, वनों का विनाश, राजनीतिक हितकारी योजनाएं आदि प्रमुख मुद्दे हैं। हमारे देश में पर्यावरण की राजनीति दो प्रकार से मुखर हुई है-पहला ये सिर्फ राजनीतिक स्वार्थों से प्रेरित है जिसमें कि जनता तथा पर्यावरणीय हितों को अनदेखा कर दिया गया है। दूसरा जनता के हितों से प्रेरित होकर सरकार तथा प्रदूषणकर्ताओं के विरूद्ध की गयी राजनीतिक क्रियाएं हैं। विभिन्न प्रकार की

नीतियों और कार्यक्रमों के चलने पर भी सरकार द्वारा अधिक धनोपार्जन के लिए बड़े पैमाने पर वनों को काटा जा रहा है जो कि हमारे पर्यावरण की रक्षा में चतुर्मुखी विकास के तौर पर हानिकारक सिद्ध हो रहा है।

आज भारतवर्ष में पर्यावरण और उसके संरक्षण का विषय राजनीति तथा राजनीतिज्ञों और कानूनविदों से जुड़ने के कारण विचारणीय प्रश्न बना है। स्टाकहोम सम्मेलन में तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी ने पर्यावरण को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक सम्मेलन में अत्यधिक महत्व देने के बाद ही इसका राजनीति में सक्रिय तौर पर प्रवेश हुआ है और इसके बाद इसमें आम जनता तथा कुछ कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्तियों की भागीदारी से यह न्यायालय का विषय बनता जा रहा है।

पृथ्वी सम्मेलन जून 1992 रियो दि जिनेरियो (ब्राजील) में आयोजित हुआ था जिसमें उत्तर और दक्षिण के देशों में पर्यावरण के मुद्दों को लेकर मतभेद तथा महत्वपूर्ण विचारों को प्रस्तुत किया गया। विकसित देशों का मानना है कि जनसंख्या विस्फोट और गरीबी के कारण ही पृथ्वी की यह हालत हुई है। इसके विपरीत तीसरी दुनिया के लोगों का मानना है कि विकसित देशों के लोभ तथा उनके द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के अतिदोहन के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई है। इस सम्मेलन में छः महत्वपूर्ण मुद्दों पर उत्तर-दक्षिण देशों ने अपना मतभेद प्रकट किया, जैसे- ग्रीन हाउस, गैस उत्सर्जन, वन, तकनीक तथा धन।

गरीब देशों का यह मानना है कि अमीर देशों ने औद्योगीकरण से पर्यावरण की तबाही की है। ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर कटौती के मामले में विश्वव्यापी सहमति कायम करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने वैश्विक सम्मेलन इण्डोनेशिया के बाली द्वीप में 2019 में सम्पन्न किया।

1992 में रियो दि जिनेरियो में हुए पृथ्वी सम्मेलन में लिये गये निर्णयों की प्रगति की समीक्षा के लिए दूसरे पृथ्वी सम्मेलन के नाम से चर्चित सतत् विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन 26 अगस्त 2002 से 4 सितम्बर के दौरान जोहान्सबर्ग में सम्पन्न हुआ। विश्व के इस सबसे बड़े सम्मेलन में लगभग 200 राष्ट्रों के 60,000 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन का उद्घाटन दक्षिण अफ्रीका के राष्ट्रपति थांबोम्बेकी (Thabo Mbeki) ने किया।

जून, 2013 में यू.एन.ई.पी. द्वारा वैश्विक पर्यावरण की रिपोर्ट जारी की गई है। संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की वैश्विक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत एशिया के उन 24 देशों में शामिल है जिसने ओजोन परत को क्षति पहुँचाने वाले क्लोरो-फ्लोरो कार्बन (सीएफसी), कार्बन स्ट्राक्लोराइड एवं हेलोन का उत्पादन एवं उपयोग बंद कर दिया है।

स्वच्छ पर्यावरण मनुष्य की जरूरत है। पिछले कई दशकों में विश्व स्तर पर पर्यावरणीय समस्याओं के प्रति तीव्र चिन्ता सामने आई है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण की समस्या के प्रति जागरूकता को लेकर संगठन एवं संस्थाओं ने कई अभियान चलाये हैं। इसी क्रम में जैव विविधता को बनाए रखना पारिस्थितिकी तन्त्र के लिए प्रभावी कदम है। इसके लिए इसके कार्यक्रमों एवं गतिविधियों में वर्ष 2013 में कई नए-नए आयाम भी जुड़े हैं।

इस सम्बन्ध में जलवायु परिवर्तन को रोकने के सम्बन्ध में कई महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक उपाय निम्न हैं-

- जीवाश्म ईंधन के उपयोग में कमी की जाए।

- पेड़ों को बचाया जाए एवं अधिक से अधिक वृक्षारोपण किया जाए।
- प्लास्टिक जैसे अपघटन में कठिन व असम्भव पदार्थों का प्रयोग न किया जाए।
- प्राकृतिक ऊर्जा के स्रोतों को अपनाया जाए, जैसे-सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा आदि।

19.8 सारांश

पर्यावरण और सतत् मानव विकास के बीच एक बेहतर जीवन जीने के लिए इनके बीच सम्बन्धों का अध्ययन आवश्यक है। पर्यावरण मानव जीवन को किस प्रकार प्रभावित करते हैं तथा उसके विकास में क्या भूमिका अदा करते हैं। इसे हम सतत् विकास के माध्यम से देख सकते हैं। पर्यावरण में संसाधनों के माध्यम से विश्व के सभी लोगों को बढ़ने का समुचित अवसर प्राप्त होता हैं। प्रत्येक प्राणी को जीवित रहने के लिए कुछ विशिष्ट परिस्थितियों की आवश्यकता होती है जिसके माध्यम से वह अपना विकास सम्पन्न करता है।

प्राचीन काल से ही पर्यावरण हमारे चिंतन का विषय रहा है। आज समूचे विश्व में पर्यावरण एक अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दा बना हुआ है। प्रत्येक देश के प्रतिनिधि पर्यावरण जैसे गम्भीर मुद्दे को लेकर चिंतित भी दिखाई दे रहे हैं।

पर्यावरण प्रदूषण की समस्या आज एक चिन्तनीय विषय है जिसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर दूर करने का विचार किया जा रहा है। इस प्रकार पर्यावरण विकास के लिए ऐसी आवश्यकता बन चुका है जिससे लोगों को जीवन स्तर सुधारने का मौका मिल सकता है। पर्यावरण संरक्षण के विभिन्न प्रयासों को लेकर आज काफी जोर-शोर हो रहा है। पर्यावरणविद्, वैज्ञानिक, सामाजिक कार्यकर्ता, स्वयं सेवी संस्थाएँ सभी पर्यावरण के प्रति चिंतित हो रहे हैं तथा पर्यावरण सुधार और संरक्षण के लिए विभिन्न उपाय सुझा रहे हैं। किन्तु कोई भी सार्वजनिक प्रयास तभी मुखर हो सकता है जब वह किसी प्रभावशाली व्यक्तित्व के नेतृत्व में तथा किसी विवेकशील सम्मानित, समर्पित तथा जनप्रिय के हाथों में हो।

आज प्रजातंत्र का युग होने के कारण प्रत्येक उभरता विषय जन समस्या तथा राजनीति का रूप लेती जा रही है। पर्यावरण प्रदूषण के सापेक्ष सरकारी उपेक्षा तथा इसके विपरीत कुछ जागरूक लोगों की पर्यावरण संरक्षण के प्रति व्यक्तिगत भागीदारी के उत्पन्न हो जाने के कारण पर्यावरण भी राजनीति का अभिन्न अंग बन रहा है। पर्यावरण से संबंधित राजनीति राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर काफी प्रभावशाली होती जा रही है।

पर्यावरण की राजनीति के अन्तर्गत पर्यावरण संरक्षण से संबंधित विभिन्न सम्मेलन, आन्दोलन, जन समर्थन तथा अन्तर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर इसका विभिन्न प्रकार से इस्तेमाल हुआ है। कभी इसे जन सुधार के लिए जनांदोलन के रूप में लिया तो कभी संसदीय स्तर पर लिया गया है।

संयुक्त रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण के प्रयास और राजनीति संयुक्त रूप से प्रयास के तौर पर 1992 में प्रथम पृथ्वी शिखर सम्मेलन स्टाकहोम में आयोजित किया गया। संभवतः यह संयुक्त रूप से विकसित व विकासशील देशों का पर्यावरण संरक्षण के लिए पहला राजनीतिक प्रयास था।

19.9 सम्बन्धित प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. पर्यावरण का अर्थ क्या है? मानव जीवन के विकास में इसका क्या योगदान है वर्णन कीजिए।
2. प्रदूषण का अर्थ एवं प्रकार बताइए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सतत् मानव विकास से आप क्या समझते हैं?
2. पर्यावरणीय राजनीति का मानव जीवन पर प्रभाव का वर्णन कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

प्रश्न-1 प्रथम पृथ्वी शिखर सम्मेलन का आयोजन हुआ?

(अ) 1919 (ब) 1972 (स) 1982 (द) 2000

उत्तर -(ब)

प्रश्न-2 कौन-सी गैस वायुमण्डल में रक्षा कवच का कार्य करती है।

(अ) नाइट्रोजन (ब) ऑक्सीजन (स) कार्बन (द) ओजोन

उत्तर (द)

19.10 संदर्भ सूची

1. पर्यावरण प्रशासन एवं मानव-डा0 राकेश कुमार शर्मा परिस्थितिकी-राजस्थान ग्रन्थ एकेडमी जयपुर, 2007।
2. विश्व विकास प्रतिवेदन, विकास एवं पर्यावरण विश्व बैंक।
3. पर्यावरण की राजनीति-लता जोशी-अनामिका पब्लिकशर्स-2001।
4. समकालीन भारत का परिचय - मनोज सिन्हा ओरियंट ब्लैकस्वॉन।
5. मानवाधिकार जेन्डर एवं पर्यावरण - तपन बिसावाल।
6. भारत की सामाजिक समस्याएं - सुनील कान्त भट्टाचार्य - राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली-2004।
7. राजनीतिक चिन्तन की रूपरेखा - ओ.पी. गाबा।
8. पर्यावरण संरक्षण एवं वानिकी - बी.एस.सक्सेना, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर-2007।
9. पर्यावरण अध्ययन-अमित कुमार विश्वभारती पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली-2006।

इकाई-20

नारी अधिकार एवं आन्दोलन

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 नारी अधिकार

20.2.1 संयुक्त राष्ट्र और नारी अधिकार

20.2.2 अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार एवं नारी अधिकार

20.2.3 भारत में नारियों को संवैधानिक अधिकार

20.3 नारी अधिकारों का हनन्

20.4 नारी आंदोलन

20.5 भारत में नारी आंदोलन

20.6 सारांश

20.7 बोध प्रश्न

20.0 उद्देश्य

इस इकाई के अर्न्तगत नारी अधिकारों एवं नारी – आन्दोलन पर चर्चा की गयी है। इसका उद्देश्य–

- नारी–अधिकारों के विषय में जानकारी उपलब्ध कराना है।
- नारी–आंदोलन के विषय में प्रकाश डालना है।
- इस संदर्भ में समालोचनात्मक समझ विकसित कराना है।

20.1 प्रस्तावना

दुनिया भर के समाजों में महिलाओं की स्थिति पुरूषों के समक्ष दयनीय रही है। आज जो उन्हें प्रस्थिति प्राप्त है उसके लिए उन्हें कड़ा संघर्ष करना पड़ा है और एक लम्बी लड़ाई लड़नी पड़ी है। संयुक्त राष्ट्र, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नारी अधिकार एवं भारत में संविधान के अन्तर्गत महिलाओं को किस प्रकार से पुरूष के समकक्ष समानता दी गई तथा समाज में आज उनकी क्या भूमिका है इसका उत्तर जानना आवश्यक है।

नारी अधिकारों की रक्षा हेतु विश्व स्तर पर नारी आंदोलन भी हुए है जिसका समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा है एवं भारतवर्ष में भी नारी आंदोलनों का महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसमें विकास के समुचित अवसरों, समान अधिकारों, कानूनी अधिकार, अन्याय का विरोध, शिक्षा के अवसर, जैसे मुद्दों को उठाया गया है एवं व्यापक स्तर पर विभिन्न समुदायों में भी इसकी माँग की गयी। इस आंदोलन में समाज सुधारकों ने भी अमूल्य योगदान दिया है।

अधिकांशतः देखा जाता है कि शोषण और दमन का व्यवहार वर्ग, लिंग, भाषा, जाति के आधार पर किया जाता है। इस संदर्भ में महिलाओं की स्थिति बहुत शोचनीय है। समाज में महिलाओं को सदैव शोषण का शिकार होना पड़ता है। आज महिलाएं समाज में अपनी विभिन्न–विभिन्न भूमिकाओं का निर्वाह कर रही हैं जैसे डॉक्टर, इंजीनियर, मैनेजर, वकील, अध्यापिका आदि। परन्तु महिलाओं के कार्यो को सरल एवं कम महत्वपूर्व समझा जाता है। विकास सम्बन्धी कार्यो, सफल योजनओं के निर्माण तथा समायोजन में उनकी भूमिका को महत्व नहीं दिया जाता है। योजनाओं के निर्माण में उनसे परामर्श नहीं लिया जाता है। पुरूषों के समकक्ष उन्हें कमजोर माना जाता है। समान कार्य के लिए महिलाओं को समान वेतन नहीं दिया जाता है। उनको घरेलू हिंसा का शिकार होना पड़ता है। महिलाओं को उच्च पदों पर देखने में तथा पुरूषों को महिलाओं के अधीन कार्य करने में दोनों के बीच अहं का टकराव भी देखने को मिलता है। कई स्थानों पर महिलाएं निम्न स्तर की नौकरियों तथा कम वेतन पर कार्यरत है।

महिलाओं के साथ लिंग के आधार पर उनके खान–पान में भी भेदभाव किया जाता है। समान अधिकारों के बावजूद उनसे भेदभाव किया जाता है। यद्यपि संविधान में महिलाओं को पुरूषों के समान अधिकार तथा स्वतन्त्रता प्राप्त है परन्तु व्यवहार में इनके बीच भेदभाव किए जाते हैं। भारत वर्ष में अशिक्षा तथा पिछड़ापन महिलाओं के शोषण का मुख्य कारण रहा है।

हिंसा, संचार साधनों का अभाव, ढीली–ढ़ाली कानून व्यवस्था तथा समाज में मूल्यों का पतन जैसे कारणों ने महिलाओं के विरूद्ध अपराधों को बढ़ावा दिया है। परन्तु आज महिलाओं को सशक्त एवं सुरक्षित बनाने की आवश्यकता है इसके लिए उन्हें स्वयं भी जागरूक रहना होगा।

दुनिया भर में महिलाओं के लिए बहुत से आंदोलन चलाये गये लेकिन उनकी स्थिति में अपेक्षित परिवर्तन नहीं देखा जा रहा है। महिलाओं के प्रति अत्याचार एवं अपराध बढ़े हैं। महिलाओं की सबसे बड़ी विवशता या त्रासदी यह है कुछ अपवादों को छोड़कर स्त्री की भूमिका अपनी जरूरतों के आधार पर घर में पुरूष या समाज की व्यवस्था तय करती है। वस्तुतः पुरूष सत्तात्मक समाज की नियति है।

आज समाज में महिलाओं को अपनी सुरक्षा करना एक महत्वपूर्ण चुनौती बन गयी है। महिलाओं ने आधुनिक समाज में अपनी आजादी की कीमत सुरक्षा से चुकाई है। आधुनिक समाज में स्त्रियों को केवल बोलने की अनुमति दी है निर्णय करने का अधिकार नहीं दिया है। वही महिलाएं भी उतना ही बोलती है जितनी आश्यकता है।

शिक्षा के उचित अवसर प्रदान कर उनकी स्थिति में बदलाव लाया जा सकता है। जीवन मूल्यों के प्रति घटती हुई आस्था, पारिवारिक परम्पराओं की उपेक्षा से भी महिलाओं के समक्ष नयी चुनौतियां उत्पन्न की है। एक तर्क यह भी है कि महिलायें ही महिलाओं की दुश्मन है। परिवार में महिलाओं का महिलाओं के क्रूर आचरण बहू, सास, ननद के मुद्दे भी महिलाओं की शोचनीय स्थिति में सहायक रहे हैं।

20.2 नारी–अधिकार

20.2.1 संयुक्त राष्ट्र और नारी अधिकार

संयुक्त राष्ट्र के उद्घोषणा पत्र में मानवाधिकारों की स्पष्ट व्याख्या की गयी है जिसके आधार पर स्त्री पुरूष को समान अधिकार देते हुए दोनों की गरिमा और स्वतन्त्रता तथा मानवता एवं समान जीवन जीने की घोषणा की गई है। इन अधिकारों को किसी भी स्थिति में किसी के द्वारा नहीं छीना जा सकता है। इस घोषणा पत्र में महिलाओं को किसी आधार पर, जैसे–धर्म, जाति, भाषा, सम्पत्ति आदि के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता है। नारियों को वे समस्त अधिकार प्राप्त हैं जो उनमें स्वतंत्र एवं सामान्य जीवन के लिए आवश्यक है और साथ ही जो उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने सक्षम है। महिलाओं को अपने अधिकरों के लिए लम्बा संघर्ष करना पड़ा है। प्रजातांत्रिक प्रवृत्तियों के बढ़ने के स्पथ सामन्ती प्रवृत्तियों का विस्तार होता गया। जैसे–जैसे प्रजातांत्रिक मूल्यों को स्थान मिलता गया वैसे –वैसे महिलाओं के अधिकारों के प्रति संवेदना में तीव्रता आती गयी। अधिकारों की स्थापना की एक लम्बी ऐतिहासिक यात्रा रही है। अधिकारों की मान्यता वैयक्तिक स्तर से राष्ट्रीय स्तर तथा राष्ट्रीय से अन्तर्राष्टीय स्तर तक गतिशील रही है। 1945 में अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता मिली इसे मानवाधिकार का सार्वभौमिक घोषणा–पत्र कहा गया। इसमें महिलाओं एवं पुरूषों में कोई भेद स्थापित नहीं किया गया था इसी के साथ महिलाओं के प्रति सोच में क्रांतिकारी प्रवृत्ति को जन्म दिया। आगे चल कर इस प्रवृत्ति ने महिला सशक्तिकरण की दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका को जन्म दिया

1970 के दशक में पूरे विश्व में जगह–जगह पर नारी आंदोलन हुए जिसमें लैंगिक असमानता के कारण न्याय एवं मानव अधिकारों के लिए नारीवादी दृष्टिकोण को उठाया गया और उनके साथ होने वाले अन्याय के विरूद्ध एवं भेदभाव को समाप्त करने के लिए आंदोलन चलाए गये। क्योंकि उस समय विश्व में नारियों के साथ होने वाली हिंसा, अत्याचार, लैंगिक असमानता का स्तर सबसे अधिक था जिस कारण कानून में उनको समान दर्जा देने के लिए और समाज में एक सम्मानित सदस्य के रूप में मान्यता दिए जाने की माँग की गयी। इसके फलस्वरूप नारी आंदोलन की शुरूआत हुई ।

20.2.2 अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार एवं नारी अधिकार

1979 में एक ऐतिहासिक घटना हुई जिसमें महिला के विरूद्ध होने वाले अन्याय एवं भेदभाव को समाप्त करने के लिए विश्व स्तर पर एक समझौता हुआ। नारी अधिकार की सुरक्षा के लिए इसे अन्तर्राष्ट्रीय बिल का नाम दिया गया। इसे CEDAW (The International Bill of Women right) के नाम से भी जाना जाता है। इसमें भारत सहित कई राष्ट्रों ने आपसी सहमति से हस्ताक्षर किए और इसे मानव अधिकारों का संधि पत्र कहा गया।

प्रायः महिला अधिकारों के विरूद्ध सभी क्षेत्रों में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आधारों पर भेदभाव होता है इसलिए इस प्रावधान में इन सभी क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया। समझौते के अन्तर्गत माना गया कि सभी देशों का यह दायित्व होगा कि वे इसमें उल्लिखित नारी अधिकारों की रक्षा का सदैव प्रयास करेंगे।

20.2.3 भारत में नारियों को संवैधानिक अधिकार

भारत में नारी अधिकारों के लिए बहुत लंबा संघर्ष चला है और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए बड़े–बड़े समाज सुधारकों ने भी योगदान दिया है जैसे प्राचीन काल से

चली आ रही सती प्रथा, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा, लैगिक असमानता आदि। इन कुप्रथाओं को धीरे–धीरे सामाजिक सुधारों एवं कानून के माध्यम से दूर करने का प्रयास किया गया।

भारतीय संविधान में कुछ महत्वपूर्ण अनुच्छेद हैं जिसके आधार पर महिला अधिकारों को सुरक्षा प्रदान की गई है, जैसे–

1. अनुच्छेद–14 विधि के समक्ष समानता
2. अनुच्छेद–15 धर्म, वंश, जाति, लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जायेगा।
3. अनुच्छेद –16 अवसरों की समानता।
4. अनुच्छेद–21 प्राण और दैहिक स्वतन्त्रता के अधिकारों का समर्थन करता है एवं स्त्री–पुरूष को समान रूप से संरक्षण प्रदान करता है।
5. अनुच्छेद–38 जनकल्याण हेतु सामाजिक, राजनीतिक न्यायिक संरक्षण प्रदान करता है।
6. अनुच्छेद–39 महिलाओं को पुरूषों के समान जीविका के अवसर प्रदान करता है।

इस प्रकार भारतीय संविधान ने समाज में महिलाओं की स्थिति को मजबूत बनाने के लिए मूल–अधिकारों एवं स्वतन्त्रता, समानता के अधिकारों का समर्थन करता है समाज में सभी नागरिकों को लैंगिक आधार पर न्याय प्रदान करता है एवं कानूनी आधार पर अधिकरों को मान्यता प्रदान करते हुए नारी स्थिति में सुधार के प्रयास करता है । इसके लिए बाल विवाह अधिनियम (1992), सती प्रथा निवारण अधिनियम (1987) विवाह अधिनियम (1954), समान वेतन अधिनियम (1976), दहेज निवारण अधिनियम (1961), प्रसूति सहायता अधिनियम (1961), चलचित्र (सेंसर) अधिनियम (1986), घरेलू हिंसा अधिनियम (2006) जैसे अधिनियमों का निर्माण करके संविधान में कानूनी व्यवस्था के माध्यम से नारी अधिकारों को संरक्षण प्रदान किया गया है। इन सबका लक्ष्य नारी गरिमा को स्थापित करना है।

20.3 नारी अधिकारों का हनन

विश्व की कुल जनसंख्या का लगभग आधा भाग महिलाओं का है। समाज के विकास एवं निर्माण के लिए स्त्री –पुरूष दोनों की सहभागिता आवश्यक है पर इस स्थापित सत्य के बावजूद भी दुनिया भर के प्रत्येक समाज में महिलाओं की स्थिति सोचनीय बनी रही है। पुरूष सत्तात्मक समाज ने उनको एक वस्तु समझा और तदनुसार उसके साथ व्यवहार किया। भौतिक सभ्यता के विकास में महिलाओं के प्रति सोच को और भी वीभत्स रूप दिया।

इस पूरे विश्व में नारियों पर होने वाले अत्याचारों व अपराधों के पीछे उनका आर्थिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़ापन रहा है सदियों से नारी अधिकारों का हनन होता रहा है जो कि कई –कई रूपों में हमारे सामने आता रहा है जैसे –

1. सती प्रथा का प्रचलन होना इसमें पति की मृत्यु के पश्चात् स्त्रियाँ उनकी चिता के साथ जलने को मजबूर की जाती थीं। इस प्रथा को धर्म से जोड़कर और भी अधिक उन्मादी रूप दे दिया जाता था वस्तुतः यह एक अमानवीय प्रथा थी। इसी प्रकार पर्दा–प्रथा, बहु– विवाह, बेमेल विवाह, वेश्या–प्रथा आदि का मान भी लिए जा सकता है। इसमें नारियों की स्थिति अत्यन्त दयनीय बन गयी है।
2. भ्रूण हत्या का होना लड़कियों को जन्म से पूर्व ही गर्भ में ही मार दिया जाता हैं। स्त्रियों को जबरदस्ती इस जघन्य अपराध के लिए मजबूर किया जाता है। भ्रूण

हत्या का परिणाम यह है कि सभी देशों में लड़कियों का प्रतिशत दिन प्रतिदिन घटता जा रहा जा रहा है। वस्तुतः यह मानव सभ्यता का सबसे अधिक दुःखद पहलू है।

3. महिला अधिकारों का हनन आए दिन होने वाले बलात्कार और यौन–उत्पीड़न के माध्यम से होता है जिसका ग्राफ बढ़ता ही जा रहा है।

4. महिला अधिकारों का हनन पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों को कम वेतन दिया जाना भी है।

5. दहेज की समस्या भी बहुत महत्वपूर्ण सामाजिक समस्या रही है। जिसमें दहेज–उत्पीड़न के साथ ही साथ महिला मृत्यु भी एक प्रकार से नारी अधिकारों का हनन है।

6. महिलाओं को अवसरों की समानता न मिलने से उनकी क्षमताओं का सही उपयोग नही हो पाता है फलस्वरूप उनके अधिकारों का हनन होता है।

20.4 नारी आंदोलन

किसी सामाजिक समस्या को दूर करने के लिए विशाल जनसमुदाय द्वारा किया गया सामूहिक प्रयत्न सामाजिक आंदोलन कहलाता है। महिलाओं की स्थिति को सुधारने के लिए इसी प्रकार का व्यक्तिगत एवं सामुहिक प्रयत्न किया जाता रहा है। इसे ही नारी आन्दोलन का नाम दिया गया।

भारत में समाज परिवर्तन की दिशा में इसी सामाजिक आन्दोलन का एक हिस्सा नारी आन्दोलन के रूप में आया।

वर्तमान में हम किसी भी समाज के विकास का आधार उस समाज में महिलाओं की स्थिति के आधार पर लगा सकते हैं। जो समाज जितना ही अपने समाज में नारियों को आदर सम्मान देता है तथा उसकी गरिमा के सुरक्षोपाय सुनिश्चित करता है वह समाज उतना ही सभ्य समझा जाता है। सदैव ही स्त्री एवं पुरूष को गाड़ी के दो पहियों के समान माना जाता रहा हैं इसमें दोनों की भूमिका समाज में परस्पर पूरक की है। किसी की भी भूमिका किसी दूसरें से कमतर नहीं है।

प्राचीन काल से ही स्त्रियों को पुरूषों द्वारा अपनी सम्पत्ति का हिस्सा माना जाता रहा है और उसी के आधार पर उनसे व्यवहार भी किया जाता रहा है। लड़कियों को जन्म से ही यह शिक्षा दी जाती है कि वो सदैव ही पुरूषो के अधीन है चाहे वो पिता हो या भाई या फिर पति के रूप में हो। स्त्रियों को लैंगिक भेदभाव के कारण ही निम्न दर्जा दिया जाता है।

सम्पूर्ण विश्व में महिलाओं लगभग आधी आबादी है लेकिन फिर भी उनको समानता का दर्जा प्राप्त नहीं है। स्वामी विवेवकानन्द जी का मानना था कि 'जो देश स्त्रियों का सम्मान नही करता है, वह कभी भी न तो महान बन सकता है और न ही भविष्य में कभी बन पाएगा'।

विश्व में लैंगिक भेदभाव और अन्याय के विरूद्ध महिलाओं ने आंदोलन किए गए हैं। उन्होंने अपने प्रति होने वाले अन्याय, अत्याचार व हिंसा का विरोध किया है और समाज में विकास के समुचित अवसरों, समान अधिकारों, कानूनी अधिकार की मांगे भी की है। महिलाओं में अब शिक्षा के माध्यम से काफी जागरूकता भी बढ़ी है और उनके द्वारा अपने अधिकारों के संघर्ष को नारीवाद के रूप में मान्यता भी मिली है।

नारीवादी मुख्यतः पुरूष प्रधान समाज में स्त्रियों के अधिकारों को पुरूषों के समान स्थापित करने की माँग करता है। सामाजिक विकास के साथ समाज में स्त्रियों को समान अधिकार प्रदान करने की माँग करता है। ऐसी सोच का विरोध करता है जो स्त्रियों को पुरूष के अधीन रखने की माँग करता है।

नारीवाद अब वैश्विक आंदोलन बन गया है जो महिलाओं के हितों की बात करता है एवं उनमें जागरूकता पैदा कर अत्याचार के विरूद्ध लड़ने के लिए सचेत करता है। महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा आदि के क्षेत्रों में बराबरी का स्थान मिले और सभी क्षेत्रों में महिलाओं को समान अवसर मिले। यही नारीवादी आंदोलन का प्रयास रहा है। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी के विकास एवं महिला आंदोलनों को प्रोत्साहन भी दिया गया है और संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस विषय पर राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय मंच का निर्माण भी किया है।

यद्यपि स्त्रियों को कानूनी रूप से अधिकार प्राप्त है परन्तु उनके साथ फिर भी भेदभाव किया जाता है और उनकी उपेक्षा की जाती है। स्त्री–पुरूष के बीच लैंगिक असमानता ने नारीवादी आंदोलन को विचारधारात्मक रूप प्रदान किया है।

नारीवाद की चिंता सदैव समाज में महिलाओं की स्थिति से रही है। नारीवाद के अनुसार, आज के इस वैज्ञानिक युग में स्वास्थ्य, शिक्षा व्यवसाय में अवसरों की समानता से यह प्रमाणित हो चुका है कि स्त्री–पुरूष की क्षमता, मानसिक क्षमता, बुद्धि, योग्यता के आधार पर स्त्री–पुरूष के बीच कोई अंतर नहीं है।

आज महिलाओं ने अपने उत्तरदायित्वों को निभाते हुए प्रत्येक अवसरों जैसे खेल–कूद व्यवसाय, शिक्षा, चिकित्सा आदि के क्षेत्र में अपनी क्षमता का प्रर्दशन किया है और राष्ट्रीय स्तर पर ही नही बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी ख्याति अर्जित की है। इससे यह सिद्ध होता है कि महिला आज कमजोर नहीं बल्कि हर स्थिति में सबल है उसको प्रकृति ने अद्‌भुत क्षमता प्रदान की है जिससे अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकती है।

20.5 भारत में नारी आंदोलन

भारतीय समाज में नारियों को स्थिति विभिन्न युगों में अलग–अलग रही है। उनको भारतीय समाज में शक्तिस्वरूप लक्ष्मी, ज्ञान की देवी सरस्वती के रूप में पूजा जाता रहा है। वैदिक युग में भी नारियों की उच्च स्थिति रही है। परन्तु उत्तर वैदिक काल में इसमें परिवर्तन आया और नारियों की उच्च स्थिति में बदलाव आ गया है। मध्यकाल में मुस्लिम आक्रन्ताओं से हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए स्त्री के सतीत्व की रक्षा हेतु नियमों को कठोर बना दिया गया।

नारी आन्दोलन में भारतीय समाज सुधारकों जैसे राजा मोहन राय ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। 19वीं, 20वीं शताब्दी में समाज सुधारकों ने सुधार आन्दोलन को अहम् हिस्सा बनाया। नारी सुधार की दिशा में बाल विवाह, सती प्रथा का विरोध तथा स्त्री विधवा विवाह, शिक्षा आदि का समर्थन किया।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुस्लिम समुदाय में भी नारी सुधार आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। नारी सुधार के लिए सामूहिक प्रयासों के साथ ही कुछ व्यक्तिगत प्रयास भी किए गये जैसे कलकत्ता में कलकत्ता तरूण स्त्री सभा, पण्डिता रमाबाई द्वारा 'पूना सेवा सदन विधवा आश्रम की स्थापना की गई।

नारी अधिकार आन्दोलन में आजादी से पूर्व भी स्त्रियों ने स्वदेशी आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन एवं सविनय आन्दोलन में भाग लेकर सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया। 20वीं शताब्दी में महिलाओं द्वारा महिला संगठनों की भी स्थापना की गई इसी दिशा में 'अखिल भारतीय महिला सभा' की स्थापना भी एक महत्वपूर्ण घटना थी। इन महिला संगठनों ने नारी मुक्ति आन्दोलन की प्रक्रिया को तेज किया और आन्दोलन के ढाँचे में परिवर्तन भी किए।

20वीं शताब्दी के आरम्भ में नारी आन्दोलन की जो नवीन प्रवृत्तियाँ सामने आयी है उसने नारियों के प्रति सोच में क्रांतिकारी परिवर्तन कर लिया फलतः नारी आन्दोलन को नयी गति मिली है गाँधी जी ने नारियों को राजनीतिक आन्दोलन में शामिल करने पर बहुत बल दिया था उनके आन्दोलनों में महिलाओं ने बढ़–चढ़ कर भाग लिया। इससे उनकी चेतना का विकास देखने को मिला। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का जन्म समाज एवं कर्म सुधार आन्दोलनों का परिणाम था। इसलिए समाज–सुधार भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सदैव अभिन्न अंग बना रहा। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं ने समाज की बुराईयाँ दूर करने के लिए सदैव दयानन्द सरस्वती, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, गाँधी, नेहरू, अम्बेडकर, सुभाष चन्द्र बोस, रानाडे, गोखले, तिलक आदि नेताओं का उल्लेख इस संदर्भ किया जा सकता है। इन सभी ने भारत में नारी–गरिमा को पुनः स्थापित करने पर बल दिया। अंग्रेजी –शिक्षा के प्रचार–प्रसार तथा पश्चात्य् मूल्यों का भारतीय समाज में प्रवेश ने भी महिलाओं में नई चेतना उत्पन्न करने में सहायक बनी और यहां के लोगों में महिलाओं के प्रति सोच में परिवर्तन किया। इससे परम्परागत व रूढ़िवादी सोच को गहरा धक्का लगा देश की आजादी मिलने पर इस दिशा में क्रातिकारी परिवर्तन देखने को मिला।

भारत में जनचेतना के विकास के साथ ही नारी आंदोलन का उदय हुआ। इस प्रकार सामाजिक न्याय की स्थापना एवं नारी शिक्षा पर बल देने के लिए विद्वान पुरूषों और समाज सुधारकों ने इस संदर्भ में रचनात्मक पहल की। समाज में धीरे–धीरे लोगों की विचारधारा में परिवर्तन होने लगा। लोग खुले दिमाग से सोचने लगे। नारी अधिकारों को मान्यता देने के लिए कानूनी प्रयास भी किए गये।

नारी आन्दोलन ने महिलाओं को परापरागत बंधनों से मुक्त करने के साथ ही उनको समानता के अवसर प्रदान करने एवं स्वयं को सिद्ध करने का अवसर प्रदान किया है। नारी आंदोलन के अन्तर्गत नारी स्थिति में सुधार के प्रयास किये गये।

भारतीय संविधान में भी महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए विशेष प्रावधान भी किये गये हैं।

सामाजिक आन्दोलन को प्रेरित करने के लिए महिला अथवा नारी आंदोलन ने भी महत्वपूर्ण प्रयास किए जिसके द्वारा नारी आंदोलन को एक नई दिशा भी मिली जैसे गढ़वाल में चिपको–आन्दोलन बम्बई में मूल्य वृद्धि आंदोलन, बोधगया का मठ–आन्दोलन, महिला यौन उत्पीड़न एवं दहेज प्रथा के विरूद्ध आंदोलनों ने नारी–कल्याण एवं विकास हेतु सराहनीय योगदान दिये।

महिलाओं के विभिन्न मुद्दों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी मान्यता प्रदान की गई। इसके अतिरिक्त महिला अधिकारों एवं सकारात्मक प्रयास के लिए भारत में 1991 मे महिला आयोग की स्थापना भी की गई जिसका उद्देश्य महिला अधिकारों का संरक्षण है।

20.6 सारांश

नारी आंदोलन का उद्देश्य मुख्य रूप से महिलाओं के अधिकारों के हनन् को रोकने एवं सामाजिक न्याय की स्थापना हेतु प्रयास रहा है। इस दिशा में समाज–सुधारकों

राजनीतिक–नेताओं के प्रयास, संयुक्त राष्ट्र तथा स्वैच्छिक संगठनों आदि की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इन सभी ने नारी–अधिकारों के प्रति महिलाओं को जागरूक कर उनकों सशक्त करने का प्रयास किया है।

नारी आंदोलन एक संगठित आन्दोलन के रूप में ने होकर अलग–अलग मुद्दों को लेकर गतिशील रहा है। जैसे यौन–उत्पीड़न बलात्कार, घरेलू हिंसा आदि मुद्दों का नाम लिया जा सकता है।

नारी आन्दोलन को समय–समय पर अनेक चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा है। पुरूषों के लिए नारी आन्दोलन एक मजाक तथा पारिवारिक तालमेल के अभाव के रूप में भी रहा हैं। इनका तर्क है कि पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के फलस्वरूप महिलायें अपने कर्त्तव्यों से विमुख हो गई है। उनके अनुसार नारी आन्दोलन परिवार के विरूद्ध जाने का दुःसाहस है।

पूर्व में महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक नहीं थी परन्तु आज वो हर तहर से जागरूक हैं। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि वे संगठित होकर इस दिशा में प्रयास करें।

वर्तमान में महिलाओं के साथ होने वाले अन्याय, घृणित अपराध तथा दामिनी और निर्भया जैसे अमानवीय घटनाओं को रोकने के लिए आवश्यक है कि उनका एक मजबूत संगठन हो जो पुरूषों एवं संकीर्ण मानसिकता वाले समाज को नई स्वस्थ सोच एवं नई दिशा प्रदान कर सकें। साथ ही महिला–अधिकारों को संरक्षण प्रदान मिल सकें। लोगों की सोच में बदलाव से ही महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन संभव है। एक स्वस्थ सोच ही स्वस्थ समाज का निर्माण कर सकता है पर इसके लिए महिलाओं को स्वयं आगे आना पड़ेगा उन्हें पुरूषों पर निर्भर न रह कर आत्म–निर्भर होना पड़ेगा और स्वयं आत्म –विश्वास पैदा करना होगा उन्हें अपना स्वयं बनाना होगा।

20.7 बोध प्रश्न

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. भारतीय संविधान ने नारियों को कौन–कौन से संवैधानिक अधिकार प्राप्त है?
2. नारी–आन्दोलन का विकास किस प्रकार हुआ?
3. नारी–सुधार आन्दोलन के महत्व का मूल्यांकन कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. संयुक्त राष्ट्र में नारी अधिकार को किस प्रकार प्रधानता दी गयी है?
2. महिला–अधिकारों के हनन पर टिप्पणी लिखिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. किसी एक देश में महिलाओं को मतदान का अधिकार सन् 1971 में मिला?

   (क) आस्ट्रेलिया (ख) न्यूजीलैण्ड

   (ग) मैक्सिको (घ) स्विट्जरलैण्ड

2. महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय बिल पारित किया गया?

(क) 1948 (ख) 1979

(ग) 1999 (घ) 1993

3. नारियों के संवैधानिक अधिकार की सुरक्षा ''अवसर की समानता'' किस अनुच्छेद के अन्तर्गत प्रदान की गयी है?

(क) अनुच्छेद–14 (ख) अनुच्छेद–21

(ग) अनुच्छेद–39 (घ) अनुच्छेद–16

उत्तर –1. (घ), 2. (ख), 3. (घ)

20.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. राजनीतिक सिद्धान्त की रूपरेखा –ओम प्रकाश गाबा, मयूर पेपर बैक्स, नोयडा, 2001.
2. मानवाधिकार और महिलाएं –डॉ. निशान्त सिंह, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2008.
3. समसामयिक राजनीतिक सिद्धान्त – नरेश दाधीच, रावत पब्लिकेशन, जवाहर नगर, जयपुर, 2014.
4. मानवाधिकार जेन्डर एवं पर्यावरण –डॉ. तपन बिसवाल, विनोद वाशिष्ठ, वाइवा बुक्स प्राइवेट लिमिटेड, 2009
5. भारत की सामाजिक समस्याएं –सुनील कान्त भट्टाचार्या, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004.

इकाई–21

मानवधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

इकाई की संरचना

21.0 इकाई का उद्देश्य

21.1 भूमिका

21.2 परिभाषा

21.3 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं मानवाधिकार

21.4 मानव अधिकार के तीन चरण

21.4.0 नागरिक – राजनीतिक अधिकार

21.4.1 सामाजिक आर्थिक अधिकार

21.4.2 सामूहिक–विकासोन्मुख अधिकार

21.5 अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणापत्र, नियम पत्र तथा संगठन

21.5.0 मानव अधिकारों का सार्वभौम घोषणापत्र 1948

21.5.1 आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय नियम पत्र

21.5.2 नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय नियम पत्र

21.5.3 महिलाओं के विरूद्ध हर प्रकार के भेदभाव के अंत के अन्तर्राष्ट्रीय नियम पत्र

21.5.4 बाल अधिकारों के नियम पत्र

21.5.5 अन्य–क्षम व्यक्तियों के अधिकारों के नियमपत्र

21.6 मानव अधिकार चुनौतियाँ

21.7 उपसंहार

21.8 शब्दावली

21.9 प्रश्न

21.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

21.11 नोट

21.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में मानव अधिकार की स्थिति पर चर्चा की गयी है। इसका उद्देश्य है–

1. मानव अधिकार के विषय में विद्यार्थियों को अवगत कराना
2. मानवाधिकार के अर्थ, प्रकृति तथा विषय क्षेत्र पर प्रकाश डालना
3. मानव अधिकार के विकास के विभिन्न पर्यायों तथा मानव अधिकार के समक्ष विद्यमान चुनौतियों पर चर्चा करना।

21.1 भूमिका

'लोगों के मानवाधिकारों का हनन उनकी मानवता को चुनौती है'

(नेल्सन मंडेला)

मानव के रूप में क्या अधिकार हों और किस सीमा तक किसी रूप में उनकी प्रत्याभूति शासन की ओर से हो इस सम्बन्ध में मानव सभ्यता के प्रारंभ से ही विवाद चला आ रहा है। किसी व्यक्ति या समूह को उत्पीड़न मुक्त एवं यातनामुक्त जीवन–यापन का हक है। मानवाधिकार ऐसे ही सुसभ्य एवं सुसंस्कृत समाज की अवधारणा है। राजनीति विज्ञानी **हेरोल्ड लास्की (Harold Laski)** तो अधिकारों की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि ''अधिकार तो जीवन की वे परिस्थितियां हैं जिनके बिना कोई व्यक्ति अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता'', मानव जाति अपने अधिकारों के लिए हमेशा संघर्ष करती आई है। इसके उदाहरण इतिहास में स्पष्ट देखने को मिलते हैं, जैसे 1215 का मैग्नाकार्टा, 1676 का बंदीप्रत्यक्षीकरण अधिनियम, 1689 का बिल ऑफ राइट्स, 1776 का अमेरिका का स्वतंत्रता घोषणापत्र तथा 1789 की फ्रांसीसी मानवाधिकारों की घोषणा ने भी मानवाधिकारों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। सामान्यतः मानव के मौलिक अधिकारों में जीवन का अधिकार, जीविका का अधिकार, वैचारिक स्वतंत्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, स्वतंत्र रूप से धार्मिक विश्वास का अधिकार आदि पर चर्चा की जाती है।

मानवाधिकारों से तात्पर्य मनुष्य के उन अधिकारों से है जिसे वह अपने जन्म से ही प्राप्त करता है, और जो एक सामान्य जीवन जीने के लिए आवश्यक हैं। मानवाधिकार के विचार का उद्भव आधुनिक काल के उत्तरार्द्ध में प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांत से लिया जाता है। ऐसे सिद्धांतों का उद्भव राजनैतिक शक्ति प्राप्त मनुष्य के ऊपर कुछ सीमाएँ निर्धारित करने के लिए हुआ। हालाँकि अधिकार यदि राजनैतिक सत्ता के ऊपर नियंत्रक का कार्य करने लगे, तो वो 'विधि–पूर्व' कहे जायेंगे क्योंकि विधि का निर्माण राजनीतिक सत्ता द्वारा ही होता है। 17 वीं शताब्दी में **जॉन लाक (John Locke)** ने प्राकृतिक अधिकारों को तीन भागों में विभाजित किया। जीवन का अधिकार, स्वतंत्रता का अधिकार और संपत्ति का अधिकार। **थॉमस जेफरसेन (Thomas Jefferson)** ने इन्हें जीवन, स्वतंत्रता और खुशी का अनुसरण कहा। ऐसे अधिकारों को प्राकृतिक कहा गया क्योंकि यह माना गया कि ये अधिकार मानव को स्वाभाविक रूप से प्रकृति से प्राप्त है। प्राकृतिक अधिकार सिर्फ नैतिक दावों के रूप में ही विद्यमान नहीं हैं बल्कि यह माना जाता है कि ये मनुष्य की मूल आंतरिक प्रेरणा को परिलक्षित करते हैं।

ऐतिहासिक रूप में देखा जाए तो 1215 के मैग्नाकार्टा घोषणापत्र को मानवाधिकार विमर्श का प्रारंभ माना जा सकता है। जिससे इंग्लैड के शासन जॉन ने अपने विरूद्ध छिड़े एक आंदोलन के बाद लागू किया था। उसके पश्चात 1789 में फ्रांसीसी क्रांति के बाद इंग्लैंड के विद्वान **थॉमस पेन (Thomas Pain)** की कृति **राइट्स ऑफ मैन (Rights of**

Man) इस विमर्श को एक सकारात्मक दिशा में ले गयी। आधुनिक समय में मानव अधिकारों के विमर्श को प्रारम्भ करने का श्रेय अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति **फ्रेंक्लिन डेलानो रूजवेल्ट (Franklin Delane Roosevelt)** को जाता है। 1941 में कांग्रेस को सम्बोधित करते हुए रूजवेल्ट ने चार मूल स्वतंत्रताओं की घोषणा की थी जिनमें वाक् स्वतंत्रता, अर्चन पूजन की स्वतंत्रता, अभाव से स्वतंत्रता तथा भय से स्वतंत्रता सम्मिलित थे। इसके पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवाधिकार को वैश्विक स्तर पर व्यापक बनाने की चेष्टा की गयी। 1948 में संयुक्त राष्ट्र के ध्वज तले **मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा (Universal Declaration of Human Rights)** की गयी जिसके तहत मानव अधिकार को राष्ट्रीय सीमाओं के परे रखा गया। इसमें विश्वभर के सभी राष्ट्रों के लोगों को एक समान अधिकार देने की बात कही गयी है। 1966 में **नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों नियम पत्र (International Covenant on Civil and Political Rights)** इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। समकालीन युग में मानव अधिकार का विमर्श विभिन्न दिशाओं में विस्तृत हुआ है जैसे नागरिक अधिकार, राजनीतिक अधिकार, आर्थिक अधिकार, महिला अधिकार, बाल अधिकार, अल्पसंख्यक अधिकार इत्यादि।

21.2 परिभाषा

मानव अधिकार की कोई सर्वमान्य विश्वव्यापी परिभाषा नहीं है। अति मौलिक स्तर पर कहा जा सकता है कि यह उन अधिकारों की तरफ इशारा करते हैं जो मनुष्य को मनुष्य होने के नाते प्राप्त होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो एक सभ्य समाज में जीवनयापन करने हेतु मनुष्य को जिन सामान्य पूर्वशर्तों की आवश्यकता है उन्हें मानव अधिकार के रूप में देखा जाता है।

एंड्रू हेय्वूड (Andrew Heywood) के अनुसार ये वैश्विक अधिकार हैं, जो प्रत्येक देश के नागरिकों को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार से अनेक विद्वानों का मत है कि मानव अधिकारों को राष्ट्र की सीमाओं से बांधे हुए रखना उचित नहीं है।

संयुक्त राष्ट्र उच्चायुक्त कार्यालय (United Nations High Commission) के अनुसार मानव अधिकार से हम उन अधिकारों की तरफ इशारा करते हैं जो प्रत्येक मानव में अन्तर्निहित हैं। जिनका उसकी राष्ट्रीयता, उसके निवास, लिंग, नस्ल, रंग, धर्म और किसी अन्य ओहदे से कोई सम्बन्ध नहीं है। हम सभी बिना किसी भेदभाव के, सामान्य रूप से अपने मानवाधिकारों के हकदार है।

21.3 अन्तराष्ट्रीय राजनीति एवं मानवाधिकार

कुछ दशक पहले तक मानव अधिकार को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति या अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का विषय नहीं माना जाता था। इसका मुख्य कारण था मानवों का व्यक्तिओं के अधिकारों को राष्ट्रों का आंतरिक विषय माना जाना। साथ–साथ यह भी महत्वपूर्ण था कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध राष्ट्रों के बीच के संबंधों तथा राष्ट्र क्षेत्र से बाहर के विषयों को अध्ययन करता है। इस की मुख्य इकाई राष्ट्र को माना जाता था न कि उसके अभ्यंतर में निवास करने वाले व्यक्तियों को। पर द्वितीय विश्व युद्ध की विध्वंशकारी परिणामों के पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्वान, युद्धों को राष्ट्रों के अभ्यंतर में चल रहे विभिन्न क्रिया–कलापों तथा विचारों से जोड़ कर देखने लगे। इस प्रकार से जिम्बाब्वे में रोबर्ट मुगाबे एवं उत्तर कोरिया में द्वितीय किम जोंग जैसे तानाशाहों द्वारा अपने नागरिकों का दमन, अफगानिस्तान तथा गुंआतानामो खाड़ी में मुसलमानों पर हो रहे अत्याचार, चीन के तिआननमनचौक में छात्रों के शांतिपूर्ण आन्दोलन पर सरकार का गोला बारूद से हमला भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन के विषय में स्थान पाने लगा।

सैद्धांतिक रूप से देखा जाए तो मानव अधिकार का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के अध्ययन में प्रवेश एक क्रांतिकारी परिवर्तन से कम नही है। इसके कारण से पारंपरिक विश्लेषण के स्तर तथा विश्लेषण की इकाई में परिवर्तन देखने को मिलता है। समकालीन समय में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध राष्ट्रों के साथ साथ व्यक्ति, समूह तथा व्यक्ति से सम्बन्धित मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करता है।

व्यवहारिक तौर पर देखा जाए तो अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अन्तर्राष्ट्रीय घोषणापत्र, अन्तर्राष्ट्रीय नियम पत्र तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगठन राष्ट्रों के विभिन्न आन्तरिक तथा वाह्य व्यवहारों को प्रभावित करने लगे हैं। आज मानव अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र (International Bill of Human Rights) के द्वारा विश्व के विभिन्न राष्ट्रों पर संयुक्त राष्ट्र आधिकारिक रूप से विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा नागरिक अधिकारों को मान्यता देने का दवाब डाल रहा है। कोई भी राष्ट्र जो मानवाधिकार के घोषणापत्र या नियमपत्र का हस्ताक्षरकर्ता होने के बावजूद उनका उल्लंघन करता है, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उसे नकारात्मक अन्तर्राष्ट्रीय जनमत का सामना करना पड़ता है। उदाहरण स्वरूप, 1989 में चीन का तिआनानमेन नरसंहार जिसके तहत छात्रों की लोकतांत्रिक मांगों के शान्तिपूर्ण आन्दोलन को चीनी सरकार ने अति कठोर रूप से दमन किया था जिसके परिणामस्वरूप अनेक राष्ट्रों ने चीन से उच्च स्तरीय सम्बन्ध खत्म कर लिए। नकारात्मक अन्तर्राष्ट्रीय जनमत के कारण चीन को व्यापार में अत्यधिक क्षति उठानी पड़ी।

21.4 मानव अधिकार के तीन चरण

सन् 1979 में **चेक विहानकरेल वासक (Karel Vasak)** ने मानव अधिकारों को तीन युगों (three generations) में विभाजित किया। मानवाधिकार के इन तीन युगों या चरणों को हम फ्रांसीसी क्रांति के तीन सिद्धांतों स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के साथ पंक्तिबद्ध कर सकते हैं।

21.4.0 नागरिक–राजनीतिक अधिकार

सन् 1215 के माग्नाकार्टा से लेकर 1966 की नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय नियमपत्र तक मानवाधिकार रक्षण के विभिन्न उद्यमों को प्रथम चरण माना जाता है। इस समय मानव अधिकारों की प्रकृति सीमित थी। इन्हें केवल व्यक्ति की स्वतंत्रता और राजनीतिक कार्यों में उसकी प्रतिभागिता से सम्बंधित किया जाता था। यह अधिकार पूर्ण रूपेण व्यक्तिवादी और नकारात्मक हैं जिनका निर्माण व्यक्ति को राज्य से सुरक्षित करने के लिए हुआ है। इसके अंतर्गत धार्मिक, वैचारिक और विवेचन की स्वतंत्रता, सभा करने की स्वतंत्रता स्वैच्छिक संगठन निर्माण की स्वतंत्रता और समाज में राजनीतिक भागीदारी की स्वतंत्रता प्रमुख हैं। इन्हें नील अधिकार (Blue Rights) के रूप से जाना जाता है।

21.4.1 सामजिक आर्थिक अधिकार

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात मानव अधिकारों का दायरा मनुष्य की सामान्य आवश्यकताओं की ओर बढ़ाया गया। अब मानव अधिकारों को केवल नागरिक तथा राजनीतिक ही नहीं बल्कि सामाजिक तथा आर्थिक मापदंडों के अनुसार भी परिभाषित किया जाने लगा। इस युग में मानव अधिकारों को एक सकारात्मक रूप दिया गया जिसके तहत राज्य तथा सरकार को मनुष्य के व्यक्तित्व को परिपूर्ण बनाने में सहायक माना गया। नागरिक–राजनीतिक अधिकारों की भाँति ये भी मानव अधिकारों के वैश्विक घोषणापत्र में

अनुच्छेद 22 से 28 तक उद्धत हैं। सन् 1976 से क्रियान्वित हुआ। **आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों का अन्तर्राष्ट्रीय घोषणापत्र (International covenant no Economic Social and Cultural Rights)** इस दिशा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। इसके अंतर्गत आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य, आहार, काम, वाजिब मेहनताना, उचित जीवन स्तर इत्यादि अधिकार समाहित हैं इन्हें लाल अधिकार (Red Rights) के रूप से जाना जाता है।

21.4.2 साम्हिक–विकासोन्मुख अधिकार

1972 के स्टाकहोम घोषणापत्र (Stockholm Declaration) तथा 1992 के रिओ घोषणापत्र (Rio Declaration) के माध्यम से मानव अधिकार का विमर्श व्यक्ति अधिकार की सीमाओं को लाँघ कर अन्य दिशाओं में विस्तृत होने लगा है। अब मानव अधिकार के तहत वो अधिकार शामिल हो रहे हैं जो समूह तथा मानव समाज से संबंधित हैं । इन अधिकारों के तहत सामूहिक तथा गण अधिकार, आत्म–निर्धारण का अधिकार, आर्थिक तथा सामाजिक विकास का अधिकार, एक स्वस्थ परिवेश का अधिकार, प्राकृतिक संसाधनों का अधिकार, संचार सम्बन्धित अधिकार, सांस्कृतिक विरासत में भाग लेने का अधिकार, अर्न्तपीढ़ीन्याय तथा वहनीयता का अधिकार इत्यादि अधिकार समाहित हैं। इन्हें **हरित अधिकार (Green Rights)** के रूप में जाना जाता है।

21.5 अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार घोषणापत्र, नियम पत्र तथा संगठन

इकाई के इस भाग में अधिकार के कुछ विशेष घोषणापत्र, नियमपत्र तथा सगठनों के सम्बन्ध में जानकारी दी गयी है।

21.5.0 मानव अधिकारों का सार्वभौम घोषणापत्र 1948

संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 1948 में मानवाधिकारों के सार्वभौम घोषणापत्र (UDHR) को राष्ट्रों के समक्ष प्रस्तुत किया। संयुक्त राष्ट्र का यह घोषणापत्र मानव समुदाय के सभी सदस्यों के लिए अन्तर्निहित गरिमा की बात करता है। द्वितीय विश्व युद्ध की महाविभीषिका को देखते हुए विश्व के प्रमुख राष्ट्र प्रमुखों ने विश्व को एक शांतिपूर्ण एवं सभ्य समाज की दिशा में ले जाने हेतु यह प्रयास किया था। राष्ट्र मुखियाओं की इस सोच को अटलांटिक चार्टर (1941) तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ घोषणा (1942) से प्ररेणा मिली। इसके प्रथम अनुच्छेद के अनुसार सभी मनुष्य जन्म से स्वतंत्र हैं तथा अधिकार और मर्यादा में समान हैं।

21.5.1 आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय नियम पत्र

यह नियमपत्र 1966 में संयुक्त राष्ट्र महासभा के द्वारा प्रस्तुत किया गया। 1976 में इस नियम पत्र को संयुक्त राष्ट्र द्वारा संगृहीत गृहीत किया गया। यह नियम पत्र श्रमिकों के अधिकार, स्वास्थ्य के अधिकार इत्यादि अधिकारों के सम्बन्ध में है।

21.5.2 नागरिक तथा राजनीतिक अधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय नियम पत्र

यह नियम पत्र 1966 में संयुक्त राष्ट्र के महासभा द्वारा प्रस्तुत किया गया तथा 1976 से यह क्रियान्वित हुआ। यह जीवन जीने के अधिकार, धर्म के अधिकार, अभिव्यक्ति के अधिकार तथा मौलिक राजनीतिक अधिकारों से सम्बन्धित है।

21.5.3 महिलाओं के विरूद्ध हर प्रकार के भेदभाव को अंत के अन्तर्राष्ट्रीय नियम पत्र

यह नियमपत्र 1979 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा गृहीत किया गया। 1981 में यह नियमपत्र लागू किया गया। यह संयुक्त राष्ट्र संघ के विभिन्न राष्ट्रों को लिंग समानता के लिए कानून निर्माण करने के लिए बाध्य करता है।

21.5.4 बाल अधिकारों के नियम पत्र

1990 से यह नियमपत्र कार्यकारी हुआ। इसके द्वारा 18 वर्ष से कम आयु के नागरिकों के मानव अधिकारों के संरक्षण का दायित्व राष्ट्रों को सौंपा गया है।

21.5.5 अन्य–क्षम व्यक्तियों के अधिकारों के नियमपत्र

2008 में यह नियमपत्र कार्यकारी हुआ। इसके द्वारा अन्य –क्षम व्यक्तियों के मानव अधिकार के संरक्षण का दायित्व राष्ट्रों को सौपा गया है।

21.5.6 मानव अधिकार संबंधी संयुक्त राश्ट्र आयोग

मानव अधिकारों संबंधी संयुक्त राष्ट्र आयोग (यू.एन.सी.एच.आर.) संयुक्त राष्ट्र के प्रावधानों की रूपरेखा के अंतर्गत एक कार्यकारी आयोग है। यह संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक एवं सामाजिक परिषद की एक सहायक इकाई है। संयुक्त राष्ट्र उच्च आयुक्त कार्यालय, मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए इस आयोग को समय–समय पर सहायता प्रदान करती है। अतः यह मानवाधिकारों के मूल्य तथा प्रयोग के संरक्षण के लिए संयुक्त राष्ट्र का प्रधान उपकरण तथा अन्तर्राष्ट्रीय मंच है।

21.5.7 मानव अधिकार के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन

मानव अधिकार के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है जिसकी स्थापना 1961 में हुई। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर चिन्हित मानव अधिकारों का प्रचार करना इस संगठन का मुख्य लक्ष्य माना जाता है। **ह्यूमन राइट्स वाच** भी एक अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार संगठन है जिसकी स्थापना 1978 में हुई थी। 1970 के दशक से मानव अधिकारों को राष्ट्रों के बीच चल रहे कुटनीतिक सम्बन्धों का एक अभिन्न अंग बना दिया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारिक तथा वित्तीय सहायता के लिए अमेरिका जैसे राष्ट्र मानव अधिकार पालन को एक आवश्यक शर्त के रूप में रखते हैं। अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति जिमी कार्टर मानव अधिकार को लेकर एक अत्यंत जागरूक व्यक्तित्व माने जाते थे। यूरोपीय युनियन के सभी सदस्यों के लिए मानव अधिकारों का पालन एक महत्वपूर्ण शर्त के रूप में रखा गया है। इन राष्ट्रों के लिए मानव अधिकार का पालन केवल अधिकारों के संरक्षण में ही नहीं बल्कि उनके उल्लंघन नहीं होने देने के रूप में भी देखा जाता है।

21.6 मानव अधिकार के लिए चुनौतियाँ

समकालीन युग में मानव अधिकार पालन करने में कई चुनौतियाँ आती हैं।

(क) **राष्ट्र क संप्रभुता के साथ समझौताः** मानव अधिकारों का हनन राष्ट्रों की सीमा के अधीन होता है। कई बार राष्ट्र अपने सीमाओं में किसी भी तरह के अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप को संप्रभुता के ऊपर आघात के रूप में देखते हैं।

(ख) **बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँः** आज विश्व में ऐसी अनेक बहु–राष्ट्रीय कंपनियाँ हैं जो अपने धन के वर्चस्व के कारण मानव अधिकार की आवाजों को दबाने में सफल हो रही हैं। मानव अधिकार की पैरवी करने वाले संगठनों के लिए यह एक महत्वपूर्ण चुनौती के रूप में उभर रही है।

(ग) **अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिः** मानव अधिकार का मुद्दा आज के समय में विकसित सशक्त राष्ट्रों के हाथ में एक शस्त्र बन गया है। इस के माध्यम से यह राष्ट्र अनेक समय पर विकासशील तथा क्षुद्र राष्ट्रों के ऊपर दबाव डाल कर अपनी बात मनवाने की कोशिश करते हैं।

(घ) **अन्तर्राष्टोय आतंकवादः** आज के युग में बोको हरम तथा आई.एस.आई.एस. जैसे आतंकवादी संगठन भी मानव अधिकारों के समक्ष एक महत्वपूर्ण चुनौती बन कर उभर रहे हैं।

21.7 उपसंहार

मानव अधिकारों के संरक्षण के बिना लोकतंत्र अर्थहीन है परन्तु मानव अधिकार को कोई सरल संकल्पना के रूप में देखा नहीं जा सकता है। विशेषतः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जहां राष्ट्र समान स्तर पर एक दूसरे के समकक्ष नहीं हैं। अधिकतम समय पर मानव अधिकार संयुक्त राष्ट्रों के वर्चस्व को जाहिर करने में इस्तेमाल होते हुए मिलते हैं।

21.8 शब्दावली

मानव अधिकारः एक सभ्य समाज में जीवनयापन करने हेतु मनुष्य को जिन सामान्य पूर्वशर्तों की आवश्यकता है उन्हें मानव अधिकार के रूप में देखा जाता है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँः एक ऐसी कंपनी जिसकी इकाई एक राष्ट्र तक सीमित न होकर विभिन्न राष्ट्रों में कार्य कर रही हों, जैसे मैकडोनाल्ड फूड चेन।

आम्नेस्टी इंटरनेशनलः विश्व भर में मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए कार्यरत एक ख्याति प्राप्त संस्था जिसकी स्थापना 1961 में हुई।

21.9 सन्दर्भ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के एक शब्द या एक वाक्य में उत्तर दें।

1. ''अधिकार तो जीवन की वे परिस्थितियाँ हैं जिनके बिना कोई व्यक्ति अपना पूर्ण विकास नहीं कर सकता'' उपरोक्त कथन किसका है?

.....

.....

2. मानवाधिकार दिवस कब मनाया जाता है?

.....

.....

3. मानवाधिकारों के लिए कार्यरत किन्हीं दो अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के नाम लिखिए?

.....

.....

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मानवाधिकारों से आप क्या समझते हैं, परिभाषित कीजिये?

.....

.....

2. वर्तमान समय में मानवाधिकारों के समक्ष आ रही चुनौतियों पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए?

.....

.....

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का विस्तार में उत्तर दें–

1. करेल वासक के द्वारा मानवाधिकारों को किन श्रेणियों में विभाजित किया गया है? चर्चा करें।

.....

.....

2. मानव अधिकार के विशेष घोषणापत्र, नियमपत्र तथा संगठनों के बारे में एक लेख लिखें।

.....

.....

21.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

- एन. स्टामर्स, ह्यूमन राइट्स एण्ड सोसिअल मूवमेंट्स, प्लियुटो, 2009
- आर0जे0 विन्सेंट, ह्यूमन राइट्स एण्ड इन्टरनेशनल रिलेशंस, प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू जर्सी 1986
- ए. लिंक्लेटर, मेन एण्ड सिटिजेन्स इन द थिओरी ऑफ इन्टरनेशनल रिलेशंस, माकमिलान, लंदन, 1990
- जे. बेलिस, एस. स्मिथ, पी ओएन्स, ग्लोबलैजेसन आफ वर्ल्ड पालिटिक्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2011
- टी0 डन. जे. व्हीलर, ह्यूमन राइट्स इन ग्लोबल पालिटिक्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी कैम्ब्रिज, 1999

21.11 नोट

.....

.....

इकाई-22

अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद

इकाई की संरचना

22.0 इकाई का उद्देश्य

22.1 भूमिका

22.2 परिभाषा

22.3 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

22.3.1 प्रथम चरण : सिद्धान्त या विचारधारा का निर्माण

22.3.2 द्वितीय चरण : एक सफल, नयी आवाज़

22.3.3 तीसरा चरण : अति अन्तर्राष्ट्रीयवाद

22.3.4 चतुर्थ चरण : धार्मिक चरण

22.4 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की प्रकृति

22.5 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के कारण

22.5.1 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

22.5.2 वैचारिक दृष्टिकोण

22.5.3 सामरिक दृष्टिकोण

22.6 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के उद्देश्य

22.7 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादी संगठन

22.8 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की रोकथाम के लिए विश्व के देशों के बीच संधियाँ

22.9 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की रोकथाम के उपाय

22.10 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की रोकथाम के लिए विभिन्न देशों में गठित संस्थायें

22.11 उपसंहार

22.12 शब्दावली

22.13 सन्दर्भ प्रश्न

22.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

22.15 नोट

22.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत आतंकवाद की चर्चा अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में की गई है। इसका उद्देश्य है

(1) आतंकवाद का अर्थ, उसकी प्रकृति तथा उसके विषयों पर प्रकाश डालना।

(2) आतंकवाद के विकास के विभिन्न पर्याय तथा उसके उन्मूलन के उपायों के विषय में जानकारी देना।

(3) आतंकवाद का अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों एवं राजनीति पर होने वाले प्रभावों से अवगत करना।

22.1 भूमिका

आज आतंकवाद से संपूर्ण विश्व त्रस्त है। आतंकवाद से तात्पर्य सामान्यतः उन गतिविधियों से लिया जाता है, जो आतंक पर आधारित हैं। इसके विभिन्न रूप हो सकते हैं जैसे - बम विस्फोट, धमकी, अपहरण या रासायनिक हथियारों का प्रयोग इत्यादि। एक विचारधारा के रूप में आतंकवाद एक ऐसी विचारधारा है जो अपनी स्वार्थ सिद्धि और राजनैतिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हिंसा, हर प्रकार की शक्ति तथा अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग में विश्वास रखती है। हिंसा के माध्यम से आतंकी अपनी सभी प्रकार की मांग एवं विचार को मनवाने, अपने लक्ष्यों को हासिल करने तथा किसी राजनैतिक व्यवस्था को ध्वस्त करने व उस पर अपना कब्जा या प्रभुत्व जमाने की चेष्टा करते हैं।

22.2 परिभाषा

आतंकवाद जिसका अंग्रेजी रूपांतरण ''टेररिज्म'' है, लैटिन भाषा के दो शब्द ''तेर्रेर'' (terrere) और ''देतेर्रे'' (deterre) से निष्पन्न है जिसका अर्थ डराने या धमकाने के लिए किये गये किसी कार्य के लिए उपयोग होता है।

चूँकि इसकी प्रकृति निश्चित नहीं है इसलिए आतंकवाद की सार्वभौमिक, सर्वसम्मत परिभाषा देना एक जटिल कार्य है। अमेरिकी राष्ट्रपति रीगन (Ronald Regan) के अनुसार ''आतंकवाद एक बर्बर कार्यवाही है जो भय की राजनीति करता है। आतंकवाद का समर्थन करने वाले लोग वहषी लोग है''। भारतीय विद्वान राम आहूजा (Ram Ahuja) के शब्दों में ''आतंकवाद हिंसा या हिंसा की धमकी के उपयोग द्वारा लक्ष्य-प्राप्ति के लिए संघर्ष या लड़ाई की एक विधि या

रणनीति है एवं अपने शिकार में भय पैदा करना इसका मुख्य उद्देश्य है। यह क्रूर व्यवहार है जो मानवीय प्रतिमानों का पालन नहीं करता''। ब्रायन जेनकिंसा (Bryon Jenkins) के मत में ''हिंसा की धमकी, व्यक्तिगत हिंसात्मक कृत्य और लोगों को आतंकित करने के उद्देश्य से हिंसा का विचार आतंकवाद है''। अमेरिकी रक्षा विभाग (US Department of Defence) के अनुसार ''अपने राजनैतिक, धार्मिक, और वैचारिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु हिंसा का उपयोग या हिंसा का भय दिखाना ताकि सरकार और समाज के भीतर डर का भाव पैदा किया जा सके, आतंकवाद है''। एफ.बी.आई. (F.B.I.) के अनुसार ''जनता या सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुँचाने के लिए बल या हिंसा का अवैध प्रयोग ताकि अपने राजनैतिक और सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु राज्य सत्ता को डराया या बाध्य किया जा सके आतंकवाद है'।

22.3 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति

सितम्बर 2001, आतंकवादी इतिहास के पृष्ठ का सबसे विध्वंसकारी दिन के नाम से जाना जाता है घटना की भीषणता का अंदाज इस बात से ही लगाया जा सकता है कि दिन दहाड़े कई हजार निर्दोशों की निर्मय हत्या कर दी गयी, आर्थिक क्षति और लोगों का भय तो गणना से परे था। तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश ने आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करते हुए कहा कि यह युद्ध तब तक चलेगा जब तक प्रत्येक आतंकवादी या संगठन जिसकी वैश्विक पहुँच है, उसे परास्त या समाप्त नहीं कर दिया जाता। हालाँकि यदि देखा जाये तो राष्ट्रपति बुश की यह घोषणा अनोखी नहीं है। 100 वर्ष पूर्व सितम्बर 11 के दिन ही किसी अराजक तत्व द्वारा राष्ट्रपति विलियम मैकिनले की हत्या के पश्चात उनके उत्तराधिकारी थिओडोर रूजवेल्ट ने भी आतंकवाद का समूल नाश करने के लिए एक विश्वव्यापी जंग का ऐलान किया था।

अमेरिकी विद्धान डेविड राप्पोर्ट (David Rappaport) ने आधुनिक आतंकवाद के चार चरण बताये हैं।

22.3.1 प्रथम चरण : सिद्धांत या विचारधारा का निर्माण

आधुनिक विश्व के आतंकवादियों को विरासत में एक ऐसा समाज मिला जिसमें क्रांतिकारियों की पारम्परिक कार्यशैली जैसे पैम्फलेट (पुस्तिका) या पर्चे बाँटना एकाएक पुराने या अप्रचलित से हो गये थे, एक नए संवाद के तरीके की आवश्यकता महसूस होने लगी थी, मीटर क्रोपोत्किन के शब्दों में कहें तो ए ''कार्य की वाचालता'' (प्रोपेगंडा बाय डीड) जरूरी होने लगी थी, एक ऐसा तरीका जो समाज में अपनी छाप भी छोड़े और कर्त्ता को इज्जत भी प्रदान करे क्योंकि विद्रोही या बागी कार्य में गहरी वचनबद्धता की जरूरत होती है और उसमें गहरे व्यक्तिगत जोखिम भी उठाने पड़ सकते हैं। प्रथम चरण को अराजकतावादी चरण भी कहा जाता है। ये आतंक के तरीके से परम्पराओं को ध्वस्त करने हेतु सबसे उपयोगी मानते हैं। ये सत्ता या राज्य को अपने बनाये गए नियमों के अनुसार कार्य करने पर विवश करना चाहते हैं। इनका मानना है कि इस प्रकार से समाज केन्द्रित हों जायेगा और जिससे क्रांति का मार्ग खुल जायेगा, और क्रांति संभव हो सकेगी। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकी गतिविधियों का चरमोत्कर्ष 1810 का दशक माना जा सकता है जिसे ''हत्याओं का स्वर्णिम युग'' भी कहा जाता है, क्योंकि इस दौर में अनेक राजाओं, राष्ट्रपतियों और प्रधानमंत्रियों की हत्या करके आतंकी आसानी से अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं को लांघ कर खुले विचरण करते थे। उस दौर की सबसे प्रभावित सरकारों ने आतंकवाद से

निपटने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पुलिस सहयोग व सीमा नियंत्रण की मांग की। समय को उपयुक्त समझते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति रुजवैल्ट ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद के समाप्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का आवाहन किया, परन्तु यह मंशा ज्यादा समय तक कामयाब न हो सकी और ऑस्ट्रियाई राष्ट्रनेता फर्डीनांड की हत्या ने प्रथम विश्व युद्ध को जन्म दिया।

22.3.2 द्वितीय चरण : एक सफल, नयी आवाज़

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के उपरान्त हुई ब्रूसेल्स की संधि से दूसरे चरण की शुरुआत मानी जाती है। इस काल में प्रथम विश्व युद्ध में विजयी घटक राष्ट्रों द्वारा राष्ट्रीय स्वाभिमान के सिद्धांत का पालन करते हुए यूरोप भूभाग में साम्राज्यों को तोड़ने का कार्य प्रारंभ हुआ और उन्हें राष्ट्र संघ के अन्तर्गत लाने का प्रयास किया गया। परन्तु आतंक को रोकने की कोशिश द्वितीय विश्व युद्ध के आरंभ के साथ ही समाप्त हो गयी। आतंकवादियों को ज्यादातर कामायबी वर्साये संधि के लगभग 25 वर्षों बाद मिली। नए राज्यों जैसे इस्राइल, आयरलैंड, सायप्रस और अल्जीरिया के गठन में भी इसकी निर्णायक भूमिका रही। इस चरण में आतंकियों की कार्य पद्धति में परिवर्तन भी देखने को मिलता है। जहां पहले चरण में आतंकी राष्ट्राध्यक्षों की हत्याओं पर ध्यान केन्द्रित करते थे, इस चरण में यह थोड़ा और जटिल हो जाता है। इस चरण में राज्य सरकार की आँख-कान अर्थात् पुलिस को निशाना बनाया गया। पुलिसकर्मियों या उनके परिवार पर वार होने लगे और उन्हें मारा जाने लगा। आतंकवादी गुरिल्ला युद्ध तकनीक का भी प्रयोग करने लगे।

22.3.3 तीसरा चरण : अति-अन्तर्राष्ट्रीयवाद

तीसरे चरण का आरंभ वियतनाम युद्ध से है, वियतनाम युद्ध में पारंपरिक हथियारों के सम्मुख अति-आधुनिक अमेरिकी हाथियारों के समर्पण ने क्रान्तिकारी चिंतन में एक उम्मीद जगाने का कार्य किया कि यह आधुनिक व्यवस्था अभेद्य नहीं है, इस पर वार किया जा सकता है। कई पश्चिमी देशों में स्थित समूहों जैसे पश्चिम जर्मनी का रेड आर्मी समूह, इतालवी रेड ब्रिगेड, जापानी रेड आर्मी और फ्रेंच एक्शन दिरेक्टे ने स्वयं को तृतीय विश्व के लोगों का अग्रणी समझा। सोवियत संघ ने भी इनकी ट्रेनिंग तथा शस्त्रों के लिए खुला सहयोग प्रदान किया।

22.3.4 चतुर्थ चरण : धार्मिक चरण

धार्मिक तत्वों का आधुनिक आतंकवाद के प्रसार में एक महत्वपूर्ण योगदान रहा है, क्योंकि धार्मिक और नृजातीय अस्मिताएं एक-दूसरे को ढकने का काम करती हैं। आर्मेनिया, आयरलैंड, साईप्रस, फ्रांस, कनाडा, इजराइल और फलिस्तीनी संघर्ष इसे प्रमाणित करते हैं, हालाकि उपरोक्त सभी में इनका मकसद एक धर्मनिरपेक्ष राज्य का गठन था। परन्तु आज धर्म का एक दूसरा महत्व है, जो राज्य के कार्यान्वयन के सिद्धांत प्रस्तुत करता है। इस धार्मिक धारा ने अनेक विवादों को भी जन्म दिया है। श्रीलंका में बौद्धों द्वारा देश के रूपांतरण का प्रयास किया गया जिसने तमिलों को संगठित होकर एक संगठन बनाने के लिए मजबूर किया जिसके परिणाम स्वरूप लिट्टे (LTTE) अस्तित्व में आया, जिसकी मांग एक धर्मनिरपेक्ष राज्य गठन की थी। इस धार्मिक टकराव ने पूरे श्रीलंका को कई दशकों तक हिंसा की आग में झुलसाये हुए रखा। समकालीन युग में इस धारा के केन्द्र में इस्लाम धर्म है। इस्लामी संगठनों ने विगत दशकों में पूरे

विश्व में कई आतंकी हमले किये हैं। तालिबान, अल-काएदा, जैस-ए-मुहम्मद, इंडियन मुजाहिद्दीन तथा आई.एस.आई.एस. (ISIS) आदि इस्लामिक संगठन पूरे विश्व में कोहराम मचाये हुए हैं।

22.4 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की प्रकृति

1. सर्वप्रथम, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद एक सामूहिक क्रिया है न कि व्यक्तिगत। जैसा कि हम सब जानते हैं कि आतंकवाद में हिसा संलग्न है। परन्तु यहाँ हिंसा का मतलब व्यक्तिगत हिंसा जो कि एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से होती है, उस से अलग है। अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद या तो किसी एक निर्दिष्ट राष्ट्र के या किसी सांस्कृतिक, धार्मिक संप्रदाय का असंतुष्ट समूह होते हैं। जैसे कि अल काएदा या आई.एस.आई.एस. का विरोध पूरे गैर इस्लामिक समाज तथा राज्यों से है।

2. आतंकवाद मूलत; राजनैतिक होता है। प्रत्येक आतंकवादी संगठन या समूह का उद्देश्य, लक्ष्य, विचार एवं उनको प्राप्त करने का साधन निश्चित एवं स्पष्ट होता है। सामान्यतः आतंकवादी संगठन, चाहे वे राष्ट्रीय हों या अन्तर्राष्ट्रीय हों, अपने सिद्धांत, विचार तथा लक्ष्यों को श्रेष्ठ मानते हैं। वे सम्पूर्ण रूप से अपने विचारों के लिए समर्पित होते हैं। इनके समूह के प्रत्येक व्यक्ति को विचारों के विषय में प्रशिक्षण दिया जाता है।

3. अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद किसी विशेष राष्ट्र के परिधि तक सीमित नहीं है वरन् अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने विचारों और उद्देश्यों को सिद्ध करने की कोशिश करता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैला दिया है। आतंकवादी राज्य की औपचारिक सत्ता का व्यवहार करने के विरुद्ध होते हैं।

4. 1970 के दशक के बाद हुए तकनीकी विकास भी अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के बढ़ावा में सहायक हुआ है। वैज्ञानिक तकनीक जैसे इन्टरनेट के प्रयोग द्वारा आतंकवाद आदि हिंसात्मक साधनों का उपयोग कर लोगों के जान-माल को क्षति पहुंचा रहे हैं।

5. आतंकवाद मानव समाज तथा राष्ट्र के विरूद्ध होता है। सामान्य रूप से अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद या तो किसी एक निर्दिष्ट राष्ट्र के या किसी सांस्कृतिक, धार्मिक संप्रदाय का असंतुष्ट समूह होते हैं जो भय तथा हिंसा के माध्यम से अपनी बात मनवाना चाहते हैं। निश्चित रूप से अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद का उद्देश्य राजनैतिक होता है। पर आंतकवादी संगठन की औपचारिक सत्ता का व्यवहार करने के विरूद्ध होते हैं।

22.5 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के कारण

आतंकवाद के विभिन्न कारण सामने आते हैं। ऐसा कोई एक निश्चित कारण नहीं बतलाया जा सकता जिसके आधार पर हम ये अनुमान लगा सके कि इसकी उपस्थिति आतंकवाद को प्रोत्साहन देती है। विद्धानों ने आतंकवाद के कारणों को मनोवैज्ञानिक, वैचारिक और सामरिक रूपों में विभाजित किया है।

22.5.1 मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

आतंकवाद में लिप्त रहने वाले या सीधा सम्बन्ध उस व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक अवस्था से है। सत्ता प्राप्ति की इच्छा और वैमनस्य का भाव इसे प्रोत्साहित करने का कार्य करते हैं।

उदाहरण के लिए, 1893 में ऐंगस्टीन वलिएन्त ने फ्रांसीसी प्रतिनिधियों के कक्ष में बम गिराया। अपने इस कृत्य के पीछे की वजह उसने मध्यम वर्ग के प्रति घृणा बताई। असल में वलिएन्त आर्थिक और सामाजिक सफलता को हिंसा के प्रयोग द्वारा बर्बाद करना चाह रहा था। इसका लक्ष्य कोई वैचारिक या सामरिक न होकर सिर्फ अपने कार्य के लिए लोगों का ध्यान आकर्षण करना था।

22.5.2 वैचारिक दृष्टिकोण

विचारधारा से तात्पर्य निश्चित मूल्यों और सिद्धांतों से है जिसके माध्यम से कोई समूह अपने निश्चित लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यरत रहता है। विचारधारा स्वयं में धर्म और राजनैतिक दर्शन और कार्यक्रमों को समाहित करती हैं। आयरिश रिपब्लिकन आर्मी, लिट्टे बदर मेहोफ्फ विचारधारा से प्रोत्साहित आतंकवादी समूह हैं, आयरिश रिपब्लिकन आर्मी का मुख्य एजेंडा आयरलैंड को ब्रिटिश शासन से मुक्ति और समूचे आयरलैंड की एकता स्थापित करना है। इस राजनैतिक दर्शन से प्रेरित आयरिश रिपब्लिकन आर्मी लम्बे समय से संघर्षरत है। उसी तरह श्रीलंका में तमिल मूल के लोगों हेतु एक अलग प्रदेश के निर्माण के लिए लिट्टे संघर्ष में लिप्त हैं। बदर मेंहोफ्फ एक आतंकवादी समूह है जिसका निर्माण मध्यम वर्ग के उन लोगों ने किया है जो पूँजीवाद के खिलाफ हैं और जिसका उद्देश्य जर्मनी में पूंजीवादी ढांचे को खत्म करना है।

आतंकवाद को राजनीतिक तंत्र की विफलता के तार्किक विस्तार के रूप में देखा जाता है। जब कभी जनता की परेशानियों को सरकार तवज्जो नहीं देती और लोगों की अभिलाषाओं को जबरन कुचलने के लिए आतुर रहती है तो लोग आतंक का सहारा लेने के लिए कदम बढ़ाते हैं। इस पक्ष से आतंकवाद एक समूह के लक्ष्यों और उद्देश्यों के तार्किक विश्लेषण और जीत की आश्वस्ति का परिणाम है। यदि जीत, विरोध के पारंपरिक साधनों से संभव न हो तो आतंकवाद एक बेहतर विकल्प हो सकता है। उदाहरण के लिए दक्षिण अफ्रीका में अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस द्वारा आतंकवाद का प्रयोग सभी राजनैतिक विकल्पों की विफलता के बाद किया। हालांकि सिर्फ एक व्यक्ति ही स्वयं को राजनैतिक प्रक्रिया द्वारा ठगा हुआ महसूस नहीं करता बल्कि राज्य भी अपने सामरिक हितों की पूर्ति के लिए आतंकवाद का सहारा लेते हैं। उदाहरण के लिए 1988 में लीबिया ने अमेरिका और इंग्लैड द्वारा इसके राज्य क्षेत्र में की जा रही बमबारी के विरोध में लंदन से न्यूयॉर्क पैन ऍम 103 विमान में विस्फोट करने के लिए आतंकवादियों का सहारा लिया।

22.6 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद के उद्देश्य

आतंकवादियों का मुख्य उद्देश्य लोगों के बीच दहशत पैदा करना है ताकि उनकी मांगों को स्वीकार्यता मिल सके। आतंकवाद कोई प्रत्यक्ष, नियमित या केन्द्रीयकृत शैली नहीं है, इसका स्वरूप बदलता रहा है। आतंकवादी राज्य के विरुद्ध अपने मानदंड तथा शैली बदलते रहे हैं। उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ये हिंसा का इस्तेमाल करने से भी नहीं चूकते। इसके अतिरिक्त उनकी कुछ और भी मांगें हो सकती हैं, जैसे -

1. अपने संगठन का अधिकाधिक प्रचार जिससे उनके संगठन को मान्यता मिल सके और जनसमर्थन हासिल हो सके।

2. एक छापामार, गुर्रिल्ला युद्ध के जरिये किसी राष्ट्र को कमजोर करना।

3. फिरौती की मांग को लेकर, मनुष्यों को बंधक बनाना, लूटपाट करना, सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुँचाना।

4. किसी देश की सुरक्षा, शांति व अखंडता के लिए हर समय खतरा उत्पन्न करने का प्रयास करना ताकि देश में भय व असुरक्षा का वातावरण बना रहे।

5. किसी देश की अलगाववादी शक्तियों को प्रोत्साहित करना ताकि देश में अस्थिरता की स्थिति बनी रहे।

6. किसी राज्य की मुक्ति के लिए संघर्ष करना।

7. अघोषित युद्ध के जरिये सरकार से असंतुष्ट युवाओं की भावनाओं को भड़काकर उन्हें चोरी छिपे गुमराह करना, और देश विरोधी कार्यों में लिप्त करना।

8. अपने छुद्र स्वार्थों की पूर्ति के लिए धर्म का दुरुपयोग करना, व धर्म की आड़ में आतंकी गतिविधियों को अंजाम देना, इस प्रकार ये इसे एक धार्मिक युद्ध जिहाद बना डालते हैं, और लोगों को इसमें प्रतिभाग करने के लिए उकसाते रहते हैं।

22.7 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादी संगठन

विश्व में सक्रिय कुछ आतंकवादी संगठनों के नाम निम्नलिखित हैं। ये संगठन कई स्थानों में सक्रिय हैं और आतंक का प्रसार करते हैं।

1. **अल-कायदा**- विश्व का सबसे खतरनाक आतंकवादी समूह जिसकी शुरूआत ओसामा बिन लादेन ने की तथा जिसे सितम्बर 9/11 की घटना का जिम्मेदार माना जाता है।

2. **अल-बद्र**- जम्मू कश्मीर में सक्रिय यह एक इस्लामिक आतंकवादी गुट है जिसे आई.एस.आई के साथ संलिप्त होने और जम्मू कश्मीर में हिंसा भड़काने का जिम्मेदार माना जाता रहा है।

3. **बोको हरम**- उत्तर पूर्वी नाइजीरिया में सक्रिय एक इस्लामिक आतंकवादी समूह। सामूहिक नरसंहार में लिप्त।

4. **हमास**- मध्य पूर्व में स्थित एक लडाकू समूह जिसकी उत्पत्ति पलेस्टाइन आन्दोलन को तेजी देने और उसे स्वतंत्र करने के लिए हुई थी।

5. **हरकत-उल-मुजाहिद्दीन**- पाकिस्तान में स्थित एक आतंकवादी गुट जो कश्मीर में सक्रिय है।

6. **इंडियन मुजाहिद्दीन**- पाकिस्तान में स्थित आतंकवादी संगठन लअश्करे-तोइबा का प्रमुख अंग जो भारत विरोधी गतिविधियों में सक्रिय रहता है। अहमदाबाद बम धमाकों (2008) और मुम्बई आतंकवादी हमलों के लिए जिम्मेदार।

7. **जैश-ऐ-मुहम्मदा**- कश्मीर में सक्रिय एक आतंकवादी संगठन, इसका मुख्य लक्ष्य कश्मीर को भारत से अलग करना है।

8. **अल-नुसरा**- सीरिया और लेबनान में सक्रिय अल-कायदा का एक संगठन।

9. **तंजीम लड़ाका दल**- सन् 1995 में यासेर अराफात द्वारा निर्मित एक समूह जिसका मुख्य उद्देश्य फलिस्तीनी इस्लामीकरण को रोकना था।

10. **विश्व युघुर कांग्रेस**- चीनी सरकार द्वारा प्रतिबंधित योधुरों की सामूहिक चेतना का प्रतिनिधित्व करता एक समूह जो निर्वासित योघुर लोगों के पुनर्वास के लिए है।

22.8 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की रोकथाम के लिए विश्व के देशों के बीच संधियाँ

आतंकवाद से लड़ने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संधियों और समझौते हुए हैं। विश्व में बढ़ रही आतंकी गतिविधियों ने समूचे विश्व का ध्यान आकृष्ट किया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस पर लगाम लगाने हेतु राष्ट्रों के बीच विभिन्न समझौते एवं संधियाँ हुई हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी कई कानून पारित किये हैं -

1. विमानों पर किये गए अपराधों एवं कतिपय अन्य कार्यों पर कन्वेंशन (1963), टोक्यो।
2. विमानों पर गैरकानूनी कब्जे के विरोध हेतु कन्वेंशन (1970), हेग
3. राजनायिक प्रतिनिधियों सहित अन्तर्राष्ट्रीय रूप से सुरक्षा प्राप्त लोगों के खिलाफ अपराधों के निरोध एवं दंड पर कन्वेंशन (1973), न्यूयॉर्क
4. आतंकवाद की रोकथाम के लिए यूरोपीय कन्वेंशन (1977), स्ट्रासबर्ग
5. आणविक सामग्री की भौतिक सुरक्षा हेतु कन्वेंशन (1980), विएना
6. आतंकवादी बमबारी के निरोध के निमित्त अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन (1997)

22.9 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की रोकथाम के उपाय

ऐतिहासिक रूप से देखा जाय तो आतंकवाद के विरुद्ध कई प्रतिक्रियाएं देखने को मिलती हैं। आतंकियों के खिलाफ हिंसा का उपयोग, समझौते का प्रयोग और तमाम अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और नियमों के माध्यम से आतंकवाद पर लगाम लगाने की कोशिश की गयी है। हालाँकि ये तीनों विकल्प, राज्य-सरकार के पास मौजूद विकल्पों में सबसे प्रचलित हैं। आतंकवाद के खिलाफ ताकत और हिंसा का प्रयोग समय समय पर प्रदर्शित होता है। अमेरिका का तालिबान के विरुद्ध सैन्य शक्ति का प्रयोग इसका एक उपर्युक्त उदाहरण है। 1988 में ब्रिटेन की स्पेशल एयर सर्विसेज के सदस्यों ने आयरिश रिपब्लिकन आर्मी के तीन सन्देहास्पद को गिब्राल्टर में गोली मार दी। बल का प्रयोग इस घटना में किसी आतंकवादी संगठन के सन्देहास्पद सदस्यों के खिलाफ प्रयोग किया गया। बल प्रयोग के दो मायने हैं एक तो ''जैसे को तैसा'' यानि हिंसा का जवाब हिंसा से और दूसरा आतंकी गतिविधियों को पनपने से रोकने के लिए।

वार्तालाप आतंकवाद से निपटने का दूसरा तरीका है। हालांकि राष्ट्र सार्वजनिक रूप से आतंकी समूहों से वार्ता की बात स्वीकार नहीं करते लेकिन वे गुप्त रूप से दूसरी नीति अपनाते हैं, उदाहरण के लिए ब्रिटेन काफी अरसे से आयरिश रिपब्लिकन आर्मी और उसके राजनैतिक स्तम्भ सिन्न फेंन से वार्तालाप की बात को नकारता चला आ रहा था। लेकिन फिर भी आम दृष्टि से इतर वार्तालाप की प्रक्रिया संपूर्ण हुई और गुड फ्राइडे सरीखे सहमति पत्र सामने आये जिन्होंने

उत्तरी आयरलैड में आतंकी हिंसा को खत्म करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक दूसरा उदाहरण अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस और दक्षिण अफ्रीकी सरकार के बीच हुआ समझौता है। दक्षिण अफ्रीकी सरकार ने अफ्रीकन नेशनल कांग्रेस को एक आतंकी संगठन करार देकर प्रतिबंधित किया हुआ था और उसके साथ किसी भी समझौते के कोई भी असार नहीं थे। फिर भी अप्रत्यक्ष रूप से वार्तालाप संभव हुई और समझौते हुए।

अन्तर्राष्ट्रीय संधियाँ आतंकवाद से जूझने की एक और कोशिश है। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, जैसे संयुक्त राष्ट्र संधियाँ पारित करके राष्ट्रों के मध्य अत्यधिक राजनैतिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करती हैं। उदाहरण के लिए, 1997 की आतंकी बम धमाकों के निवारण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संधि यह मांग करती है कि इस प्रकार की घटना को हत्या और आम संपत्ति को जबरन नुकसान पहुँचाने की आपराधिक श्रेणी के अंतर्गत रखा जाये। इस प्रकार का सहयोग में सुधार की अपेक्षा करता है। **ध्यान अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस पर लगाम लगाने हेतु राष्ट्रों के बीच विभिन्न समझौते एवं संधियाँ हुई हैं, संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी कई कानून पारित किये हैं जैसे :**

1. विमानों पर किये गए अपराधों एवं कतिपय अन्य कार्यों पर कन्वेंशन, (1963) टोक्यो।
2. विमानों पर गैरकानूनी कब्जे के विरोध हेतु कन्वेंशन, (1970) हेग
3. राजनयिक प्रतिनिधियों सहित अन्तर्राष्ट्रीय रूप से सुरक्षा प्राप्त लोगों के खिलाफ अपराधों के निरोध एवं दंड पर कन्वेंशन, (1973) न्यूयॉर्क
4. आतंकवाद की रोकथाम के लिए यूरोपीय कन्वेंशन, (1977) स्ट्रासबर्ग
5. आणविक सामग्री की भौतिक सुरक्षा हेतु कन्वेंशन, (1980) विएना
6. आतंकवादी बमबारी के निरोध के निमित्त अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेंशन, (1997)

22.10 अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की रोकथाम के लिए विभिन्न देशों में गठित संस्थायें

आतंकवाद से लड़ने के लिए विभिन्न देशों ने अपनी संस्थाएँ बनाई हैं जो उस देश के भीतर आंतकवादी गतिविधियों को नियंत्रित करने, कोई खुफिया जानकारी प्राप्त करने में सक्रिय रहती हैं।

- भारतः एन.एस.जी. (नेशनल सिक्यूरिटी गार्ड्स), ए.टी.एस. (एंटी-टेररिस्ट स्क्वाड), थन्डरबोल्ट, एन.आर.ए.
- चीनः स्नो लेपर्ड कमांडो यूनिट, बीजिंग स्वाट
- जर्मनीः यू.एस.के. (बवेरिया की राज्य पुलिस), जेड.यू.जेड., एस.ई.के. पुलिस, जी.एस.जी. 9 +
- फ्रांसः पुलिस दल जी.आई.पी.एन., रेड और गेंदामेर्र जी.आई.जी.एन +
- इस्रायलः यमम, मिस्ताराविम, शिन बेत
- जापानः केन्द्रीय त्वरित बल (सेंट्रल रेडीनेस फोर्स), स्पेशल सिक्यूरिटी टीम, स्पेशल असाल्ट फोर्स

- अमेरिकाः फेडरल एयर मार्शल सर्विस, एंटी-टेररिज्म स्पेशलिटी टीम्स, बोर्ताक, राज्य और क्षेत्रीय पुलिस की स्वाट टीमें।

22.11 उपसंहार

आतंकवाद के निश्चित कारणों की सही सही पहचान लगाना असंभव है। व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ्य निश्चित ही एक अहम् भूमिका निभाता है परन्तु किस हद तक, यह कहना असंभव है। कोई आतंकवाद की तरफ हिंसा के प्रति लगाव के कारण आकर्षित नहीं होता बल्कि अपनी विचारधारा के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए भी इस तरफ लोग झुकते हैं। कोई आतंक का प्रयोग सामरिक विकल्प के तौर पर राज्य के उद्देश्यों को बढ़ावा देने के लिए भी करते हैं। निश्चित ही आतंकवाद, मनोवैज्ञानिक, वैचारिक और सामरिक धरातल पर घट सकता है। और एक व्यक्ति आतंकवाद को अपनी वैश्विक दृष्टि के आधार पर अमल में ला सकता है। किसी समूह के लिए अपनी विचारधारा का प्रसाद के लिए आतंकवाद एक माध्यम हो सकता है। और कई व्यक्तियों और समूहों के लिए आतंकवाद का प्रयोग अपने सामरिक उद्देश्यों और लक्ष्यों की पूर्ति हो सकती है।

22.12 शब्दावली

1. **विचारधारा** - विचारधारा से तात्पर्य निश्चित मूल्यों और सिद्धांतों से है जिसके माध्यम से कोई समूह अपने निश्चित लक्ष्यों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्यरत रहता है।
2. **आतंकवाद** - आतंकवाद से तात्पर्य सामान्यतः उन गतिविधियों से लिया जाता है, जो आतंक पर आधारित है।
3. **वर्सेल्स की संधि - प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत हुई संधि।** इस संधि ने यूरोपीय भू-भाग में साम्राज्यों को तोड़ने का कार्य किया और राष्ट्र संघ के अंतर्गत लाने का प्रयास किया।

22.13 सन्दर्भ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक वाक्य में देने का प्रयास करें:

1. विश्व में सक्रिय किन्हीं दो आतंकवादी संगठनों के नाम लिखिए?

   ---

2. भारत में सक्रिय किन्हीं दो आतंकवादी संगठनों के नाम लिखिए?

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दें :

1. आतंकवाद क्या है?

---

2. आतंकवाद के कारणों का वर्णन करें?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों का विस्तार में उत्तर दें।

1. अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद की प्रकृति पर एक लेख लिखिए?

---

2. आतंकवादियों के उद्देश्यों पर टिप्पणी कीजिये?

---

3. डेविड राप्पोपोर्ट ने अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद को कितने चरणों में विभाजित किया है? एक संक्षिप्त लेख लिखें?

22.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आर. गुनारात्ना, इनसाइड अलकायदा, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2002
2. एस. जुनैद, टेरोरिज्म एण्ड ग्लोबल पावर सिस्टम्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, आक्सफोर्ड, 2005
3. आई.डी. ओनवुडिवे, द ग्लोबलाइजेशन ऑफ टेरर, आस्गेट, विटी, 2001
4. एम. सेज्म्यान, अंडरस्टैंडिंग टेरर नेटवर्क्स, यूनिवर्सिटी ऑफ पेंसिलवानिया प्रेस, 2004
5. के.पी. बाजपेयी, रूट्स ऑफ टेरोरिज्म, पेंगुइन, नई दिल्ली 2002
6. जे. बेलिस, एम. स्मिथ, पी. ओएन्स, ग्लोबलाईजेशन ऑफ वर्ल्ड पालिटिक्स ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2011

22.15 नोट

इकाई-23

संचार प्रौद्योगिकी में क्रान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध

इकाई की संरचना

23.0 उद्देश्य

23.1 भूमिका

23.2 तकनीकी संचार

23.3 नव अन्तर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था

23.4 सूचना तकनीकी में क्रांति

23.5 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के लिए महत्व

23.5.1 राष्ट्र की क्षेत्रियता पर प्रश्न चिन्ह

23.5.2 अतिपारदर्शिता

23.5.3 वैश्विक जनमत

23.6 उपसंहार

23.7 शब्दावली

23.8 संभावित प्रश्न

23.9 संदर्भ ग्रन्थ

23.10 नोट

23.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई में संचार प्रौद्योगिकी में आयी क्रांति के सन्दर्भ में चर्चा की गयी है, उसका उद्देश्य है -

1. संचार-तकनीकी क्रांति के सन्दर्भ में प्रकाश डालना।
2. इस क्रांति के फलस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति में परिवर्तन पर चर्चा करना।
3. सूचना क्रांति के महत्व से अवगत कराना।

23.1 भूमिका

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि संचार अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध का केन्द्र बिन्दु है। विभिन्न राष्ट्रों के मध्य आपसी संबंधों को संचार के माध्यम से दृढ़ता प्राप्त होती है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में संचार के क्षेत्र में हुए नवीन तकनीकी आविष्कारों ने केवल व्यक्तियों के

बीच वरन् राष्ट्रों के बीच के संबंधों को भी एक नया आयाम दिया। आज संचार के नूतन माध्यम देखने को मिलते हैं जो लोगों के आपसी संबंध-निर्माण को गति प्रदान करते हैं। संचार, तकनीकी तथा गैर-तकनीकी माध्यमों से गतिशील होता है। भाषा तथा पर्यटन जैसे माध्यम गैर-तकनीकी रूप से संचार को गतिशीलता प्रदान करते हैं। तकनीकी संचार माध्यम में डाकसेवा, छापाखाना, रेडियो, टेलीविजन, दूरसंचार, टेलीफोन तथा कम्प्यूटर जैसे साधनों को लिया जा सकता है।

23.2 तकनीकी संचार

छापाखाने को सबसे पहला एवं टिकाउ संचार माध्यम माना जाता है जिसका आविष्कार सोलहवीं शताब्दी में हुआ। इसके माध्यम से विभिन्न देशों के बीच किताबों, मैगज़ीनों एवं लिखित विचारों का आदान-प्रदान प्रारम्भ हुआ जिसने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को नयी दिशा प्रदान की। डाक सेवा का प्रारम्भ उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में देखने को मिलता है। इसकी सहायता से न केवल राष्ट्र के अन्दर बल्कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच भी सन्देश भेजना एवं प्राप्त करना आसान हो गया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अन्तर्राष्ट्रीय रेडियो प्रसारण ने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को एक नया आयाम प्रदान किया। बी0बी0सी0 एवं वोईस ऑफ अमेरिका जैसे रेडियो प्रसारण केन्द्र के श्रोताओं का विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हुआ। 1960 के दशक के बाद उपग्रह-आधारित दूरसंचार माध्यम अति महत्वपूर्ण हो गया है। सन् 1964 के टोक्यो ओलम्पिक खेलों के समय सिंसिम 3 एवं बाद में इन्तेल्सेट जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन वैश्विक संचार को नयी दिशा देने में कामयाब हुए। सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति के कारण आज समूचा विश्व एक छोटे से गाँव में सीमित प्रतीत हो रहा है। आज एक राष्ट्र के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का क्षेत्र सिर्फ दूसरे राष्ट्र तक ही सीमित नहीं रहा है बल्कि सूचना प्रौद्योगिकी क्रान्ति ने यह समाज की दूसरे समाज से घनिष्ठता को बढ़ाया है। विश्व के किसी भी कोने में घट रही कोई भी घटना का हम घर बैठ सजीव प्रसारण देख सकते हैं और उस पर तत्काल विमर्ष भी कर सकते हैं। इस वैश्विक जुड़ाव (ग्लोबल कनेक्टिविटी) ने ग्लोबल विलेज के रूप में हमारे सम्मुख एक नयी अवधारणा को प्रस्तुत किया है जिसमें हम सभी किसी न किसी रूप में एक दूसरे से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं।

23.3 नव अन्तर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था

बीसवीं शताब्दी के मध्य भाग तक यह विश्व दो महायुद्ध अनुभव कर चुका था। विश्व शांति की कामना करने वाले विद्वान तथा राष्ट्रप्रमुख उन तरीकों की खोज में लगे थे जिससे राष्ट्रों के बीच शांति तथा विश्वास का सम्बन्ध बन सके। इसमें गुट निरपेक्ष आन्दोलन (Non-Alignment Movement) भी शामिल था। प्रारम्भ से ही गुट निरपेक्ष आन्दोलन ने समानता, परस्पर निर्भरता, तथा विकासोन्मुखी लक्ष्यों को अपनाया था जिसके तहत नव अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (New International Economic Order) की परिकल्पना की गयी थी। इस नवीन परिकल्पना के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तों पर पुनर्विचार किया जाना आवश्यक माना गया। विभिन्न राष्ट्रों के द्वारा 1974 में इस व्यवस्था को पारित किया गया। इस व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न राष्ट्रों के बीच में निरंतर संवाद तथा संचार अति आवश्यक माना गया। सन् 1973 में ही गुट निरपेक्ष आन्दोलन के सदस्यों ने अल्जिएर्स में संचार व्यवस्था का पुनर्गठन करने का संकल्प किया था। सन् 1976 में गुट निरपेक्ष आन्दोलन के नई दिल्ली घोशणापत्र में सूचना के वि-उपनिवेशीकरण को प्रधानता दी गयी। गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के अनुसार विश्व के विभिन्न राष्ट्रों के मध्य चल रही संचार व्यवस्था का साम्राज्यवादी ताकतों ने अपनी आवश्यकतानुरूप निर्माण किया था। इसके कारण साम्राज्यवादी राष्ट्र संचार के केन्द्र में रहे। दूसरे राष्ट्र शक्ति क्रम में पीछे

होने के कारण संचार व्यवस्था में सक्रिय नहीं रहे हैं। नवीन आर्थिक व्यवस्था, जो राष्ट्रों का समान स्तर पर मूल्यांकन करती है, इस संचार व्यवस्था के अनुसार नहीं चल सकती थी। गुट निरपेक्ष राष्ट्रों की यह सोच एक नव-अन्तर्राष्ट्रीय सूचना व्यवस्था को प्रारम्भ करने में सफल रही है।

इस नवीन व्यवस्था के अन्तर्गत 1975 में गुट निरपेक्ष संवाद केन्द्र (Non-aligned News Pool) का निर्माण किया गया जिसके तहत विभिन्न विकासशील राष्ट्रों के बारे में सूचना संग्रहीत की जाने लगी। 1977 में गुट निरपेक्ष राष्ट्रों ने अपने रेडियो संचार संगठनों को साझा किया जिसके तहत इन संगठनों को गुट निरपेक्ष राष्ट्रों के बीच में संवाद बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया गया। परिणामस्वरूप, वैश्विक संचार व्यवस्था की समस्याओं को अध्ययन करने के लिए 1978 में यूनेस्को के द्वारा मैकब्राइड आयोग (MacBride Commission) का गठन किया गया। अपने प्रतिवेदन 'अनेक आवाज, एक विश्व' (Many Voices, One World) में आयोग ने एक नवीन वैश्विक सूचना तथा संचार व्यवस्था (New World Information and Communication Order) के निर्माण की आवश्यकता पर जोर दिया। इस व्यवस्था का मुख्य लक्ष्य वैश्विक संचार का लोकतंत्रीकरण तथा विकासशील राष्ट्रों के नागरिकों को विकसित राष्ट्रों में जोड़ना रहा। इस आयोग ने नवीन संचार व्यवस्था के क्रियान्वयन में यूनेस्को को विशेष भूमिका प्रदान की जिसके परिणामस्वरूप 1985 की संयुक्त राष्ट्र महासभा में नवीन वैश्विक सूचना तथा संचार व्यवस्था को एक निरंतर प्रक्रिया के रूप में देखा गया।

23.4 सूचना तकनीकी में क्रान्ति

1980 के दशक के मध्य में यूरोप एवं आस्ट्रेलिया द्वारा इन्टरनेट को सार्वजनिक सेवाओं के प्रयोग में लाया गया। एशिया में 1990 के पूर्वार्ध में इन्टरनेट का आगमन हुआ। इन्टरनेट ने सूचना के आदान-प्रदान के क्षेत्र में एक क्रान्ति कर दी है। इसके कारण आज अति कम समय एवं अति कम दाम में विश्व के किसी भी प्रान्त में आसानी से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। इसी कारण आज बिचौलियों से संचार के प्रसार को मुक्त किया जा सका है, आज संचार एक मुक्त क्षेत्र है। परिणामस्वरूप, आज केवल राष्ट्र ही नहीं विद्वान एवं समाज के विभिन्न समूह इन्टरनेट के माध्यम से अपनी बातों को दूसरे राष्ट्रों तथा समाजों तक आसानी से पहुँचा सकते हैं।

23.5 अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के लिए महत्व

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के लिए संचार की क्रांति का विशेष महत्व है जिसकी आगे विवेचना की गयी है।

23.5.1 राष्ट्रों की क्षेत्रीयता पर प्रश्नचिन्ह

नयी संचार तकनीक ने राष्ट्रों की सम्प्रभुत्ता के समक्ष कई चुनौतियाँ प्रस्तुत की है। संप्रभुता को यदि पारम्परिक अर्थ में देखा जाये तो यह किसी भी राष्ट्र की वह शक्ति है जिसके द्वारा एक राष्ट्र स्वयं की सीमाओं को किसी दूसरे राष्ट्र के आक्रमण से सुरक्षित करता है, अपनी प्राकृतिक सम्पदा और संसाधनों को रक्षित करता है और किसी अन्य राष्ट्र के हस्तक्षेप के बगैर अपने राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक तत्वों का चुनाव करता है।

संप्रभुता के उपरोक्त सिद्धान्त से ही ''सूचना सम्प्रभुता'' का सिद्धान्त प्रकट होता है जिसके अनुसार राष्ट्र संचार और सूचना के क्षेत्र में पूर्ण सम्प्रभुता और क्षेत्रीय एकता का अधिकार रखते हैं। हालांकि, सन्देश निर्माण, प्रसार और प्राप्त करने की नई संचार और सूचना तकनीकी किसी राष्ट्र की सीमाओं का आदर नहीं करती। सूचना के इस उद्भव ने समय समय पर कई ऐसे मुद्दों को जन्म दिया है जिसने राष्ट्रीय सम्प्रभुता के तकनीकी सूचना के प्रवाह, राष्ट्रीय संचार सुविधाओं का विकास इत्यादि पर नियंत्रण को प्रभावित किया है।

23.5.2 अति पारदर्शिता

संचार क्रांति, जिसके अग्रदूत संचार उपग्रह और कम्प्यूटर यन्त्र रहे हैं, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपना प्रभाव दिखाने लगी है। हालांकि इस संचार तकनीक के प्रभाव का एकदम सही-सही अनुमान लगाना जटिल कार्य है परन्तु एक बात स्पष्ट रूप से कही जा सकती है कि परिचित भू-भाग निरंतर परिवर्तित हो रहा है। लगभग सभी समाज छिद्रिल हो गये हैं। प्रमुख तकनीकों के अभिसरण के कारण राष्ट्रीय संचारों पर से नियंत्रण खोने लगी हैं। उपग्रह, पारम्परिक भौगोलिक ज्ञान और दूरी की धारणाओं को निरर्थक साबित कर देते हैं। केबिल स्थानीय प्रदाता व्यवस्था को बढ़ाते हैं और दूरस्थ संकेतों को सोख लेते हैं। कम्प्यूटर सूचना को एक दूसरे तक प्रसारित, प्रवाहित एवं हस्तांतरित करते हैं। जब राष्ट्र, सन्देश के निर्माण, प्रसार और ग्राह्यता के ऊपर से नियंत्रण खो देते हैं तो संचार तकनीक के परा-राष्ट्रीय चरित्र के कारण वे तकनीकी विफलता और असुरक्षा जैसी नयी समस्याओं से जूझते नज़र आते हैं। आज हम एक नये प्रकार के वैश्विक समुदाय का उद्भव देख रहे हैं जिसमें गैर-सरकारी संगठन जैसे परा-राष्ट्रीय संस्थाएँ, बहुराष्ट्रीय निगम एक अहम् भूमिका अदा कर रहे हैं। संचार क्रांति ने इन कारकों के उत्कर्ष में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। पूर्व में दरकिनार किये गए गैर-सरकारी संगठन आज अपनी बढ़ी हुई शक्ति एवं विश्वभर में पहुँच की क्षमता के कारण एक अहम् वैश्विक कारक के रूप में उभरे हैं। संयुक्त राष्ट्र और अन्य दूसरी वैश्विक संस्थाओं में केन्द्रीय भूमिका का निर्वहन करते हुए आज गैर-सरकारी संगठन और नागरिक प्रचार समूह, पर्यावरण संरक्षण, निःशस्त्रीकरण, मानव अधिकार, उपभोक्ता सम्बन्धी अधिकार इत्यादि जैसे मुद्दों को उठा रहे हैं, जिनका दायरा स्थानीय और राष्ट्रीय सीमाओं से बँधा हुआ नहीं है। एक पुख्ता प्रमाण वैश्विक नागरिक समाज (सिविल सोसाइटी) का उद्भव है जो हमारे सामूहिक जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका है जो न तो बाजार का भाग है और न ही सरकार का, परन्तु गैर-सरकारी संगठनों और नागरिक प्रचार समूहों का यहाँ हमेशा भरमार रहती है।

23.5.3 वैश्विक जनमत

संचार तकनीक एक वैश्विक जनमत के आविर्भाव में भी सहयोग कर रही है। वैश्विक जनमत, एक वैश्विक नागरिक समाज के उदय होने का एक और पुख्ता सबूत है। वैश्विक जनमत दो प्रकार की समस्याओं से उत्पन्न हुआ है। पहला वर्ग अपार फैली हुई राष्ट्रीय समस्याओं का है जिसमें, भुखमरी, सामाजिक विषमताएं, ऊर्जा संकट, विकास न होना, प्रमुख हैं और दूसरी तरफ वह समस्याएं हैं जिनका चरित्र वैश्विक है जैसे, विकास, पर्यावरण, निःशस्त्रीकरण एवं मानवाधिकार।

राजनेता अब पारंपरिक तथा घरेलू जनमत पर ही आश्रित नहीं हैं अपितु एक बड़े वैश्विक परिदृश्य पर उभर रहे जनमत की तरफ रूझान दिखा रहे हैं। पूर्व-विद्युत युग में, राजनेता यह

मानते थे कि वे घरेलू एवं विदेशी जनमत पर अपना नियंत्रण स्थापित कर सकते हैं, समाचार माध्यम भी विदेशों में प्रकाशित होने वाले संपादकीय और विभिन्न मतों को शायद ही उद्धृत करते थे। लेकिन आज, उन्नत प्रौद्योगिकी तथा धैर्यपूर्वक किये गए प्रतिचयन ने राज्य सरकार और समाचार माध्यमों के लिए यह जानना आसान कर दिया है कि आखिर बाहरी जनता क्या विचार कर रही है। सरकारें अकसर अपने कार्यों को अपने और बाहरी जनता के बीच प्रचारित करती हैं।

23.6 उपसंहार

आज के युग में सूचना तथा प्रौद्योगिकी समग्र विश्व में राष्ट्रों के मध्य सम्बन्ध को प्रभावित करता है। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय संबंधो की प्रकृति जटिल हो गयी है। क्योंकि अन्तर्राष्ट्रीय परिदृश्य में इसके कारण गुणात्मक परिवर्तन परिलक्षित हो गया है। पूरी दुनिया सिमट कर एक गाँव के रूप में परिवर्तित हो गई है। इसलिए दुनिया के किसी भी कोने की कोई घटना दूसरे अन्य कोनों पर तत्काल जानकारी में आ जाती है। उसका प्रभाव अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर पड़ना स्वभाविक है।

23.7 शब्दावली

1. **गुट निरपेक्ष आन्दोलन** - शीत युद्ध के समय राष्ट्रों का एक ऐसा गुट जो अमेरिका एवं रूस से समान दूरी रखता रहा।
2. **गैर-उपनिवेशीकरण**-इंग्लैण्ड तथा दूसरे यूरोपीय साम्राज्यवादी शक्तियों के नियंत्रण से औपनिवेशिक राष्ट्रों की स्वतन्त्रता।
3. **''सूचना संप्रभुता'' का सिद्धान्त** - इस सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्र संचार और सूचना के क्षेत्र में पूर्ण संप्रभुता और क्षेत्रीय एकता का अधिकार रखते हैं।
4. **नव अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था** - गुट निरपेक्ष आन्दोलन की एक परिकल्पना जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की शर्तों पर पुनर्विचार किया जाना आवश्यक माना गया ताकि विकसित और विकासशील देशों के बीच समता स्थापित की जा सके जिससे विकासशील देश भी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में अपनी भागीदारी सुनिश्चित कर सके।

23.8 संभावित प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक शब्द या एक वाक्य में देने का प्रयास करें।

1. सर्वप्रथम इन्टरनेट का प्रयोग कब और कहाँ देखने को मिलता है?

   .....

   .....

2. गुट निरपेक्ष संवाद केन्द्र का निर्माण कब हुआ?

   .....

   .....

लघु उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर दें।

3. यूनेस्को के द्वारा मैकब्राइड आयोग का गठन कब किया गया और क्यों?

   .....
   .....

4. गुट निरपेक्ष आन्दोलन का नई दिल्ली घोषणापत्र कब जारी किया गया और उसके क्या प्रमुख बिन्दु थे?

   .....
   .....

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के विस्तार में उत्तर दें।

1. संचार व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में इसके महत्व की विवेचना कीजिये?

   .....

   .....

2. संचार क्रांति किस प्रकार एक वैश्विक जनमत के निर्माण में सहयोग कर रही है? स्पष्ट कीजिये।

   .....

   .....

23.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. एम0 आल्ब्रो, द ग्लोबल एज, पॉलीटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1996
2. एस0 डी0 क्रेज्नर, ग्लोबल कम्यूनिकेशंस एण्ड नेशनल पावर, वर्ल्ड पालिटिक्स, 1991, पृ0 336-66
3. जे0 बेलिस, एस0 स्मिथ, पी0 ओएन्स, ग्लोबलाइजेशन ऑफ वर्ल्ड पालिटिक्स, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 2011
4. एम0 कास्टेलस, राइज ऑफ द नेटवर्क सोसाइटी, ब्लैकवेल, ऑक्सफोर्ड, 2000
5. एच0 जेंकीन्स, डी0 थर्बर्ण, डेमोक्रेसी एण्ड न्यू मीडिया, एम0 आई0 टी0 प्रेस, कैम्ब्रिज, 2004

23.10 नोट

.....
.....
.....
.....